Kashmir Kendrit Hindi Katha Sahitya (Vishesh Sandarbh : 1990-2020)

Thesis Submitted in Partial Fulfilment of the Requirement for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In Hindi

2024

Submitted By

Saumya Verma

20HHPH13

Under the guidance of

Dr. Bhim Singh

Department of Hindi, School of Humanities

University of Hyderabad

P.O. Central University, Gachibowli,

Hyderabad-500046

Telangana

कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य (विशेष सन्दर्भ : 1990-2020)

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

2024

शोधार्थी

सौम्या वर्मा

20HHPH13

शोध-निर्देशक

डॉ. भीम सिंह

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500046

विभागाध्यक्ष

प्रो. सी. अन्नपूर्णा

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500046

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय, हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500046

DECLARATION

I **Saumya Verma** hereby declare that the thesis entitled **"Kashmir Kendrit Hindi Katha Sahitya (Vishesh Sandarbh :1990-2020)" ("कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य (विशेष संदर्भ : 1990-2020)"** submitted by me under the guidance and supervision of **Dr. Bhim Singh** is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/ INFLIBNET.

Signature of supervisor

Date -

Signature of the Student

Saumya Verma

Regd. No. 20HHPH13

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"Kashmir Kendrit Hindi Katha Sahitya (Vishesh Sandarbh :1990-2020)" ("कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य (विशेष संदर्भ : 1990-2020)")** submitted by **SAUMYA VERMA** bearing Regd. No. **20HHPH13** in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in HINDI in the school of Humanities is a bonafide work carried out by her under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Parts of this thesis have been :

A. Published in the following publications

1. "**KASHMIR KENDRIT HINDI KATHA SAHITYA MEN CHITRIT KASHMIRI YUVA PEEDHI : SATTA, AATANK AUR ANISCHITTA KE BEECH SANGHARSH"** [ISSN NO - 0975-119X] Volume -2,Number -13 MARCH - APRIL 2021, DRISHTIKON PATRIKA

2. **"KASHMIR KENDRIT HINDI UPANYASON MEN CHITRIT NIRVASAN KI TRASADI"** [ISSN NO - 2320-7604] Volume -25, Number -143 October - December 2023, BAHURI NAHI AAVNA PATRIKA

B. Presented in the Following conferences :

1. **"JAMMU- KASHMIR SE VISTHAPAN KA HINDI SAHITYA"** Organised by Jammu Central University and Kendriya Hindi Sansthan, Jammu, 23-24 March 2022

2. **"LOKBHAKTI PARAMPARA AUR KASHMIRIYAT (VISHESH SANDARBH : LALDYAD AUR NUND RISHI)"** Organised by Rajkiya Mahavidyalaya, Chauhtan, Kendriya Hindi Sansthan and Samvet Dhvani Sansthan, Barmer, 28-29 January 2024

Further the student has passed the following courses towards fulfillment of coursework requirement for Ph.D. in durations Ph.D first year (2020-21) This coursework was recommended by Doctoral Committee.

Course Code	Name	Credits	Pass/fail
1. HH826	IDEOLOGICAL Of LITERATURE	4	PASS
2. HH827	PRACTICAL REVIEW	4	PASS
3. HH802	RESEARCH AND PUBLICATION ETHICS	4	PASS
4. HH805	RESEARCH METHDOLOGY	4	PASS
5. HH802	RESEARCH PAPER	4	PASS

Supervisor **Head of Department** **Dean of School**

भूमिका

भारत के उत्तर दिशा में अवस्थित जम्मू-कश्मीर को भारत का सिरमौर कहा गया है। कश्मीर को नयनाभिराम प्राकृतिक सौंदर्य, रमणीय पहाड़ों, ऐतिहासिक स्मारकों, हस्तशिल्प और मेहमाननवाजी के लिए 'धरती पर स्वर्ग' की उपमा से विभूषित किया गया है। मुगल बादशाह शाहजहाँ ने कश्मीर के अनुपम सौंदर्य से प्रसन्न होकर कहा था, 'गर फिरदौस बर रूए जमीं अस्त, हमीं अस्त, हमीं अस्त, हमीं अस्त' अर्थात इस पृथ्वी पर यदि कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं पर है। कश्मीर अपने नैसर्गिक सौंदर्य की तरह ही अपनी सांस्कृतिक धरोहर के लिए भी महत्त्वपूर्ण रहा है। यहां के पर्यटन स्थल भारत ही नहीं विश्व भर के सैलानियों के आकर्षण का चिरकाल से केन्द्र रहे हैं। इसकी अप्रतिम झीलें, नदियाँ, खूबसूरत पहाड़, समृद्ध जंगल, उपजाऊ भूमि सुंदरता में चार चाँद लगा देते हैं। धर्म, अध्यात्म, संस्कृति तथा विद्या-साधना की उन्नत और एक सुदीर्घ परम्परा का पोषक रहा है कश्मीर। यह क्षेत्र सदियों से हमारी चेतना में एक उदात्त संस्कृति के अतुलनीय सौंदर्य, गूढ़ दर्शन, प्रेम, सौहार्द और काव्यशास्त्र की परंपरा का पोषक रहा है।

इस मनोरम प्रदेश का अविस्मरणीय इतिहास है। यह विद्या का उत्कृष्ट केन्द्र तथा संस्कृत की ज्ञान परंपरा में अग्रणी प्रदेश रहा। तेरहवीं शताब्दी तक कश्मीर में संस्कृत काव्य चिंतन निरंतर चलता रहा। संस्कृत साहित्य के आचार्य मुक्तागण, शिवस्वामी, क्षेमेंद्र, आनंदवर्धन, कल्हण, विल्हण, सोमदेव, गुणाढ्य अभिनवगुप्त, कैयट, उत्पल, मम्मट, आदि की चिंतनभूमि यही क्षेत्र रहा है। कश्मीर ने विभिन्न सभ्यताओं और धर्मों को अपनाया तथा एकाकार किया। हिंदू मुस्लिम और बौद्ध दर्शन के मिलन से यहाँ साझी संस्कृति का विकास हुआ। शैव दर्शन का केन्द्र कश्मीर ही रहा है। बौद्ध दर्शन भी यहाँ विकसित हुआ। यह क्षेत्र लोकपरम्परा की दृष्टि से भी सम्पन्न है। यहाँ के लोक साहित्य में संत

वाणी, भक्तिवाणी, प्रणय, श्रम, क्रीड़ा, ललद्यद के वाख तथा नुंद ऋषि के श्रुक आदि प्रसिद्ध हैं।

कश्मीर के उद्भव के विषय में नीलमत पुराण तथा कल्हण की राजतरंगिणी प्रामाणिक ग्रंथ रहे हैं। कल्हण ने अपनी पद्यबद्ध कृति में कश्मीर के इतिहास, सामाजिक व्यवस्था, परम्परा और मान्यताओं का अंकन किया है। इसके अतिरिक्त चार अन्य राजतरंगिणियाँ क्रमश: जोनराज, श्रीवर, प्राज्य भट्ट और शुक के द्वारा लिखी गयीं। कश्मीर की उत्कृष्ट वास्तुकला के नमूने कश्मीर के मंदिरों तथा मार्तंड और अवंतिपुरा के मंदिर के रूप में देखे जा सकते हैं।

साहित्य की शायद ही कोई ऐसी विधा हो जिसे कश्मीरियों ने अपने योगदान से समृद्ध न किया हो। दर्शन, धर्म, चिकित्सा, खगोल विज्ञान, साहित्य, इंजीनियरी, कला, शिल्प, संगीत, नृत्य तथा अन्य क्षेत्रों को सुदृढ़ कर उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है।

हिमालय की गोद में आसीन यह क्षेत्र आज हिंसा, आतंक, अफरा-तफरी, धार्मिक उन्माद, अल्पसंख्यकों के विस्थापन की विभीषिका से लहूलुहान है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महाराजा हरि सिंह की अनिश्चितता, पाकिस्तान का कश्मीर पर आक्रमण, जम्मू-कश्मीर के लिए धारा 370 का प्रावधान, कश्मीर मुद्दे को यू.एन.ओ. के मंच पर लाने जैसी अनेक घटनाओं ने कश्मीर समस्या को जन्म दिया। पाकिस्तान द्वारा समर्थित आतंकवाद ने अपनी भयावहता को आकार देते हुए 1990 में हुए क्रूर विस्थापन को अंजाम दिया। यह विभाजन के बाद की सबसे बड़ी मानव निर्मित त्रासदी थी। एक वर्ग को अपनी जड़े छोड़ निर्वासित होना पड़ा। हत्या, लूट, बलात्कार, आगजनी, धर्म परिवर्तन का जो हिंसक खेल हुआ उसमें एक मजबूत सरकार, सेना, न्यायपालिका और संविधान बस दर्शक बने रहे। सौहार्द, प्रेम और साझी विरासत की यह धरती राजनीति का मोहरा बनाकर रौंद दी गयी।

रोजमर्रा का कश्मीर अनिश्चितता की भेंट चढ़ गया है, जहाँ चारों तरफ विनाश के दृश्य, आतंकवादियों और भारतीय सेना के तनाव, संदेह का पसरा मंजर, बम विस्फोट और जान हथेली पर रखना आदत बन चुके हैं। कश्मीर का

दूसरा रूप वहां से विस्थापित जनसमुदाय का प्रतिनिधि है जो विस्थापन की टीस लिए हुए बौखलाया और छटपटा रहा है। जो सरकार की अनदेखी के शिकार हैं तथा जिनके पास कोई मानवाधिकार या राजनैतिक अधिकार नहीं है। जिनके अंतस में व्याप्त सांस्कृतिक विलोपन की पीड़ा बुनियाद हिला रही है।

कश्मीर को लेकर पं. ब्रजनारायण चकबस्त की पंक्ति कश्मीर के स्वभाव को रेखांकित करती है- ज़र्रा ज़र्रा है मेरे कश्मीर का मेहमाँ नवाज, राह में पत्थरों ने दिया पानी मुझे।

इस मेहमाननवाज कश्मीर की आत्मा आज चीख़ रही है तथा अकुला उठी है। इस कठिन दौर में कश्मीर के सांस्कृतिक जीवन से सह-अस्तित्व की भावना लगभग नष्ट हो चुकी है। हिन्दी कथा साहित्य में कश्मीर समस्या को चित्रित करने के प्रयास निरंतर जारी रहे हैं। चन्द्रकांता, पद्मा सचदेव, संजना कौल, क्षमा कौल, मीराकांत, मनीषा कुलश्रेष्ठ, रवीन्द्र प्रभात, छत्रपाल सिंह, किरण बख्शी, सुधाकर अदीब आदि ने कश्मीर को केन्द्र में रखकर लेखन किया है तथा कश्मीर के इतिहास और समकाल से आमजन को रूबरू कराने में सफल हुए हैं।

कश्मीर की ओर बढ़ रहे अपने रुझान को ध्यान में रखते हुए जब मैंने अपने शोध निर्देशक डॉ. भीम सिंह जी के समक्ष यह विषय प्रस्तावित किया तो उन्होंने मुझे सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर अनुगृहीत किया। प्रस्तुत शोध कार्य सात अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय 'कश्मीर : समाज, संस्कृति, इतिहास और वर्तमान परिदृश्य' के अंतर्गत कश्मीर का विहंगावलोकन प्रस्तुत कर कश्मीर की सामाजिक स्थिति, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कश्मीर को चित्रित कर उसकी वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय 'कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य : समीक्षात्मक अवलोकन' में कश्मीर केंद्रित हिंदी उपन्यासों तथा कहानियों (विशेष सन्दर्भ : 1990-2020) का सर्वेक्षण किया गया है।

तृतीय अध्याय 'कश्मीर और कश्मीरियत' के अंतर्गत कश्मीरियत की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए ललद्यद व नुन्द ऋषि की साझी विरासत की चर्चा की गयी है। इसी अध्याय के अंतर्गत लोक जीवन, लोकसाहित्य, रीतियों एवं परम्पराओं का भी वर्णन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय, 'निर्वासन की त्रासदी एवं सांस्कृतिक संघर्ष' के अंतर्गत विस्थापन के स्वरूप, परिस्थितियों को अंकित करते हुए विस्थापन भोगी समाज की पीड़ा एंव उनके अंतस में व्याप्त सांस्कृतिक विलोपन की आशंका को चित्रित किया गया है। पुनर्स्थापन नीतियों की आवश्यकता पर विचार किया गया है।

पंचम अध्याय 'सामयिक परिदृश्य और हिन्दी कथा साहित्य में कश्मीर सम्बधी ज्वलंत मुद्दे' में आतंकवाद, मानवाधिकार, युवा वर्ग के भटकाव, पर्यावरण अस्थिरता, आर्थिक विकास, अनुच्छेद 370 और 35 ए के विषय में चर्चा की गई है।

षष्ठ अध्याय 'कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य में स्त्री' के अंतर्गत प्राचीन, मध्यकाल के दौर से आतंकवाद युग तक पहुंची स्त्री की स्थितियों का विवेचन एवं उनकी स्थिति में संभावनाओं को तलाशा गया है।

सप्तम अध्याय 'विवेच्य कथा साहित्य का शिल्पगत अनुशीलन' में चयनित उपन्यासों और कहानियों के शिल्पगत वैशिष्ट्य का अंकन किया गया है।

अंत में उपसंहार के अंतर्गत सम्पूर्ण शोध प्रबंध के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए उसका मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। उपसंहार के बाद परिशिष्ट है जिसमें आधार ग्रन्थ के अंतर्गत महत्त्वपूर्ण उपन्यासों एवं कथा संकलनों की सूची है तथा सहायक ग्रन्थ के अंतर्गत महत्त्वपूर्ण पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदि की सूची दी गयी है।

कृतज्ञता-ज्ञापन

प्रेरणा एवं समुचित मार्गदर्शन के साथ किसी भी कार्य को सुनियोजित ढंग से संपन्न किया जा सकता है। शोध भी एक ऐसा ही क्षेत्र है, जहां पथ-प्रदर्शन, सहयोग एवं परामर्श अति आवश्यक कारक हैं। अतः इस शोध कार्य को संपन्न करने में जिन महानुभावों का मुझे सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूं।

यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे डॉ० भीम सिंह जी के निर्देशन में शोध कार्य सम्पन्न करने का अवसर प्राप्त हुआ। उनके सौहार्दपूर्ण व्यवहार, अमूल्य सुझावों से मैं निरन्तर लाभान्वित होती रही हूँ। उनके अथक निर्देशन एवं सहयोग के फलस्वरूप ही मैं अपने शोध कार्य को पूर्ण करने में सक्षम हो सकी। अतः मैं सर्वप्रथम अपने गुरुवर के प्रति हृदय से कृतज्ञता पूर्ण आभार प्रकट करती हूँ। मैं विभागाध्यक्ष प्रो. चेरला अन्नपूर्णा जी, प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी जी, प्रो. गजेंद्र पाठक, प्रो. आलोक पांडेय एवं विभाग के सभी गुरुजनों के प्रति आभारी हूँ, जिनकी ज्ञानवर्धक वार्ताओं से मैं सदैव लाभान्वित होती रही।

इस अवसर पर अपने परिवारजनों एवं मित्रों का सहयोग विस्मरित नहीं किया जा सकता। इस शोध प्रबन्ध की परिणति में अपने माता-पिता, भाई-बहन एवं अपनी मित्र प्रियंका सरोज एवं अग्रज राजेंद्र भैया और सुप्रभा दीदी का विशेष रूप से आभार प्रकट करती हूं। आप सभी के सहयोग ने इस शोध कार्य को सरल बना दिया। इस शोध प्रबंध के पूर्ण होने में मेरे जीवन सहचर मनीष जी का योगदान भी महत्वपूर्ण है। इन्होंने मेरे साथ इस कार्य को पूरा करने में परिश्रम भी किया तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मुझे अपना कार्य अनवरत करते रहने की प्रेरणा भी दी। यह शोध प्रबंध इन्हीं के सहयोग का परिणाम है। अंत में मैं उन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस शोध कार्य को पूर्ण करने में मेरा सहयोग किया है।

<u>**अनुक्रमणिका**</u>

क्रम संख्या **पृष्ठ संख्या**

भूमिका **6-9**

प्रथम अध्याय : कश्मीर : समाज, संस्कृति, इतिहास और वर्तमान परिदृश्य **14-51**

1.1 कश्मीर : एक विहंगम दृष्टि

1.2 कश्मीरी समाज : विविध आयाम

1.3 कश्मीरी संस्कृति

1.4 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कश्मीर

1.5 कश्मीर समस्या : एक उलझा समीकरण

द्वितीय अध्याय : कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य : समीक्षात्मक अवलोकन (विशेष संदर्भ : 1990-2020) **52-91**

2.1 चयनित हिंदी उपन्यास : परिचयात्मक विवरण

2.2 कश्मीर केंद्रित हिंदी कहानियां : विवेचनात्मक अध्ययन (विशेष संदर्भ : 1990-2020)

2.2.1 कश्मीरी भाषा से अनूदित हिंदी कहानियां

2.2.2 डोगरी से अनूदित हिंदी कहानियां

2.2.3 उर्दू, पंजाबी एवं गोजरी से अनूदित हिंदी कहानियां

तृतीय अध्याय : कश्मीर और कश्मीरियत 92-114

3.1 कश्मीरियत : अवधारणा एवं सांस्कृतिक संदर्भ

3.2 समकालीन संदर्भ में कश्मीरियत

3.3 सांझी विरासत का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य : ललद्यद एवं नुंद ऋषि

3.4 लोकजीवन एवं लोकसाहित्य

3.5 लोकगीत एवं लोककथाएं

3.6 रीतियां एवं परंपराएं

3.7 कश्मीरी पर्व एवं त्यौहार

3.8 कश्मीरी समाज में व्याप्त रूढ़ियां एवं बाह्याडम्बर

3.9 वेशभूषा एवं खान-पान का वैशिष्ट्य

चतुर्थ अध्याय : विस्थापन की त्रासदी एवं सांस्कृतिक संघर्ष **115-134**

4.1 विस्थापन : स्वरूप एवं उत्तरदायी कारण

4.2 विस्थापन की परिस्थितियां : घायल स्मृतियां

4.3 विस्थापन का इतिहास एवं सन् 1990

4.4 विस्थापन भोगी समाज की अंतहीन पीड़ा

4.5 सांस्कृतिक विलोपन की आशंका

4.6 निर्वासितों हेतु पुनर्स्थापन नीतियों की भूमिका

पंचम अध्याय : सामयिक परिदृश्य और हिंदी कथा साहित्य में कश्मीर संबंधी ज्वलंत मुद्दे **135-188**

5.1 आतंकवाद : स्वरूप, समस्या और समाधान

5.2 मानवाधिकार के प्रश्न एवं हकलाती अभिव्यक्तियां

5.3 घाटी में रह रहे कश्मीरी समुदाय की मूलभूत आवश्यकताएं

5.4 युवा वर्ग का भटकाव एवं राष्ट्रीयता का सवाल

5.5 सुरक्षा बलों की चुनौतियां एवं मानसिक स्थिति

5.6 मीडिया की भूमिका

5.7 पर्यावरणीय अस्थिरता एवं संरक्षण-प्रयास

5.8 आर्थिक विकास के अवसरों की मांग

5.9 अनुच्छेद 370 और 35 (ए)

षष्ठ अध्याय : कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य में स्त्री **189-212**

6.1 कश्मीरी समाज में स्त्री की स्थिति

6.2 आतंकवाद और कश्मीरी स्त्री

6.3 विस्थापन का दंश और कश्मीरी स्त्री

6.4 कश्मीर में स्त्री सशक्तीकरण से जुड़े प्रश्न एवं संभावनाएं

सप्तम अध्याय : विवेच्य कथा साहित्य का शिल्पगत अनुशीलन **213-238**

7.1 आलोच्य उपन्यासों का अभिव्यंजना शिल्प

7.2 चयनित कहानियों का शिल्प-पक्ष

उपसंहार **239-244**

संदर्भ ग्रंथ सूची **246-252**

आधार ग्रंथ

सहायक ग्रंथ

अंग्रेजी पुस्तकें

शब्दकोश

पत्रिकाएँ

परिशिष्ट 253-266

प्रथम अध्याय

कश्मीर : समाज, संस्कृति, इतिहास और वर्तमान परिदृश्य

1.1 कश्मीर : एक विहंगम दृष्टि

कश्मीर राज्य की अवस्थिति 37°-17' तथा 36°-58' उत्तरी अक्षांश और 73°- 26' तथा 83°-30' पूर्वी देशान्तर के मध्य चिन्हित है। यह क्षेत्र भौगोलिकता के आधार पर चार भागों में बाँटा गया है। पहला, पहाड़ी तथा अर्द्ध पहाड़ी मैदान, जो 'कंडी पट्टी' कहा जाता है। द्वितीय शिवालिक पहाड़ियों वाला पर्वतीय क्षेत्र। तृतीय कश्मीर घाटी के पहाड़ तथा 'पीर पंजाल' और चौथा तिब्बत से लगा हुआ लद्दाख व कारगिल का क्षेत्र।[1]

जम्मू और कश्मीर 5 अगस्त 2019 तक भारत में एक राज्य के रूप में अस्तित्व में था जिसे शासनादेश द्वारा अगस्त 2019 में द्विभाजित कर जम्मू और कश्मीर तथा लद्दाख नामक दो केन्द्र शासित प्रदेशों के रूप में मान्यता दी गयी। कश्मीर भारत का एक अति महत्त्वपूर्ण राज्य है। इसकी सामरिक व संसाधन दोनों ही स्तरों पर महत्ता है। "कश्मीर का भारत के लिए सामरिक महत्त्व है, क्योंकि इसकी सीमा पाकिस्तान, अफगानिस्तान और चीन से लगी है। इसके पाँच मुख्य क्षेत्र है-

1. जम्मू- 'आदिवासी क्षेत्र' (जिसे आजाद कश्मीर अथवा पाक अधिकृत कश्मीर कहते हैं। पाकिस्तान के नियंत्रण में है।

2. कश्मीर घाटी

3. लद्दाख

---

1. संपा. नगेन्द्रनाथ वसु, हिन्दी विश्वकोश, खण्ड दो, कश्मीर प्रकरण

4. पहाड़ी जिले- पहाड़ी जिलों का नियंत्रण दोनों राष्ट्रों (भारत एवं पाकिस्तान में विभक्त है, अपने-अपने ढंग से।"[2]

5. आदिवासी क्षेत्र

कश्मीर राज्य के वर्तमान वास्तविक विभाजन के अन्तर्गत 'जम्मू-कश्मीर घाटी' और 'लद्दाख' भारत के नियंत्रण में हैं।

भारतीय जम्मू और कश्मीर राज्य के तीन मुख्य भाग हैं, जम्मू (हिन्दू बहुल), कश्मीर (मुस्लिम बहुल) तथा लद्दाख़ जो कि बौद्ध बहुल क्षेत्र है। इस प्रदेश की दो राजधानियाँ हैं। श्रीनगर ग्रीष्मकालीन राजधानी है तथा जम्मू शीतकालीन। तीन संभागों में बँटे इस राज्य में 20 जिले हैं। 2011 में आई जनगणना रिपोर्ट के अनुसार जम्मू-कश्मीर की जनसंख्या 125.41लाख है। जम्मू और कश्मीर की कुल जनसंख्या में से 27.38% लोग शहरी क्षेत्रों में रहते हैं।... जम्मू और कश्मीर के शहरी क्षेत्रों में लिंग अनुपात 840 महिलाओं की प्रति 1000 पुरुषों की थी। शहरी क्षेत्रों के लिए जम्मू और कश्मीर की साक्षरता दर 77.12 प्रतिशत थी, जिसमें पुरुष 83.92% साक्षर थे जबकि महिला साक्षरता 56.65% थी।[3]

जम्मू और कश्मीर राज्य की कुल आबादी में से, लगभग 72.62 प्रतिशत ग्रामीण हैं। जम्मू और कश्मीर राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में, प्रति 1000 पुरुषों में महिला लिंगानुपात 908 था। ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों की साक्षरता दर 73.76 और महिलाओं की साक्षरता 63.18% थी।[4]

जम्मू और कश्मीर क्षेत्र भारत के विभाजन के बाद से ही विवादों में उलझा रहा है। अधिमिलन की अस्पष्टता, कबाइली आक्रमण, संयुक्त राष्ट्र संघ के मंच तक जाने से लेकर 1987 के बाद आतंक का जो दौर शुरू हुआ उससे कश्मीर

---

[2] मानिकलाल गुप्त, कश्मीर समस्या : एक विवेचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ ix

[3] Jammu and Kashmir Population sex Ratio in Jammu and Kashmir and Kashmir Literary rate data 2011-2019" www. census 2011.com.in, 1 March 2019

[4] वही

आज भी लहूलुहान है तथा वर्तमान में सुधार की संभावनाओं के प्रति आश्वस्त भी।

डोगरी, कश्मीरी जम्मू-कश्मीर की मुख्य भाषाएँ हैं। इसके अलावा बल्ती, पहाड़ी, पंजाबी, गूजरी और दरद का भी प्रमुखता से प्रयोग होता है। संसद द्वारा जम्मू-कश्मीर राजभाषा विधेयक पारित कर पाँच भाषाओं- कश्मीरी, डोगरी, उर्दू, अंग्रेजी और हिंदी को मान्यता दी गयी है।

1.2 <u>कश्मीरी समाज : विविध आयाम</u>

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। किसी देश, जाति या समाज की पहचान उसके साहित्य के माध्यम से होती है। साहित्यकार समाज में रहते हुए अपने साहित्य को आकार देता है तथा समाज में घटित हो रहे परिवर्तन को अपनी रचनाओं में व्यक्त करता है। समाज साहित्यकार को प्रभावित करता है, इस कारण साहित्यकार अपने भाव और विचारों को समाज में प्रसारित करने का प्रयास करता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है, "संसार को समझना दर्शन का काम है, उसे बदलना राजनीति का और उसकी पुनर्रचना साहित्य का दायित्व है।"[5]

किसी प्रदेश विशेष को वहाँ पर अपनाए जा रहे रीति-रिवाजों, उनके आचार-विचार, पर्वों-उत्सवों, कला-कौशल तथा निहित विश्वासों के आधार पर बेहतर तौर से जाना जा सकता है। ये तत्त्व ही उसे अन्य क्षेत्रों से अलग या विशिष्ट बनाते हैं। कश्मीरी समाज की भी अपनी ऐसी ही विशेषताएँ हैं।

1.2.1 <u>आवास</u>-

कश्मीर को स्वास्थ्य हेतु उपयुक्त क्षेत्र माना जाता है। यहाँ का जल व शीतल वायु आरोग्यता दायक हैं। यहाँ के कुंडों का जल औषधि मिश्रित होता है। कश्मीर में आवास हेतु प्रायः लकड़ियों के घर बनाए जाते हैं जिन्हें 'लड़ौ' कहा जाता है। बर्फ से सुरक्षा हेतु इन घरों की छतें दोनों ओर से ढालू बनायी जाती हैं

---

[5] रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ. 09

जिससे बर्फ इन पर न टिक सके। 'बोखारों' प्रत्येक घर में पाया जाने वाला गर्म स्थान है जिसे सोने के लिए प्रयोग किया जाता है। समृद्ध परिवारों में हम्माम गर्म जल के स्नानागार पाये जाते हैं। "श्रीनगर में प्रत्येक भवन का मुख्य द्वार नदी के किनारे की ओर होता है। प्रत्येक घर का नदी घाट होता है। उस घर में सीढ़ियाँ बनी होती हैं। प्रायः प्रत्येक गृहपति की एक नाव होती है। वह घर के घाट पर बंधी रहती है।"[6] नौका यहाँ पर एक बहुउद्देश्यीय वाहन के रूप में प्रयोग में लायी जाती है। इनके दो प्रकार हैं- शिकारा एवं डोंगी। शिकारा को बेहद सजाया जाता है। इसे जम्मू और कश्मीर का सांस्कृतिक प्रतीक भी माना जाता है। पर्यटन-परिवहन के अतिरिक्त शिकारे का प्रयोग मछली पकड़ने, जलीय वनस्पति और सामान्य परिवहन हेतु भी किया जाता है।

1.2.2 <u>कश्मीरी स्त्री एवं पुरुष</u>-

जम्मू-कश्मीर और लेह में लगभग सभी धर्मों के लोग रहते हैं। "कश्मीरी हिन्दू यूनानी जैसे लगते हैं। उनका रंग गोरा, उन्नत नासिका, गुलाबी कपोल, नीलवर्णी नेत्र और केश राशि भूरी होती है।"[7] कश्मीरी स्त्रियाँ अपने अनुपम सौंदर्य के लिए ख्यात रही हैं। "भारतचन्द्र की रूपसी विद्या और कालिदास की शकुन्तला वहाँ हरेक घर की प्रत्येक रमणी में विद्यमान है। वे बेपर की परी यदि पृथिवी पर रहतीं अथवा अप्सरा यदि कवि की कल्पना कहीं ठहरती तो वह कश्मीर में ही मिलती हैं।"[8] कश्मीरी स्त्रियाँ मेहनती होती हैं।

1.2.3 <u>वेशभूषा एवं आभूषण-</u>

जम्मू-कश्मीर की वेशभूषा अपनी बनावट एवं जटिल बुनाई प्रक्रिया के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की वेशभूषा कश्मीर की उन्नत संस्कृति और भौगोलिक विशिष्टता की सूचक है। यहाँ की स्त्रियाँ अनेक प्रकार के आभूषणों को धारण करती हैं।

---

[6] संपा. नगेन्द्रनाथ वसु, हिन्दी विश्वकोश, खण्ड दो, कश्मीर प्रकरण,

[7] एम के कॉव, कश्मीर और उसके लोग, पृ. 44

8. संपा. नगेन्द्रनाथ वसु, हिन्दी विश्वकोश, खण्ड दो, कश्मीर प्रकरण, पृष्ठ- 666

फिरन कश्मीरी स्त्रियों का प्रमुख वस्त्र है। इस पर प्रायः जरी की कढ़ाई रहती है। फिरन और बुर्के का प्रयोग गर्मियों की अपेक्षा सर्दी में अधिक होता है। पांचो शरीर को गर्म रखने के लिए प्रयोग किया जाने वाला वस्त्र है। पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाली गूजर स्त्रियाँ लम्बे अंगरखे व सलवार पहनती हैं। इसके अलावा डोगरा स्त्रियाँ कमरबन्द व ढीले कुर्ते व चूड़ीदार सलवार के साथ एक टोपी भी पहनती है।

कश्मीरी लोग पहाड़ के बकरों के रोएं से बने पश्मीना शॉल का भी प्रयोग करते हैं। "लेह की वेशभूषा पर हिमालयी प्रभाव है। यहाँ की पोशाक को गोंचा कहा जाता है। पुरुषों का गोंचा एक लंबाई वाला कोट है। इसे चौड़ा काट दिया जाता है। इसे दाहिने कंधे पर और दाहिने ओर नीचे पीतल के बटन और लूप के साथ बांधा जाता है। महिलाओं का गोंचा पुरुषों के गोंचे की तुलना में अत्यधिक सुंदर होता है। इसमें कई छोटे प्लेट्स के साथ एक पूर्ण स्कर्ट बनी होती है। पोशाक को टोपी पहनकर या पेरक द्वारा पूरा किया जाता है।"[9]

कश्मीरी महिलाओं के सिर की पोशाक कासबा कहलाती है। वर्तमान में कश्मीरी वेशभूषा पर भी आधुनिक पश्चिमी शैली का प्रभाव देखा जा सकता है। "स्त्रियों के आभूषणों में मुख्य हैं- कंठी, टीका, हल्क, बंद, बाजबन्द आदि। टीका तथा जिगनी चाँदी या सोने का गोलाकार आभूषण है, जो मस्तक पर लटकाया जाता है। कानों में बालियाँ, दूर अल्कहोर, झुमके, डेजीहोर आदि पहनने का रिवाज है। डेजीहोर पंडिताइनों का सौभाग्य सूचक अलंकार है।"[10]

1.2.4 <u>खान-पान का वैशिष्ट्य-</u>

जम्मू- कश्मीर अपने खानपान के वैविध्य एवं स्वाद के लिए प्रसिद्ध है। यहां मुख्यतः दो प्रकार का खानपान है, प्रथम जिस पर कश्मीरी पंडित की संस्कृति का प्रभाव है और दूसरा जिसमें मुस्लिम संस्कृति की झलक है। यहां खाने में

---

9. यूनियन धारा, जिल्द 49, जम्मू-कश्मीर एवं लेह विशेषांक, जुलाई-सितंबर, 2022, पृ. 22

10. एम. के. कॉव, कश्मीर और उसके लोग, पृष्ठ- 46

हल्दी की अपेक्षा केसर का प्रयोग अधिक होता है। “जम्मू-कश्मीर के मुख्य पकवानों में कश्मीरी दम आलू, चावल की रोटी, तबक माज (तला हुआ मटन चोप्स), रोगन जोश शामिल है। दम आलू दही, सुगंधित सोंफ तथा अदरक पाउडर में पकाया जाता है। तबाक माज अमेरिकी तथा ब्रिटिश मटन चोप्स का कश्मीरी संस्करण है। रोगन गोश्त कम आयु के भेड़ को पकाकर बनाया जाता है जिसे कश्मीरी मिर्च, अदरक पाउडर, हींग तथा अन्य पदार्थों के बीच पत्ते के साथ पकाया जाता है। यखनी हल्दी या मिर्च पाउडर की दही आधारित मटन ग्रेवी है। बखारखनीब एक तरह का शाही पकवान है जो शादी में बनता है। यह दही मसालों में बना मटन है जो कि पारंपरिक तरीके से बनाया जाता है।”[11]

लेह के लोग सर्दी से बचाव के लिए थुक्पा का प्रयोग करते हैं। मोक थुक लेह में प्रमुखता से प्रयोग में लाया जाता है। छांग वहाँ की देसी शराब है। कश्मीरी मुख्यतः चावल, 'कड़क' साग एवं सब्जियों पर निर्भर हैं। मांस, मछली इनके नित्य आहार का अंग है। सर्दियों में चाय (कहवा और नमकीन) का प्रयोग अधिक मात्रा में होता है।

1.2.5 <u>कश्मीरी समाज का रहन-सहन, अंधविश्वास एवं जाति बंधन-</u>

कश्मीर में एक साझी संस्कृति का विकास हुआ और उसी के कारण इस क्षेत्र में हिन्दू-मुस्लिम के मध्य फर्क कर पाना कठिन है। ये एक-दूसरे के त्यौहारों में शरीक होते रहे हैं। इनका पहनावा, खान-पान और रहन-सहन बहुत मिलता-जुलता है। कश्मीर में संयुक्त परिवार का प्रचलन रहा है। उनका मानना है कि एक साथ रहना, खाना, दुःख-सुख बाँटने से व्यक्तित्व का विकास होता है। वर्तमान में संयुक्त परिवारों की यह संरचना टूट रही है।

कश्मीरी जनमानस में अनेक प्रकार के अंधविश्वास व्याप्त है। इनकी जाति व्यवस्था अत्यन्त जटिल है। "हिन्दुओं में ब्राह्मण, राजपूत, खत्री और ठाकुर पाये

11. यूनियन धारा, जिल्द 49, जम्मू-कश्मीर एवं लेह विशेषांक, जुलाई-सितंबर, 2022, पृ. 22

जाते हैं। मुसलमानों के शेख, सैय्यद, मुगल और पठान है। शेख कश्मीर के पुराने बाशिन्दे हैं जो धर्म-परिवर्तन से मुसलमान बन गए थे। वे अपने नामों के आगे पंडित, कौल, ऋषि और दर लगाते हैं।"[12]

1.2.6 <u>पर्यटन एवं अन्य उद्योग-</u>

कश्मीरी लोगों का एक बड़ा समूह पर्यटन उद्योग पर आश्रित है। जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख प्राकृतिक सुषमा के साथ ही कई प्रमुख ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थलों वाला क्षेत्र है। इनमें बाबा अमरनाथ गुफा, माँ वैष्णों देवी मंदिर, रणवीरेश्वर मंदिर, पीरखो गुफा मन्दिर, अवन्तिपुर मंदिर, रघुनाथ मंदिर, खीर भवानी, शारदापीठ (पाकिस्तान), विष्णुपाद मार्तण्ड का सूर्य मंदिर, गणपतयार श्रीनगर, शंकराचार्य मंदिर, पपबक्तर मंदिर, महामाया मंदिर के साथ ही मुस्लिम सूफी संतो की दरगाहें, चरार-ए-शरीफ, बाबा गुलाम शाह शाहदरा, शेख मिर्जा कामिल दरगाह, ख्वाजा मुईनुद्दीन नक्शबंदी, शेख हम्जा मकदूम, पीर मिट्ठा, नोगजा पीर दरगाह, हजरत शाह हमदान, बुलबुल शाह, श्रीनगर आदि देश-विदेश के पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र है। चश्मा शाही झरने, शालीमार बाग, डल झील, वुलर झील, परीमहल, दाचीगाम राष्ट्रीय उद्यान, अनंतनाग के बर्फीले क्षेत्र, गुलमर्ग, सोनमर्ग, पटनी टाप हिल आदि कश्मीर को पर्यटन हेतु एक श्रेष्ठ क्षेत्र बनाते हैं। कश्मीर का एक विशाल जनसमुदाय आय हेतु पर्यटन पर निर्भर है। आतंकी गतिविधियों के कारण कश्मीर का पर्यटन काफी प्रभावित हुआ है।

कश्मीर में कुटीर उद्योगों, कला और दस्तकारी की लम्बी श्रृंखला है। पिछले तीन दशकों में पर्यटन के साथ ये उद्योग भी प्रभावित हुए हैं। 'कारीकलमदारी' अर्थात् कागज की दस्तकारी, लकड़ी से बनने वाले उत्पाद, तांबे तथा पीतल के बने समावार, कश्मीरी कांगड़ी, कशीदाकारी आदि कश्मीर के प्रमुख उद्योग हैं। "कशीदाकारी में कश्मीर का स्थान प्रथम पंक्ति में है। यहाँ के कशीदों में 'सोजनकारी', 'गब्बा', 'जंजीरे का काम' प्रसिद्ध है। 'सोजनकारी' या 'रफूकरी टॉकों से कश्मीरी दस्तकार शाल-दुशालों पर फूल, पत्तियाँ, मनुष्य और पशु-पक्षियों

---

12. मोहन कृष्ण दर, मनोरम कश्मीर, पृष्ठ- 55

की आकृतियाँ बनाते हैं।"[13] 'यहाँ पर गब्बा, नमदा, ऊनी तीन प्रकार की मशहूर दरियाँ है। कश्मीरी कालीन अपनी भव्य डिजाइनों एवं मजबूती के लिए जानी जाती है।

1.3 कश्मीरी संस्कृति-

समाज और संस्कृति का अटूट सम्बन्ध है। संस्कृति किसी समाज के समग्र स्वरूप को व्यक्त करती है। इस स्वरूप में उस समाज के आचार-विचार और कार्यप्रणाली निहित होते हैं। एक प्रगतिशील प्राणी होने के कारण मनुष्य अपने जीवन को उत्तम बनाने हेतु सदैव ही प्रयासरत रहा है। जीवन-पद्धति, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, अनुसन्धान और आविष्कार प्रत्येक मनुष्य के जीवन के अनिवार्य अंग हैं। ये मनुष्य को विशिष्ट एवं सभ्य बनाते हैं। धर्म और दर्शन मनुष्य की जिज्ञासा के ही परिणाम हैं।

संगीत, मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला, साहित्य आदि को मनुष्य ने अपने मन और आत्मा की तृप्ति के साधन रूप में कलात्मक उन्नति दी। संस्कृति में मनुष्यों द्वारा ग्रहण किए गए सभी आन्तरिक और बाह्य व्यवहारों के तरीके समाहित हैं। संस्कृति, समाज को विशिष्ट बनाती है तथा एक समाज को दूसरे समाज से अलग स्वरूप प्रदान करती है। इसे किसी काल विशेष की सीमा में बांध पाना संभव नहीं है।

संस्कृति के समुच्चय में ज्ञान, विज्ञान, कला, आस्था, नैतिक मूल्य एवं प्रथाएँ सन्निहित होती हैं। संस्कृति शब्द अत्यन्त व्यापक है। डॉ. मुंशीराम शर्मा के मतानुसार- "जब हम देश, प्रदेश अथवा प्रांत की संस्कृति की चर्चा करते हैं तब हमारा उद्देश्य उस प्रदेश के विकसित आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, संस्कार, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, पूजा आदि के विधि, विधान एवं अनुक्रम का

---

13. एम. के. कॉव, कश्मीर और उसके लोग, पृष्ठ- 42

ही उल्लेख करना होता है। एक व्यक्ति और समय समाज का भी विकसित एवं संस्कृत जीवन इन्हीं रूपों में प्रकट होता है।"[14]

1.3.1 <u>सांस्कृतिक अवबोध</u>-

संस्कृति के आधार पर प्रत्येक देश, प्रांत की अपनी पहचान है। कश्मीर की भी अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता है। वास्तव में कश्मीरी संस्कृति भारतीयता की मूल सांस्कृतिक मान्यताओं से जुड़ी है। भारत में जहाँ भी यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हो रहा होता है वहाँ संस्कारित किए जा रहे व्यक्ति को कश्मीर की तरफ मुँह करके प्रार्थना करायी जाती है- 'नमस्ते शारदे देवी कश्मीरपुरवासिनि त्वामहं प्रार्थये नित्यं विद्यादानं च देहि मे' अर्थात् माँ शारदा देवी को नमस्कार करता हूँ, कश्मीर में निवास करने वाली देवी आपकी प्रार्थना करता हूँ कि मुझे विद्या दान दें।

हिंदू धर्म की वैदिक परंपरा के साथ ही बौद्ध एवं जैन धर्म की धाराओं में भी कश्मीर का बहुत महत्त्व है। कनिष्क ने चतुर्थ बौद्ध संगीति यहीं करायी थी। ललितादित्य के समय कश्मीर पूरे एशिया में विद्या और ज्ञान का केंद्र था। 9-13 वीं शताब्दी तक कश्मीर शैव मतावलंबियों व शैव धर्म का मुख्य केन्द्र था। कश्मीर का सांस्कृतिक विस्तार पूरे हिमालय क्षेत्र में है। संस्कृति, राजनीति, कृषि, सभ्यता, इतिहास, चिकित्सा-प्रणाली, विज्ञान और तकनीक, प्रत्येक क्षेत्र में जम्मू-कश्मीर का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता को व्यक्त करने के लिए कश्मीर महत्त्वपूर्ण है। भारत की संस्कृति, भारत की सभ्यता और परंपरा का स्रोत कश्मीर ही है।

“आज जम्मू-कश्मीर एकीकरण के प्रश्न से बाहर आ गया है। यह प्रश्न कृत्रिम था, इस कृत्रिम प्रश्न को बनाए रखने के लिए अलग-अलग तरह से नैरेटिव सेट किए गए। ये आख्यान जब गढ़े जा रहे थे, उसी समय जम्मू-कश्मीर ने अपने संविधान में जम्मू-कश्मीर को भारत का अविभाज्य अंग स्वीकार किया था। जम्मू-

---

14. डॉ मुंशीराम शर्मा, भारतीय साधना और सूर साहित्य, पृ. 369

कश्मीर की संविधान सभा ने भी इसे स्वीकार कर लिया था, लेकिन उसके बाद भी कुछ निहित स्वार्थों के कारण इस देश में 70-72 वर्ष तक लगातार जम्मू-कश्मीर को एक प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किया गया।... 1846 के एंग्लो-सिख वार के नाम से जिस युद्ध को जाना जाता है, उसमें महाराजा रणजीत सिंह की पराजय के फलस्वरूप एक संधि हुई थी जिसमें युद्ध के खर्चों को देकर महाराजा गुलाब सिंह ने जम्मू-कश्मीर और लदाख के क्षेत्र को, जो बहुत बड़ा क्षेत्र था- जिसमें जम्मू था, कश्मीर था, लद्दाख का हिस्सा था, गिलगित-बाल्टिस्तान का हिस्सा था- इन सबको एक राज्य के रूप में अंग्रेजों से प्राप्त किया था।"[15]

गुलाब सिंह की मृत्यु के बाद यह राज्य हरि सिंह के शासन में रहा। अनेक उतार-चढ़ावों के साथ 1947 के विभाजन के बाद कबाइली आक्रमण से बचाव हेतु महाराजा हरि सिंह ने भारत सरकार के साथ अधिमिलन का निर्णय लिया। जो अभी भी विवादित है।

1.3.2 धर्म-दर्शन-

दर्शन के क्षेत्र में कश्मीर की प्रतिष्ठा निर्विवादित है। इसका कारण यह भी रहा कि कश्मीर चिरकाल से अध्ययन-मनन परम्परा का श्रेष्ठ स्थान रहा है। कश्मीर की त्रिक परंपरा का विशेष महत्त्व है। यह मूलत: कश्मीर शैव दर्शन की परंपरा है। त्रिक दर्शन की दृष्टियाँ हैं- द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वैत। अभिनवगुप्त शिव और शक्ति के एकीकरण को ही शैव अद्वैतवाद मानते हैं। "दर्शन के क्षेत्र में कश्मीर का शैव दर्शन या त्रिक दर्शन विशेष महत्त्व रखता है। इस दर्शन के तीन महान आचार्य वसुगुप्त, कल्लाया और अभिनवगुप्त हुए हैं। इस दर्शन के सैकड़ों अन्य कश्मीरी दार्शनिक और विचारक भी हुए हैं, जिन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। कनिष्क के समय में दर्शन की एक अन्य शाखा बौद्ध धर्म की

15. रजनीश कुमार शुक्ल, जम्मू-कश्मीर का सांस्कृतिक अवबोध, बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, पृ. 09

महायान का सूत्रपात हुआ। इस विचारधारा को वसुमित्र और नागार्जुन ने आगे बढ़ाया।"[16]

1.3.3 स्थापत्य-वास्तुकला-

कश्मीर के प्रतापी शासक ललितादित्य ने कश्मीर में कला के सर्वांगीण विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। मार्तंड मंदिर की वास्तुकला अपने भग्नावशेषों के माध्यम से भी वैभव को चिन्हित करती है। परिहासपुर का राजविहार, चैत्य एवं स्तूप तत्कालीन स्थापत्य का आज भी लोहा मनवा रहे हैं। 8वीं शताब्दी कश्मीरी शैली में कला का स्वर्णयुग था। प्रतिमाओं का निर्माण कार्य प्रमुखता से हुआ जिसके नमूने आज भी पाषाण, धातु एवं हाथी दाँत क्रमश: हिन्दू देवी-देवता, बौद्ध प्रतिमाओं एवं यक्ष-यक्षी के मूर्ति तथा प्रतिमाओं के रूप में देखे जा सकते हैं। अवन्तिपुर के मंदिर स्थापत्य का बेजोड़ नमूना प्रस्तुत करते हैं।

1.3.4 कश्मीर में सूफीमत का आगमन-

कश्मीर में इस्लाम के प्रभावी होने से पूर्व शैव एवं वैष्णव मतों का बोलबाला था। तत्कालीन समय में इन मतों में व्याप्त मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन एवं आडम्बरों के विरोध में अनेक आंदोलन हो रहे थे जो समाज में व्याप्त ऊँच-नीच को दूर करने के लिए प्रयासरत थे। इस्लाम के लिए यह पक्ष में था परंतु शैव धर्म की सुदृढ़ नींव से संघर्ष अवश्य हुआ। "मुसलमानों के एकेश्वरवाद एवं उदार भ्रातृ भाव से हिंदू बहुत कुछ प्रभावित हुए और देश के संतों के एक नए दल का प्रादुर्भाव हुआ। इसी कारण जातीय, सांस्कृतिक अथवा धार्मिक संघर्ष अथवा मतभेद की सम्भावना भी बहुत कम रह गई थी।"[17] कश्मीर में इस्लाम का प्रारम्भिक रूप उसकी सहजता एवं भावलोक की प्रमुखता के कारण आकर्षक रहा परंतु बाद में शासकों की कट्टरता ने इसे वीभत्स रूप दिया। कश्मीरी हिन्दू व मुस्लिम अपने

---

16. संपा. भारतेश कुमार मिश्र, संस्कृति (कश्मीर विशेषांक) पत्रिका, अंक 19, पृ. 05
17. वही, पृ. 22

रहन-सहन व क्रियाकलापों में एक-दूसरे से प्रभावित हुए और बौद्ध धर्म के साथ समन्वित होकर एक साझी संस्कृति का विकास हुआ।

1.3.5 भाषा एवं साहित्य-

कश्मीरी भाषा का संबंध भारतीय आर्य भाषा परिवार से रहा है। यह भाषा पूर्व में शारदा लिपि में लिखी जाती थी परंतु कालांतर में कश्मीर में मुस्लिम शासन कायम होने के बाद फारसी-अरबी नस्तालीक लिपि में लिखी जाने लगी। शब्दावली में भी परिवर्तन हुए। कश्मीरी भाषा का भव्य इतिहास रहा है। कश्मीरी भाषा के नागरी लिपि में लेखन को लेकर विनोबा भावे का विचार है- "आप यह न समझें कि कश्मीरी में जान नहीं है। कश्मीरी में खूब जान है। उसने संस्कृत, फारसी, अरबी, पंजाबी वगैरह सभी भाषाओं से माल लिया और वह मालामाल हुई है। इसके साथ-साथ उसकी अपनी भी चीजें हैं। इसलिए कश्मीरी में बहुत कुछ लिखा जा सकता है।"[18]

कश्मीरी भाषा का प्राचीन रूप 'छुम्म सम्प्रदाय' शीर्षक की पांडुलिपि के सूत्रों से मिलता है जो ग्यारहवीं शताब्दी की कृति है। 13 वीं शती में देशी भाषा के नाम से शितिकंठ द्वारा कश्मीरी भाषा में 'महानय प्रकाश' की रचना की गयी। कश्मीरी साहित्य को ललद्यद ने अपने वाखों से समृद्ध किया। नुंदऋषि के श्रुक् एवं हब्बा खातून के गीत उल्लेखनीय है। कश्मीरी भाषा का गद्य अपेक्षाकृत कम विकसित हो सका। उर्दू ने कश्मीरी एवं डोगरी को काफी प्रभावित किया है। कश्मीरी भाषा मात्र बोली बनकर रह गयी है। जम्मू-कश्मीर में लगभग बारह भाषाएं व्यवहृत हैं। जम्मू में डोगरी और चिल्बली बोली जाती है। कश्मीर घाटी में काशुर का प्रयोग होता है। लद्दाख, बलूचिस्तान और चम्बा में उनकी अपनी क्षेत्रीय भाषाएँ हैं।

1.3.6 कश्मीरी उत्सव-

---

18. विनोबा भावे, मेरी कश्मीर यात्रा, बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, पृष्ठ-471

जम्मू-कश्मीर में मनाये जाने वाले त्यौहारों में हिन्दू-मुस्लिम समावेश सहज द्रष्टव्य है। यहाँ ये उत्सव जीवन जीने का तरीका है। प्रत्येक उत्सव की एक धार्मिक, सामाजिक और ऐतिहासिक महत्ता है। कश्मीर में त्यौहारों की शुरुआत 'नवशीन' नामक पर्व से होती है। यह उत्सव पहली बर्फ के गिरने पर अत्यन्त हर्ष के साथ मनाया जाता है। लोग इस पर्व में एक-दूसरे को बर्फ भेंट कर भोज के लिए आमंत्रण की चाह करते हैं। खिचड़ी अमावस्या में हिन्दू अपने काक पट्टी पर खिचड़ी रखते हैं। शिवरात्रि का पर्व फागुन मास में बेहद धूमधाम से मनाया जाता है। मुस्लिम ईद-उल फितर, ईद-उल जुहा, ईद-उल-मिलाद-उल नवी, मिराज आलम तथा मुहर्रम त्यौहार मनाते हैं। लेह में हेमिस महोत्सव, दोसमोचे महोत्सव, लोसर महोत्सव, माथो नागरंग, फियांग और थिक्से आदि पर्व मनाए जाते हैं।

1.3.7 <u>कश्मीरी हिन्दुओं के मान्य संस्कार</u>-

समाज में माने जाने वाले रीति-रिवाज या धार्मिक संस्कार किसी भी समाज की संस्कृति की रीढ़ होते हैं। इनकी परम्परा पीढ़ी-दर-पीढ़ी अग्रसर रहती है। कश्मीरी हिन्दू समाज में सोलह संस्कारों में से जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह एवं अन्त्येष्टि संबंधी संस्कार ही प्रचलित हैं। 'काहनेथर' नामक उत्सव बच्चे के जन्म के ग्यारह दिन बाद मनाया जाता है तथा इसी दिन नामकरण भी होता है। 'जरकासय्' मुंडन संस्कार होता है। यह चार से पांच वर्ष की अवस्था में किया जाता है। 'कश्मीरी पंडित' समाज में जिस संस्कार को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है, वह है यज्ञोपवीत। इस संस्कार के अंतर्गत बालक के गले में पुरोहित यज्ञोपवीत डाल देता है।

विवाह संबंधी संस्कारों को व्यापक रूप में करने की प्रथा है। विवाह के कई दिन पूर्व ही संबंधियों के यहाँ भोज का आयोजन होता है तथा सारी रस्में विधिपूर्वक एवं अनेक लोकगीतों के रस से सराबोर होती हैं। 'वान' अर्थात् मृत्यु सम्बन्धी संस्कारों की लम्बी श्रृंखला है। दस दिन तक सूतक रहता है। इसके बाद बारहवीं, तेरहवीं, मटन, गया, हरिद्वार में श्राद्ध-तर्पण, दान, पुण्य, बाह्मण भोज आदि का विधान है।

1.3.8 कश्मीरी मुस्लिमों के मान्य संस्कार-

मुस्लिम समाज में अनेक रीति-रिवाज हैं। पुत्र- जन्म के शुभ अवसर को ये लोग 'शअदीयान' के रूप में मनाते हैं और जन्म के अवसर पर ही शिशु के दाएं कान में 'अजान' और बाएं कान में 'तकबीर' पढ़ा जाता है। कश्मीरी मुसलमानों में जन्म के बाद का पहला उत्सव 'सोदर' कहलाता है। मुंडन संस्कार एक या दो वर्ष में होता है। 'खतना' चौथे या पांचवे वर्ष में मंगल समारोह में सम्पन्न होता 'है। 'बारात' और 'निकाह' विवाह सम्बधी संस्कार हैं। वर एवं वधू की सहमति के बाद निकाह होता है तथा इस समय एक निश्चित धनराशि तय की जाती है जो तलाक के समय वधू को देनी होती है। इनका अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि है।

1.3.9 कश्मीरी लोक कथाएँ, लोक-गीत एवं लोकनाट्य-

लोक कथाएँ एवं लोक-गीत कश्मीरी संस्कृति का अभिन्न अंग रहे हैं। 'हीमाल और नागराय', 'बम्बूर और लोलरे', 'जोहरा-खोतन', 'शब्रंग', 'लैला मजनू', 'शीरीन फरहाद' एवं युसूफ-जुलेखा की कथाएँ घर-घर की अमानत है। लोकगीतों के माध्यम से जनसाधारण की मनोदशाओं, उनके विश्वासों एवं संघर्षो को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सहेजा जाता है। 'वनवुन', और 'छकरी' गीत प्रमुख है। ये गीत कश्मीरी समाज के आनंद और विषाद के संजोए गीत हैं। "कश्मीरी लोक साहित्य में लोकगीतों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये लोकगीत प्रत्येक अवसर पर मिलकर गाए जाते हैं। ये लोकगीत हैं- वनवुन, रोफ, हिक्ट ग्यवुन, वान, ललनावुन लड़ीशाह, भांड पाथुर, बचनगम, धमडिल और नैंदग्यवुन आदि। वनवुन कश्मीरी लोकगीतों का प्रमुख खंड है। यह प्राय: उत्सव, पर्व, मेखला (यज्ञोपवीत) तथा विवाह के अवसर पर गाया जाता है।"[19]

कश्मीर में 'भांड पाथुर' अर्थात् भांडो द्वारा खेला जाने वाला कश्मीर का पारम्परिक लोकनाट्य, बहुत लम्बे समय से प्रचलन में है। इसमें भांड नट, गायक,

---

19. सं. भारतेश कुमार मिश्र, संस्कृति (कश्मीर विशेषांक) पत्रिका, अंक 19, पृ. 84

अभिनेता एवं विदूषक की भूमिका एक साथ अदा करते हैं। ये गाँवों में घूमकर लोगों का मनोरंजन करते हैं। ये भांड प्रायः मुसलमान होते हैं। "इस नाट्य में अभिनय करने वाले कलाकार अपने प्रभावपूर्ण रंग-बिरंगे परिधानों, भाव-भंगिमा, कटाक्ष आदि से किसी भी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक अथवा आर्थिक समस्या को मनोरंजक ढंग से जनता के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।"[20]

1.3.10 <u>कश्मीरी नृत्यकला एवं सांगीतिक वैभव</u>-

नृत्यकला के क्षेत्र में कश्मीर हमेशा से ही आगे रहा। राजतरंगिणी में ललितादित्य मुक्तापीड के दरबार में इन्द्रप्रभा नर्तकी के नृत्य का प्रसंग है। कश्मीर की जानी-मानी नर्तकियों में अजीजे जानम, नूरह अपमेनी, मुक्तदन्दानी, गुलाब, फजली, गोजबारी, मेहर छकरी आदि के नाम हैं। कश्मीर में कार्यरत कल्चरल कमेटी ने नृत्यकला की उन्नति हेतु अनेक सांस्कृतिक केन्द्र भी खोले हैं।

कश्मीर का एक उत्कृष्ट सांगीतिक वैभव रहा है। वाद्य यन्त्रों, सांगीतिक विधाओं एवं शैलियों की दृष्टि से कश्मीर संगीत में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है। कश्मीर के राजा जलौक ने संगीत के विकास में योगदान दिया। कश्मीर के बड़शाह जैनुल आब्दीन संगीत प्रेमी थे। इनके शासनकाल में संतूर का आविष्कार हुआ। चक शासक युसुफशाह व उनकी बीवी हब्बा खातून ने संगीत कला को बढ़ावा दिया। "भारतीय संगीत में कश्मीर उस गंगोत्री की तरह है, जहाँ से संगीत की गंगा प्रवाहित होती है।"[21]

1.4 <u>ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कश्मीर-</u>

कश्मीर का भव्य इतिहास है और यह एकमात्र ऐसा क्षेत्र है, जिसका इतिहास लिखित रूप से उपलब्ध है। राजतरंगिणी एवं नीलमत पुराण महत्त्वपूर्ण

---

20. सं. भारतेश कुमार मिश्र, संस्कृति (कश्मीर विशेषांक) पत्रिका, अंक 19, पृ. 80
21. सांगीतिक वैभव, अप्रमेय मिश्र, बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, पृष्ठ-87

पौराणिक ग्रंथ रहे हैं जो कश्मीर के इतिहास को जानने में सहायक हैं। किसी भी क्षेत्र के वर्तमान स्वरूप को जानने एवं समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसके अतीत को समझा जाए। उस श्रृंखला को विश्लेषित किया जाए जिसके तहत श्रेणीबद्ध रूप से कश्यपमार से विकसित होता हुआ कश्मीर हमारे समक्ष आया है। कश्मीर का उद्भव और विकास हमेशा से ही कश्मीर के अध्येताओं की रूझान का विषय रहा है। कश्मीर के इतिहास को समझने के लिए प्रायः उसे तीन भागों में विभाजित किया जाता है- प्राचीन काल, मध्यकाल और आधुनिक काल

1.4.1 प्राचीन काल-

कश्मीर के उद्भव को लेकर ऋषियों एवं भूगोलशास्त्रियों के मतों में पर्याप्त भेद है। भूवैज्ञानिकों के मतानुसार, "सहस्रों वर्षो पूर्व जब हिंद महासागर में भयंकर जल प्लावन आया और जल प्रवाह के कारण मिट्टी व चट्टानें एक स्थान पर एकत्र हो गईं। उसके परिणामस्वरूप हिमालय पर्वत और पामीर पर्वत श्रृंखलाएँ बनीं, साथ ही कश्मीर घाटी का उद्भव भी हुआ।"[22] इससे हटकर बना दूसरा मत 'राजतरंगिणी' और 'नीलमत पुराण' का आधार लिए हुए है जो कश्मीर के उद्भव को दैवीय कृपा से जोड़ता है। इन ग्रंथों में कश्मीर को पहले एक झील माना गया है, "कश्मीर क्षेत्र हिमालय के मध्य में अपार से परिपूर्ण सतीसर नाम का एक महान सरोवर था। सातवें मनु के समय जलोद्भव नाम का एक दानव इस महान झील में निवास करता था। वह बहुत ही क्रूर एवं दुष्ट मनोवृत्ति का होने के कारण, कश्मीर की धरोहर नष्ट करने लगा। इस दानव को मारना बहुत कठिन था, क्योंकि वह राक्षस जल में छिप जाता था। तब महर्षि कश्यप ने ब्रह्म, विष्णु, महेश आदि देवताओं से प्रार्थना की, कि जलोद्भव का संहार किया जाए। देवताओं ने कश्यप ऋषि की प्रार्थना स्वीकार की और फिर झील के जल को सुखाकर देवताओं ने जलोद्भव का वध किया।"[23] तत्पश्चात् राजा नील नाग कश्मीर के राजा बने। कश्यप मुनि के श्रापानुसार पूर्व में मात्र छह महीने ही लोग

22. रमेशचन्द्र, भारत के ऐतिहासिक एवं पर्यटन स्थल, पृष्ठ- 232
23. कल्हण, राजतरंगिणी, पृष्ठ- 3

घाटी में रहते थे परंतु कालांतर में नील के प्रयासों से घाटी वर्ष-भर रहने योग्य बन गयी। ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर कश्मीर हिन्दू एवं बौद्ध धर्मों की संवर्धन भूमि रही है। कश्मीर के प्रथम निवासी नाग, पिशाच और यक्ष थे। इनके बाद खस, डार, भट्ट, डामर, निषाद, तान्त्रिन आदि कबीलों का आगमन हुआ।

कल्हण ने अपनी 'राजतरंगिणी' में कश्मीर का इतिहास गोनंद के शासनकाल से प्रारम्भ किया है। वह कृष्ण का समकालीन था। उनके शत्रु जरासंध की युद्ध में मदद करते हुए बलभद्र द्वारा मारा गया। इसके पश्चात् उसका पुत्र दामोदर कश्मीर के सिंहासन पर आसीन हुआ। पिता की मृत्यु के प्रतिशोध हेतु कृष्ण पर आक्रमण किया और युद्ध में मारा गया। कृष्ण ने कश्मीर का शासन दामोदर की पत्नी यशोमती को सौंप दिया। इन्हीं यशोमती का पुत्र गोनंद द्वितीय नाम से शासन करने लगा। इसके बाद अनेक राजा हुए जिनका विवरण अस्पष्ट है।

1.4.1.1 <u>कश्मीर में बौद्ध धर्म का आगमन-</u>

कश्मीर में बौद्ध धर्म का प्रवेश अशोक के कश्मीर शासनकाल से होता है। "तीसरी शताब्दी में कश्मीर सम्राट अशोक के शासनाधीन रहा।"[24] श्रीनगर की स्थापना भी इसी शासक ने की तथा अनेक बौद्ध विहारों का निर्माण कराया। कश्मीर में केसर की खेती शुरू कराने का श्रेय भी अशोक को जाता है। अशोक के बाद सत्ता पर जलौक आसीन हुआ जिसकी शैव धर्म में आस्था थी। उसने श्रीनगर में शैव धर्म के प्रसार हेतु प्रयास किए। "जालुक ने श्रीनगरी और नंदीक्षेत्र में क्रमशः ज्येष्ठरुद्र और भूतेश मंदिरों का निर्माण कराया तथा कश्मीर में शैव धर्म की पुनर्स्थापना की। बौद्धों के प्रति उसका रवैया आरम्भ में शत्रुतापूर्ण था बाद में वह बौद्ध धर्म के प्रति सहिष्णु हो गया था।"[25]

---

24. गोपीनाथ श्रीवास्तव, कश्मीर : समस्या एवं पृष्ठभूमि, पृष्ठ- 3
25. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, पृष्ठ-19

कश्मीर में बौद्ध धर्म का पुनरुत्थान कुषाण वंश के शासक कनिष्क के समय में हुआ। कनिष्क ने कनिष्कपुर नामक नगर बसाया तथा बौद्ध विद्वान् अश्वघोष को आश्रय दिया। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् वसुमित्र की अध्यक्षता में चौथी बौद्ध संगीति का कुंडलवन में आयोजन हुआ। कनिष्क ने सर्वस्तिवाद की अनेक पुस्तकों का संरक्षण किया। "कुषाण सम्राटों की अवनति के बाद कश्मीर के स्थानीय सूबेदारों ने शासन की बागडोर संभाली और बाह्मण मत को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।"[26]

कनिष्क के बाद जिस प्रभावी राजा का जिक्र है, वह है हूणवंशीय मिहिरकुल। मिहिरकुल का शासन छठीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है तथा इसे एक क्रूर शासक के रूप में याद किया जाता है। "कल्हण ने उसे हिंसक म्लेच्छे, यमराज के समतुल्य और जिंदा बेताल कहा है जिसके आने का पता उसके आगे-आगे चलते कौओं और गिद्धों से चलता था। उसके एक किस्से का जिक्र उसकी क्रूरता को समझने के लिए काफ़ी होगा। एक युद्ध से लौटते हुए पीर पंजाल दर्रे के पास उसकी सेना का एक हाथी खाई में गिर गया। हाथी की करुण पुकार सुनकर मिहिरकुल को इतना रोमांच हुआ कि उसने एक के बाद एक सौ हाथियों को खाई में गिरवा दिया। उस जगह का नाम हस्तिवंज पड़ गया।"[27]

कश्मीर के शासन का कुछ ऐसा भी अंश था जिसमें भारतीय नरेशों द्वारा कश्मीर पर अपने राज्यपालों के माध्यम से शासन किया गया। मातगुप्त कश्मीर का ऐसा ही राज्यपाल था। कुछ विद्वान इन्हीं मातृगुप्त को कवि कालिदास मानते हैं। "सन् 711-719 में चन्द्रापीड एक शक्तिशाली राजा हुआ जिसकी महत्ता चीन का राजा भी स्वीकार करता था। कश्मीर के सिंहासन को ललितादित्य जैसे प्रताप वीर सम्राट ने भी सुशोभित किया, जिसकी विजय-पताका पंजाब, कन्नौज, तिब्बत तक फहराती थी और जिसके राज्य का विस्तार उत्तर में तिब्बत से लेकर द्वारका तक और उड़ीसा के सागर-तट तक और दक्षिण में दकन तक, पूर्व में बंगाल तक

26. गोपीनाथ श्रीवास्तव, कश्मीर : समस्या एवं पृष्ठभूमि, पृष्ठ- 11
27. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, पृष्ठ- 23

और पश्चिम में मध्य एशिया तक था।"[28] तत्पश्चात् अवन्तिवर्मन नामक कश्मीर के प्रिय और योग्य शासक का जिक्र किया गया है।

1.4.1.2 धर्म, दर्शन, स्थापत्य, कला एवं साहित्य का वैभव-

ललितादित्य के शासनकाल को कश्मीर का स्वर्ण युग कहा जाता है। ललितादित्य ने अनेक मंदिरों का निर्माण कराया। मार्तंड नामक विशाल सूर्य मंदिर की भव्यता मनमोहक है। उसने बौद्ध धर्म को भी फलने-फूलने के अवसर दिए तथा अनेक बौद्ध विहारों का निर्माण कराया। ललितादित्य ने साहित्य व संस्कृति को भी बढ़ावा दिया। कन्नौज जीतने के बाद वह भवभूति, वाक्पतिराज तथा अत्रिगुप्त जैसे विद्वानों को कश्मीर ले आया जिन्होंने दर्शन तथा साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति दर्ज की। उसने स्वयं वैष्णव होने पर भी शैव मंदिर बनवाए। "कश्मीर का वह स्वर्ण-युग था; कला और व्यापार उन्नति के शिखर पर थे ; संस्कृत की शिक्षा-दीक्षा, दर्शनशास्त्र, ललितकला, धर्म, विज्ञान और वास्तुकला में कश्मीर भारत के सब भागों से अद्वितीय था। कश्मीर भारत का मुकुट था।"[29]

अवन्तिवर्मन ने लगभग 28 साल शासन किया। "अपनी ऊर्जा युद्धों में लगाने के बजाय उसने चौपट हो चुकी राज्यव्यवस्था तथा अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए अपने विश्वस्त मंत्री सूरया की सहायता से अथक प्रयास किये।... उसने बलिप्रथा तथा जीवहत्या पर रोक लगा दी। यह समय आते-आते कश्मीर में हिन्दू धर्म पूरी तरह से प्रभावी हो चुका था और बौद्ध धर्म की चमक खो गई थी। अवन्तिवर्मन ने अनेक मठ और मंदिर बनवाये। उसके द्वारा बसाए गए नगर अवन्तिपुर के दो मंदिरों, अवन्तीश्वर और अंवतिस्वामि के भग्नावशेष अब भी श्रीनगर से पहलगाम जाते हुए रास्ते में देखे जा सकते हैं। उसके राज्य में कवियों, लेखकों और विद्वानों को भी खूब प्रोत्साहन मिला। प्रसिद्ध वैयाकरणिक मम्मट,

---

28. गोपीनाथ श्रीवास्तव, कश्मीर : समस्या एवं पृष्ठभूमि, पृष्ठ- 03
29. वही, पृष्ठ- 4

मुक्तकण, शिव-स्वामिन और कवि आनंदवर्धन तथा रत्नाकर उसकी राजसभा के सदस्य थे।"[30]

1.4.1.3 संस्कृत शिक्षा का महान केन्द्र-

संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में कश्मीर को सिरमौर माना जाता रहा है। इस भूमि पर अनेक काव्य-चिन्तकों एवं विद्वानों ने अपार साहित्य का सृजन किया। अनेक विदेशी विद्वान भी शिक्षार्थ यहाँ आए। ह्वेनसांग नामक चीनी यात्री कश्मीर में संस्कृत शिक्षा के उद्देश्य से आया था। अलबरूनी ने अपने यात्रा वृतांत में जिक्र किया है- "कश्मीर हिन्दू-विद्वानों की सबसे बड़ी पाठशाला है। दूरस्थ और निकटस्थ देशों के लोग यहाँ संस्कृत सीखने आते थे और उनमें से अनेक लोग घाटी की प्रफुल्ल जलवायु व प्राकृतिक छटा से चमत्कृत होकर यहाँ के हो जाते थे।"[31]

संस्कृत साहित्य का इस भूमि पर उत्कर्ष हुआ। काव्यशास्त्रियों की एक लम्बी परम्परा यहाँ पर सृजनरत रही है। "सातवीं सदी में भीम भट्ट, दामोदर गुप्त, आठवीं सदी में क्षीर स्वामी, रत्नाकर, वल्लभ देव (जिन्होंने कालिदास की अभिज्ञान शाकुन्तलम् का भाष्य लिखा), नौवीं सदी में मम्मट, क्षेमेन्द्र, सोमदेव से लेकर दसवीं सदी के विल्हण, जयद्रथ और ग्यारहवीं सदी के कल्हण जैसे संस्कृत के विद्वान कवियों भाष्यकारों की एक लम्बी परम्परा है।"[32]

श्रीनगर के पास पंडित पुरुषोत्तम कौल के निर्देशन में चलने वाले विशाल संस्कृत महाविद्यालय की प्रभावी संस्कृत शिक्षा देश-विदेश के छात्रों को आकर्षित करती रही। 950 से 960 ई0 के आसपास अभिनवगुप्त का जन्म हुआ। यह वह समय था जब कश्मीर में शैव धर्म के बौद्धिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव का सानी न था। शैव धर्माधारित ग्रंथो में संस्कृत को चिंतन की गंभीर भाषा के रूप में प्रयोग किया गया।

30. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, पृष्ठ- 25
31. अलबरूनी, ग्यारहवीं सदी का हिन्दुस्तान पृष्ठ- 30
32. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, पृष्ठ- 25

1.4.1.4 <u>हिन्दू राजाओं का पतन-</u>

उत्पल वंश के शासक अवन्तिवर्मन की 883 ई. में मृत्यु के बाद गृहयुद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी। शंकर वर्मन एक आततायी शासक के रूप में उभरा। तत्पश्चात् शंकर वर्मन की पत्नी शासन करते हुए 914 में मार दी गयी। अराजकता के माहौल के मध्य 939 में उत्पल वंश समाप्त हुआ। "उत्पल वंश की समाप्ति के पश्चात् ब्राह्मणों की एक सभा ने यशष्कर नामक व्यक्ति को कश्मीर के शासक के रूप में चयनित किया, जिसने कश्मीर में अव्यवस्था-अराजकता को समाप्त कर राजनीतिक स्थायित्व प्रदान करने की दिशा में सशक्त प्रयास किया और इस प्रकार कश्मीर में लोहार वंश की स्थापना हुई। यशष्कर के शासनकाल में कश्मीर में समृद्धि के युग का पुनरोदय हुआ।"[33]

यशष्कर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र संग्रामदेव गद्दी पर बैठा परंतु प्रवरगुप्त नाम के मंत्री ने उसकी हत्या कर दी। प्रवरगुप्त के पश्चात् क्षेमगुप्त सिंहासन पर बैठा जिसकी पत्नी दिद्दा कश्मीर की एक पराक्रमी शासिका बनी और 'महिला शासनतंत्र' की स्थापना की। उसके मंत्री नरवाहन ने शासन संभालने में सहायता की। "रानी दिद्दा की कश्मीर एवं भारतीय इतिहास की प्रसिद्ध महिला शासकों में गणना की जाती है। वह लोकोपकारी कार्यों एवं सुव्यवस्थित शासन के लिए प्रसिद्ध है। 1003 ई. में रानी दिद्दा की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र संग्रामराज सिंहासन पर आसीन हुआ, जिसे लोहार राजवंश का वास्तविक संस्थापक माना जाता है।"[34]

संग्रामराज के समय में ही महमूद गजनवी का असफल आक्रमण कश्मीर पर हुआ। संग्राम की मृत्यु के बाद उसके पुत्र अनंत का शासन कश्मीर के लिए समृद्धि का दौर था। शासन-संचालन का कार्य उसकी पत्नी सूर्यमती ने संभाला। तत्पश्चात् हर्ष नामक शासक का नाम मंदिरों को नष्ट करने व लूटने के लिए

---

33. मानिक लाल गुप्त, कश्मीर समस्या : एक विवेचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ-3
34. वही

कुख्यात है। वह एक जनविद्रोह में मारा गया। 1101 में उक्कल गद्दीनशीन हुआ जिसे 'पागल राजा' भी कहा जाता था। "जयसिंह (1128-55 ई0) इस वंश का अन्तिम शासक था। कल्हण की 'राजतरांगणी' का विवरण जयसिंह के शासन के साथ ही समाप्त हो जाता है।"[35] नैतिक पतन बदस्तूर जारी रहा। बोपादेव वंश और डामर वंश क्रमश: शासन में रहे। मंगोल आक्रान्ता जुल्जू के आक्रमण के समय सहदेव किश्तवार भाग गये। घाटी के लोगों को बचाने में कोटा रानी की मदद शाहमीर और रिंचन ने की। कोटा साम्राज्ञी के अन्त के साथ हिन्दू राज्य समाप्त हुआ।

1.4.2 <u>मध्यकाल</u>

कश्मीर को जुल्चू के आक्रमण से बचाने के तुरंत बाद रिंचन स्वशासन की ताक में था। इसलिए सहदेव के वापस आने की कोशिश पर रोक लगा दी तथा रामचन्द्र की हत्या कर उसकी पुत्री कोटा रानी से विवाह कर लिया। "रिंचन ने इस्लाम धर्म अपना लिया और वह सुल्तान सदर-अल-दीन के नाम से जाना गया।"[36] एक शासक के रूप में वह प्रतिभाशाली था परंतु शासनकाल बहुत कम समय के लिए ही रहा! "सदरूद्दीन की मृत्यु के बाद कोटा रानी का शासन केवल 50 दिन ही रह सका। स्वात के शाहमीर ने कश्मीर पर 1393 ई. में आधिपत्य कर लिया और अपना नाम शमसुद्दीन रखा।"[37] शाहमीर कश्मीर का पहला मुसलमान शासक था।

1.4.2.1 <u>इस्लाम का वर्चस्व</u>-

शाहमीर ने कश्मीर में इस्लाम का प्रचार किया और धर्मांतरण को समर्पित भी रहा। इस्लामी राज के कारण कश्मीर में सूफ़ी संतों का आगमन शुरू हुआ। शाहमीर ने स्वयं भी मुस्लिम धर्मप्रचारकों को कश्मीर आमंत्रित किया। "1339 में

---

35. वही, पृष्ठ- 4
36. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, पृष्ठ- 39
37. गोपीनाथ श्रीवास्तव, कश्मीर: समस्या और पृष्ठभूमि, पृष्ठ- 4

शाहमीर सुल्तान शम्मसुद्दीन के नाम से कश्मीर में गद्दीनशीन हुआ और मस्जिदों में उसके नाम का खुत्बा पढ़ा गया। इस वंश को अगले 222 वर्षों तक कश्मीर पर राज करना था। इस दौरान इस्लाम कश्मीर का वर्चस्वशाली धर्म बन गया।"[38]

सैयदों ने कश्मीर में इस्लाम को बढ़ावा दिया। शमसुद्दीन के जबरन धर्मान्तरण के प्रयासों के प्रमाण न के बराबर उपलब्ध हैं। इस दौरान कई सूफी संतों-बुलबुल शाह, सैयद जलालउद्दीन, सैयद ताजुद्दीन और सैयद हुसैन सिमनानी आदि के कश्मीर आने के साक्ष्य मिलते हैं। "सैयदों ने कश्मीर में खुलकर इस्लाम का प्रचार किया। कश्मीर प्रदेश तब पूर्णतया हिन्दू राज्य था। उनको यह भय था कि कहीं हिन्दू कट्टरपंथ इस्लामी शासन के लिए संकट न पैदा कर दें। उन्होंने अपने सांस्कृतिक समर्थक पैदा करने के लिए धर्म परिवर्तन का सहारा लिया।"[39]

शाहमीर के पश्चात् कुतुबुद्दीन का शासन शुरू होता है। इसी शासक के काल में शाह हमदानी का कश्मीर आना होता है। खानकाह की स्थापना की जाती है। चमत्कारों के माध्यम से धर्मपरिवर्तन करने के प्रयास किए जाते हैं परंतु जनता में असन्तोष के फलस्वरूप शाह हमदानी को वापस जाना पड़ता है।

1.4.2.2 धर्मान्तरण का दौर और सिकंदर बुतशिकन-

1389 ई0 में सुल्तान सिकंदर का राज्यारोहण होता है। कश्मीरी इतिहास में सिकंदर एक क्रूर एवं मूर्ति भंजक शासक के रूप में दर्ज किया गया। इसी दौरान मीर हमदानी का कश्मीर आना होता है और जबरन धर्म-परिवर्तनों का काला युग शुरू होता है। भारी संख्या में मन्दिर नष्ट किए जाते हैं। सैय्यदों का दबदबा कायम हो जाता है और सुहा भट्ट इस्लाम कबूल कर धर्म परिवर्तन का संचालन करता है, "मतांतरण का ऐसा दौर चला कि जिन्होंने इस्लाम स्वीकार करने से इनकार कर दिया। उनका या तो कत्ल कर दिया गया या डल झील में

38. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, पृष्ठ- 42
39. अनुपम त्यागी, कश्मीर: एक कसौटी, पृ. 27

डुबोकर मार दिया गया। अधिकांश कश्मीरी मतांतरण से बचने के लिए कश्मीर छोड़कर चले गए। बुतशिकन ने सरहदों पर पहरेदार बिठा दिए ताकि कोई कश्मीरी भाग न सके।"[40] ऐसा कहा जाता है कि कश्मीर में उस समय केवल ग्यारह कश्मीरी हिंदू घर बच पाए थे। मजहबी रंगों से भरा गया बुतशिकन कश्मीर के हिंसक अध्यायों में है।

1.4.2.3 <u>जैन-उल-आब्दीन या बड़शाह का स्वर्णिम काल और चक राजवंश</u>-

कश्मीर के इतिहास में जैनुल आब्दीन की एक प्रिय, योग्य एवं पुनरुत्थानी शासक के रूप में मुक्तकंठ से प्रशंसा की गयी है। वह एक उदार शासक था। अपने पिता सिकंदर बुतशिकन की नीतियों को उसने उलटते हुए कश्मीरी जनता की रक्षा की तथा उनकी आस्थाओं और परम्पराओं से खुद को जोड़ा। कश्मीर में हो रहे मतांतरण पर रोक लगाने के साथ ही बाहर गये कश्मीरियों को वह वापस लाया। मंदिरों का पुनरुद्धार करा दान दिए। बाह्मणों का पुनः दरबार में प्रवेश हुआ तथा कारकून वर्ग का उदय हुआ। यह वर्ग फ़ारसी सीखे, शासकीय सेवा में कार्यरत कर्मचारियों का था। बड़शाह के कालखंड को कश्मीर का अन्तिम स्वर्णयुग माना जाता है। "जैन-उल-आब्दीन का जनता के प्रति अथाह स्नेह और समर्पण। उसके पचास साल के शासनकाल में कश्मीर के सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था जो अनछुआ छूटा हो।"[41]

कश्मीर को एक मजबूत राज्य बनाने में बड़शाह ने कोई कसर न छोड़ी। धार्मिक सहिष्णुता उसकी प्रिय नीति थी। राजस्व व कृषि व्यवस्था में व्यापक सुधार व समृद्धि की। उद्योग और व्यापार में नए रास्ते खोले। जैनुल आब्दीन का पुत्र हैदरशाह उससे उलट मजहबी उन्माद को बढ़ावा देने वाला हुआ। वह एक क्रूर व कमजोर शासक था जिसे चकों ने हराकर चक वंश की स्थापना की।

40. बहुवचन पत्रिका, अंक-64-65-66 पृ. 314

41. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, पृष्ठ- 57

चक वंश ने 1561-1586 ई० तक कश्मीर पर शासन किया। चक राजवंश की क्रूरता का शिकार हिन्दू और सुन्नी मुस्लिम दोनों थे। इसी वंश के शासक युसूफ शाह और उनकी प्रेमिका हब्बा खातून ने गुलमर्ग की तलाश की थी। अकबर ने 1586 ई0 में युसूफ शाह को मात देकर मुगल शासन की नींव रखी।

1.4.2.4 <u>मुगलों का दौर एवं अफगानों का शासन-</u>

मुगल शासन ने कश्मीर में स्थिरता लाने का कार्य किया। अकबर की सर्वधर्म समभाव की नीति कारगर साबित हुई। न्याय और शांति मुख्य उद्देश्य थे। हिन्दुओं पर लगे जजिया कर को हटाने के साथ ही उसने श्रीनगर का प्रसिद्ध हरि पर्वत का दुर्ग भी बनवाया। टोडरमल ने भूमि की पैमाइश कर नये लगान निश्चित किए। अकबर की ओर से उसके सूबेदार कश्मीर पर शासन करते रहे तथा समय-समय पर वह भी कश्मीर यात्रा कर क्षेत्र समृद्धि में संलग्न रहा।

कश्मीर के सौन्दर्य में वृद्धि का अधिकांश श्रेय अकबर के पुत्र जहाँगीर को जाता है। उसने कश्मीर में खूबसूरत बागों का निर्माण कराया। कश्मीर के सौन्दर्य का वह प्रेमी था तथा मृत्यु के समय भी कश्मीर उसकी आखिरी ख्वाहिश थी। शासक ने कश्मीर में अनेक प्रशासनिक व सामाजिक सुधार भी किए। जहाँगीर के बाद उसका पुत्र शाहजहाँ कश्मीर पर शासन करने लगा। कश्मीर को साहित्यिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्नति के अवसर दिए। कश्मीरी पंडितों का धीरे-धीरे राजस्व विभाग में दबदबा कायम होने लगा तथा वे मुगल दरबारों के साथ ही अलग-अलग रजवाड़ों में प्रवेश करने लगे।

औरंगजेब अपने पूर्व के शासकों की श्रृंखला से भिन्न मजहबी उन्माद में गले तक डूबा हुआ शासक था। उसने धर्मसहिष्णुता की सारी नीतियाँ पलट दीं। "देखें तो बाकी मामलों में औरंगजेब का समय अपने पूर्ववर्ती शासकों जैसा ही था। अच्छे-बुरे सूबेदार रहे। बाढ़ भाई, भूकंप आया, शिया-सुन्नी झगड़े हुए, राजस्व व्यवस्था में परिवर्तन हुए लेकिन धार्मिक असहिष्णुता की जो विषबेल उस दौर में

बोई गई उसने बाकी भारत की तरह कश्मीर में भी मुगल शासन के पतन की इबारत लिख दी।"[42]

मुगलों के बाद कश्मीर पर अफगान शासकों ने राज किया। लूट और अत्याचार आम कश्मीरी की रीढ़ तोड़ने लगे। "कश्मीर पर अफगानों के कब्जे की पूर्वपीठिका हिन्दुस्तान पर नादिरशाह के हमले (1738-39) के समय ही लिख दी गई थी।"[43] अफगानी सरदार अब्दुला का शासनकाल सबसे बर्बर रहा। उसके डर से हिन्दू स्त्रियों ने आत्महत्याएं की। इसके साथ ही पठान शासक असद खां के 'कश्मीरी हूरों' को हरम में भरने के सिलसिलों का भी जिक्र है। "अत्तामुहम्मद खान ऐसा सूबेदार हुआ जिसके जमाने में कश्मीरी अपनी सुन्दर लड़कियों का सिर मुंडवा देते थे, उनकी नाक काट देते थे, जिससे वे कुरूप लगे और अत्ता खां के चंगुल से बच सकें।"[44]

1.4.3 <u>आधुनिक काल</u>- कश्मीर के इतिहास का आधुनिक कालखण्ड कश्मीर में सिखों के शासन से प्रारम्भ होता है। पठान शासकों से कश्मीरी जनता की रक्षा हेतु बीरबल दर नामक राजस्व विभाग अधिकारी ने लाहौर के रणजीत सिंह से मदद हेतु याचना की। रणजीतसिंह ने भरसक प्रयास कर कश्मीर को सिख शासन में मिला लिया। कश्मीरियों को अफगानों के क्रूर शासन के खात्मे के बाद सिख शासन से काफी उम्मीदें थीं। इन उम्मीदों को तब कोई सहारा न मिला जब आर्थिक शोषण में कोई कमी न आयी। कश्मीर का सामरिक व आर्थिक महत्त्व रणजीत सिंह बखूबी जानते थे। सिखों की ओर से कश्मीर में मोतीराम, कृपाराम, शेरसिंह, मियांसिंह आदि गवर्नर रहे। इनमें कृपाराम के समय कश्मीर में भीषण अकाल पड़ा और भारी मात्रा में जन-धन की हानि हुई ।

1.4.3.1 <u>सिख शासन का अवसान</u>-

---

42. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, पृष्ठ- 133
43. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीर और कश्मीरी पंडित, पृ.- 78
44. गोपीनाथ श्रीवास्तव, कश्मीर - समस्या और पृष्ठभूमि, पृ. 12

रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद पंजाब में अराजकता छा गयी। यह वह समय था जब महाराजा की मृत्यु के बाद डोगरा शासकों, जम्मू के राजा गुलाब सिंह के भाई सुचेत सिंह तथा वजीर ध्यान सिंह, उसके बेटे और हीरा सिंह के बीच सत्ता संघर्ष जोरों पर था। कश्मीर अंग्रेजों की नजर में भी लगातार निशाने पर था। इसके लिए अंग्रेजों ने गुलाब सिंह से मदद मांगी।

1845 के दिसम्बर में प्रथम आंग्ल-सिख युद्ध शुरू हुआ जिसमें रानी जिन्दान के गुलाब सिंह से सहायता मांगने पर गुलाब सिंह ने मना कर दिया तथा समझौते का प्रस्ताव रखा। "1846 के इस पहले आंग्ल-सिख युद्ध के बाद कश्मीर के इतिहास ने एक बड़ी करवट ली। रणजीत सिंह के सिपहसालार रहे और सिख सेना के प्रमुख जम्मू के तत्कालीन राजा गुलाब सिंह डोगरा ने अमृतसर समझौते में सिख साम्राज्य पर अंग्रेजों द्वारा लगाये गए डेढ़ करोड़ के जुर्माने का आधा हिस्सा चुकाकर बदले में जम्मू, कश्मीर, गिलगिट, बाल्टिस्तान और लद्दाख का शासन हासिल किया और इस तरह आधुनिक जम्मू और कश्मीर राज्य पहली बार अस्तित्व में आया।"[45] इस तरह कश्मीर पर सिख शासन का खात्मा होता है तथा गुलाब सिंह की कूटनीतियों के फलस्वरूप कश्मीर पर डोगराओं का अधिकार हो जाता है। इस संधि को 'अमृतसर सन्धि' के नाम से जाना गया।

1.4.3.2 <u>डोगरा राज</u>

गुलाब सिंह ने जम्मू-कश्मीर राज्य को आर्थिक तौर पर मजबूत जान लिया था और यही कश्मीर प्राप्ति के प्रयासों का मुख्य कारण भी था। गुलाब सिंह ने जागीरों का प्रबंधन करने के साथ ही तत्कालीन समय में उभरने वाले विवादों का भी दमन किया। कश्मीर की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाया। भारी करारोपण इस राज में भी जारी रहा। बेगार व्यवस्था भी जस की तस बनी रही। गुलाबसिंह के बाद उनके उत्तराधिकारी रणवीरसिंह राजा बनें और कश्मीरी जनता के जीवन व उद्योग में सुधार हेतु प्रयासरत भी रहे। रणवीरसिंह की मृत्यु के पश्चात् कश्मीर का शासन प्रताप सिंह के हाथ में आ गया और उसी दौरान अंग्रेजों ने गिलगिट

45. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीर और कश्मीरी पंडित, पृ.105

एजेन्सी भी बनायी। इसके पश्चात् कश्मीर के राजा हरि सिंह ने गद्दी संभाली। डोगरा शासकों में हरि सिंह एक कुशल प्रशासक के रूप में जाने गए। "डोगरा खानदान का पहला आधुनिक शिक्षित हरि सिंह अपने पुरखों की तरह अंध साम्प्रदायिक भी नहीं था और जिस तरह उसने शासन शुरू किया, वह उम्मीदें जगाने वाला था। उसने कृषि राहत अधिनियम बनाया जिसने किसानों को महाजनों के चंगुल से आजाद होने में मदद की, अनिवार्य शिक्षा के लिए नियम बनाये जिससे 'जबरीस्कूल' खुले और सभी के लिए बच्चों को स्कूल भेजना जरूरी बना दिया गया।"[46]

हरि सिंह के राज्यकाल में ही 'राज्य नागरिकता कानून' बना और यही वह समय था जब फ़तेहकदल में युवा मुस्लिम छात्रों द्वारा 'रीडिंग रूम पार्टी' का गठन किया गया। इसी पार्टी के प्रतिनिधित्वकर्ता के रूप में शेख अब्दुल्ला का कश्मीरी राजनीति पटल पर उदय होता है। इसके पश्चात् ग्लांसी आयोग का गठन होता है जिसका हिन्दुओं द्वारा बहिष्कार कर दिया जाता है। 1936 में डोगरा शासन के विरोध में जिम्मेदार सरकार आन्दोलन शुरू होता है।

डोगरा शासन के विरुद्ध विरोध की आवाजें ऊँची होने लगी और साथ ही शेख अब्दुल्ला का व्यक्तित्व भारतीय राजनीति में भी प्रभावी होने लगा। 'मुस्लिम कांफ्रेस' के नाम में साम्प्रदायिकता की भावना के विचार से 1939 में हुए अधिवेशन में इसका नाम 'नेशनल कांफ्रेस' कर दिया गया। सन् 1940 और 1944 में क्रमशः जवाहरलाल नेहरू और जिन्ना ने कश्मीर यात्राएँ की तथा 1945 में रामचंद्र काक डोगरा राज के प्रधानमंत्री बने। 1946 में 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन शुरू हुआ जो अमृतसर संधि को कश्मीर का विक्रय पत्र मानते हुए उसे तोड़ने की बात पर आधारित था। इसका दमन करते हुए शेख अब्दुल्ला व उनके सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

भारत की आजादी का स्वप्न साकार होने जा रहा था। द्विराष्ट्र की नीति के प्रभावी होने की आस में दो भिन्न राष्ट्रों से मिलन के द्वंद्व उत्पन्न हो रहे

---

46. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, पृष्ठ- 222

थे। "इंगलिस्तान की सरकार ने जून 1947 में ब्रिटिश भारत के विभाजन और उसे सत्ता हस्तांतरित करने की घोषणा की। एक और भारत भी था- रियासती भारत।... ब्रिटिश सरकार ने कहा कि अब वह देशी रियासतों की सुरक्षा और उनके वैदेशिक मामलों की देखभाल से मुक्त हो जायेगी, रियासतें अब उसके खूँटे से बँधी नहीं रहेंगी, वे आजाद हो जायेंगी और यह उनकी मर्जी पर निर्भर होगा कि वे नये देशों-भारत और पाकिस्तान-से सम्बंध कायम करें या न करें।"[47]

1.4.3.3 <u>अनिर्णय की स्थिति और कबाइली आक्रमण</u>

भारत 15 अगस्त, 1947 को आजाद हो गया तथा भारत और पाकिस्तान नामक दो स्वतंत्र राष्ट्र अस्तित्व में आए। रियासतें अपनी स्वेच्छानुसार किसी एक राष्ट्र का हिस्सा बन गयीं। इस समय तक महाराजा हरि सिंह किसी भी राष्ट्र का हिस्सा नहीं बने थे। उन्होंने किसी भी देश से मिलने से इनकार कर दिया। "ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता की समाप्ति पर जम्मू-कश्मीर की रियासत तीन विकल्पों से खेल रही थी- (1) पाकिस्तान में शामिल हो, (2) भारत में शामिल हो, (3) स्वतंत्र रहे। रियासत की स्थिति यह थी कि महाराजा हिन्दू था और 78 प्रतिशत आबादी मुसलमान।"[48]

हरि सिंह अनिश्चितता की स्थिति में थे। दोनों ही देशों को उनकी यह स्थिति उचित नहीं प्रतीत हो रही थी, विशेषकर पाकिस्तान कश्मीर को अपनी ओर मिलाने के लिए प्रयासरत था। कश्मीर की यह स्वतंत्र सत्ता बहुत दिनों तक बरकरार न रह सकी। "पाकिस्तान में कश्मीर के विलयन के लिए जिन्ना दांव-पेच खेलने लगे। जब सफलता नहीं मिली तब कश्मीर की सीमा पर हमले शुरू कर दिए गए और सशस्त्र पाकिस्तानियों ने घाटी पर धावा बोल दिया। महाराजा ने भारत सरकार से सहायता की याचना और भारत में अधिमिलन के लिए प्रार्थना की। 27 अक्टूबर 1947 को महाराजा द्वारा हस्ताक्षरित अधिमिलन-पत्र को भारत

---

47. सं०. राजकिशोर, आज के प्रश्न : कश्मीर का भविष्य पृष्ठ- 12

48. सं०. राजकिशोर, आज के प्रश्न : कश्मीर का भविष्य पृष्ठ- 13

के गवर्नर-जनरल ने स्वीकार कर लिया और कश्मीर संवैधानिक दृष्टि से भारत का अंग हो गया।... पाकिस्तान ने इस अधिमिलन को मानने से इनकार कर दिया।"[49]

कश्मीर के भारत में विलय को पाकिस्तान स्वीकार न कर सका। दोनों राष्ट्रों के बीच विवाद बढ़ता गया और भारतीय राजनीतिज्ञों ने यह समस्या जनवरी, 1948 को यू.एन.ओ. के सुरक्षा परिषद् में रखी। कश्मीर को लेकर सुरक्षा परिषद् में हुए निर्णयों का क्रियान्वयन अभी भी नहीं हो सका है क्योंकि पाकिस्तान अपनी सेनाएँ पीछे हटाने से इनकार कर रहा है और ऐसी स्थिति में 'जनमतसंग्रह' के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार नहीं हो पा रहा है।

1.4.3.4 <u>आतंक का दौर और कश्मीरी पंडितों का निर्वासन-</u>

यू.एन.ओ. में कश्मीर मुद्दा उठने के बाद से ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कश्मीर दाव-पेंचों का शिकार होता आया है। कश्मीर को इसके बाद अनेक जख्म सहने पड़े। पाकिस्तान ने अपनी कुनीतियाँ जारी रखीं तथा राज्य व्यवस्था का ढुलमुलपन स्थितियाँ बुरी बनाने में जिम्मेदार हुआ। राजनीति में उतार-चढ़ावों का सिलसिला और 1987 में हुए आम चुनावों में धांधली आतंकवाद की उत्पत्ति का कारण बनी। अनगिनत आतंकवादी संगठन कश्मीर में सक्रिय हो गए तथा मजहबी उन्माद की जो इबारत 19 जनवरी, 1990 की रात लिखी गयी, उसका अंकन इतिहास की एक बड़ी मानव त्रासदी के रूप में किया जाता है। कश्मीरी पंडितों को जबरन निष्कासित किया गया और आज भी वे अपनी जन्मभूमि पर न लौट पाने को अभिशप्त हैं। कश्मीर आजादी के बाद आतंकवाद के झंझावातों का शिकार होता रहा है। आतंकवाद को रोकने के लिए भारत सरकार ने मजबूती से कदम उठाए।

मनमोहन सरकार ने सन् 2011 में विस्थापित पंडितों के लिए राहत योजना शुरू की। जिस पर घाटी में रह रहे पंडितों द्वारा अपने हिस्से की माँग तथा सिखों

49. गोपीनाथ श्रीवास्तव, कश्मीर : समस्या और पृष्ठभूमि, पृ. 4

द्‌वारा विरोध के कारण रोक लग गयी। आतंकवाद के वीभत्स रूप और कश्मीरी जनजीवन में गुणवत्ता के उद्‌देश्यों को ध्यान में रखते हुए 5 अगस्त 2019 को अनुच्छेद 370 और 35A को हटा दिया गया। जम्मू और कश्मीर राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों में बांट दिया गया। इस प्रकार अपने उतार-चढ़ावों से अटे हुए इतिहास के साथ कश्मीर एक सुखद भविष्य हेतु आशान्वित अवश्य है।

1.5 कश्मीर समस्या : एक उलझा समीकरण-

वर्तमान में कश्मीर समस्या को एक जटिल समीकरण के रूप में देखा जा रहा है। भारत और पाक राष्ट्र के बीच कश्मीर मुद्‌दा एक नासूर बनता जा रहा है। दोनों ही राष्ट्रों की कश्मीर को लेकर अपनी अलग ज़िद है। इस तनाव में निश्चय ही कश्मीरियों का जनजीवन सामान्य नहीं हो पा रहा है। कश्मीर को लेकर लिए गए अनेक अस्पष्ट निर्णयों ने आज उसे ऐसे दोराहे पर खड़ा कर दिया है जहाँ से सुखद भविष्य व सामान्य वर्तमान के सपने धुंधले होते जा रहे हैं। "भारत में विलय के साथ ही कश्मीर घाटी में धर्म और सत्ता की जुगलबन्दी ने समाज-जीवन के मूल स्वरूप को विकृत कर डाला। उसकी छाती पर अलगाव और घृणा के विषैले पौधे जमाये। उन्हें मज़हबी उन्मतता और विवादास्पद नारों से सींचा। पल्लवित किया। जन-सामान्य के विवेक पर भावनात्मक प्रभुत्व बनाए रखा। लोग हर संवेदनशील नारे के पीछे पागलों की तरह दौड़ें। विलय, धारा 370, जनमत-संग्रह, स्वायत्तता, पाकिस्तान एजेंडे पर रहे।"[50]

कश्मीर समस्या आज इतनी उलझ चुकी है कि इसको सुलझाना अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रहा है। 'कश्मीर' राष्ट्रवाद की भावना का शिकार हो एक ऐसा विषय बन गया है जहाँ कश्मीर को जानना जरूरी नहीं लगता परंतु वो भारत का है और रहेगा, पर कट्‌टर पक्ष रखे जाते हैं। कश्मीर को भारत में होने को लेकर जितने संकल्प लिए गए, उनकी स्थिति, मुश्किलों व उम्मीदों को समझने के उतने ही कम प्रयास हुए। भारत में सशर्त विलय के साथ ही कश्मीर समस्या रूप लेना

---

50. प्रगतिशील वसुधा पत्रिका, अंक 74, पृष्ठ- 28

प्रारम्भ करती है। हरि सिंह के स्वतन्त्र शासन की स्वार्थपरता भरी प्रवृत्ति ने कश्मीर संघर्ष का कारण बनी।

कश्मीर के प्रति दायित्वों के कुशल निर्वहन का प्रश्न आज भी बना हुआ है। "कश्मीर के भारत में 27अगस्त 1947 को शामिल होने के बाद भारतीय शासक वर्ग की चार-पाँच वर्षों बाद यह धारणा बन गयी कि 'हर हालत में कश्मीर भारत में रहना चाहिए।' 'क्यों और कैसे' रहना चाहिए, यह प्रश्न गौण बनता चला गया। इससे कश्मीर की जनता जिस आकांक्षा से भारत में शामिल हुई थी, उसको पूरा करने के दायित्व बोध का ही भारतीय शासक वर्ग में लोप हो गया। लफ्फाजीवाली भाषा में 'कश्मीर जल रहा है', कहने की हमारी इच्छा नहीं। वह हताश है और उसकी हताशा को समझने की जरूरत है। यह समझना आत्मनिरीक्षण और शासक वर्ग के प्रचार तंत्र के माया जाल को काटने का प्रयत्न चाहता है। 45 वर्षों में जो हिंदू-मुस्लिम एकता और केंद्र-राज्य संबंधों का एक आदर्श राज्य हो सकता था, उसे आज कर्फ्यू, तलाशी, नकली-असली मुठभेड़ों का राज्य बना दिया गया है।"[51]

1.5.1 <u>राजनैतिक स्वार्थपरता का केन्द्र–</u>

भारत की आजादी के साथ जिन तीन रियासतों का विलय प्रश्नों के घेरे में था, वह थीं- हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर। क्षेत्रफल के मामले में जम्मू-कश्मीर सबसे बड़ी रियासत थी। हैदराबाद व जूनागढ़ का विलय निश्चित रणनीतियों के तहत भारत में हो गया परंतु कश्मीर का अधिमिलन कबाइली आक्रमण से बचाव हेतु विशेष परिस्थितियों में सशर्त हुआ। विलय के समय कश्मीरी जनता इस विलय से सहमत थी परंतु इस विलय का समझौते के स्टैंडस्टिलरूप में होना ही अनिश्चित भविष्य के लिए उत्तरदायी रहा।

---

51. सं० राजकिशोर, आज के प्रश्न : कश्मीर का भविष्य, पृष्ठ- 47

समय व्यतीत होने के साथ कश्मीरी जनता का मोहभंग हुआ तथा आज वो शायद भारत के साथ विलय के पक्ष में नहीं हो। "इस दशक के प्रारंभ से कश्मीर घाटी में इतनी ज्यादा अशांति है कि बहुत-से लोगों को पहली बार एहसास हुआ कि कश्मीर की जनता भारत में रहना नहीं चाहती और उसे उसकी मर्जी के खिलाफ रख पाना प्रायः असंभव है। इसीलिए पहली बार कुछ ऐसे सच भी प्रकट किये जाने लगे हैं जिन्हें पाँच-दस वर्ष पहले तक देश प्रेम के नाम पर और अंध राष्ट्रवाद के चलते छिपाया जाता था।"[52]

कश्मीर राजनीतिक स्वार्थपरताओं का शिकार हुआ। कश्मीर के विश्वसनीय नेता शेख अब्दुल्ला कश्मीर पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए लगातार सौदे करते रहे। उनके भाषणों में नित नये रूख का होना जनता को भी भ्रमित करता रहा। साम्प्रदायिक सद्भावों का प्रतिनिधि शासक अचानक से ही मजहबी रंग में रंग गया और उसे कश्मीरी हिन्दू 'भारतीय एजेंट' लगने लगे। वह शासक जिस पर कश्मीरी जनता चाहे वे सिख हो, हिन्दू हो, मुस्लिम हो, सभी अंधश्रद्धा रखते थे, दोहरी भाषा बोलने लगे।

कश्मीरी राजनीति में फारूक अब्दुल्ला के रूप में परिवारवाद गुणवत्ता के ऊपर चुना गया। शेख अब्दुल्ला के दुहरे चरित्र पर अक्सर प्रश्नचिन्ह खड़े होते हैं। "वे साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के शख्स थे और उनका पंथनिरपेक्षता से कुछ लेना-देना नहीं था। शेख अब्दुल्ला व्यक्तिगत सत्ता के लिए जोड़-तोड़ करते थे। नेहरु जिसको शेख की धर्मनिरपेक्षता समझ रहे थे वह वास्तव में जिन्ना से समझौता ना हो पाने के कारण विकल्पहीनता थी। जिन्ना कश्मीर योजना में शेख अब्दुल्ला का कोई स्थान नहीं था। जिन्ना कश्मीर को अपनी जेब में मानकर चल रहे थे। चाहे वह स्वयं आ जाये या फिर जबरदस्ती छीन लिया जाए।"[53] शेख की कूटनीतियाँ नेहरु को देर से समझ आयी जब उन्होंने अपने आंतरिक स्वायत्तता की मांगे मुखर

---

52. एक सुन्दर सपने की ट्रेजेडी, अशोक सेकसरिया, सं. राजकिशोर, आज के प्रश्न: कश्मीर का भविष्य, पृ. 11
53. कुलदीप चंद अग्निहोत्री, जम्मू कश्मीर की अनकही कहानी, पृ. 64

करते हुए भारत की नीयत पर भी प्रश्न किये। 1952 में शेख और नेहरु के मध्य दिल्ली समझौता हुआ जिसका विरोध करते हुए 1953 में श्यामा प्रसाद मुखर्जी की संदिग्ध स्थिति में मौत हो गयी।

कश्मीर में एक के बाद एक शासक अपनी नीतियों को लेकर आए। शेख के बाद बख्शी गुलाम मोहम्मद के शासन में कुछ राहत अवश्य थी। चुनाव अधिकतर धांधली से अटे रहे। लोकतांत्रिक अधिकारों के हनन से जनता में आक्रोश उभरने लगा। 1982 में फारूक अब्दुल्ला की सरकार बनी जिसे रद्द कर 1984 में मुहम्मद शाह को नेतृत्व की कमान सौंपी गयी। इसके बाद राजीव गांधी और फारूक अब्दुल्ला के मध्य समझौता हुआ। राजनीतिक तिकड़मबाजियों का खामियाजा कश्मीर को 1987 में हुए आम चुनावों की धांधली के कारण उपजे आतंकवाद के रूप में भोगना पड़ा। आतंकवाद कश्मीर के शरीर में जोंक की तरह चिपक चुका है और धीरे-धीरे उसे निष्प्राण कर रहा है। आतंकवाद का उग्र रूप 1990 में हुए कश्मीरी पंडितों के निष्कासन के रूप में देखा गया। कश्मीर एक युद्धभूमि बन चुका है जो 1965, 1999 और अन्य सैन्य मुठभेड़ों का गवाह है।

कश्मीर के घावों पर मरहम लगाने के अनेक प्रयास हुए पर उनकी सार्थकता साबित न हो सकी। प्रायः कश्मीर से जुड़ा चिन्तन अनेक स्वार्थों के बीच पिस जाता है। राष्ट्र और कश्मीर हित से कहीं ज्यादा उनके लिए अपने राजनीतिक रुझान और वोट मायने रखते आये हैं। इसलिए आतंकवाद और अलगाववाद को खत्म करने के लिए जैसी मजबूत शक्ति की आवश्यकता है, उसका अभाव है। "भारत अपना चरित्र बदल कर ही कश्मीर से अपनी एकता को संभव कर सकता है। शायद अभी भी समय है। लेकिन भारत में फिलहाल कश्मीर को ले कर जिस तरह उन्माद फैलाया जा रहा है और वास्तविक सवालों की उपेक्षा हो रही है, उसे देखते हुए यह कहना चरम आशावाद की अभिव्यक्ति मानना चाहिए।"[54]

---

54. राष्ट्र ऐसे बनाए जाते हैं, संपादक की बात, सं. राजकिशोर, आज के प्रश्न: कश्मीर का भविष्य, पृ. 8

कश्मीर में अपने हित विशेष की तलाश कर रहे राष्ट्र मौन गतिविधियों को निरन्तर क्रियान्वित कर रहे हैं। उनके कुछ हित प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट है परंतु ऐसा भी बहुत कुछ है जिसे समझने के लिए सूक्ष्म विश्लेषण की आवश्यकता है। कश्मीर घाटी में ऐसे अनेक आंदोलन चलाए जा रहे हैं जिनका समर्थन विदेशी ताकतें आर्थिक सहायता के माध्यम से कर रही हैं। विनोबा भावे की कश्मीर यात्रा के दौरान 'कश्मीर का छह मुल्कों से सीधा ताल्लुक' पड़ाव के अन्तर्गत लिखी पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं- "मेरे पांव में फोड़ा है, तो वह केवल पांव का ही नहीं, कुल जिस्म का है। इसमें सिर्फ पांव को ही दिलचस्पी नहीं, सारे जिस्म को है। हम यहाँ कश्मीर वैली में बैठे हैं। एक बाजू में उसका संबंध हिन्दुस्तान से है। दूसरी बाजू में पाकिस्तान और तीसरी बाजू में अफगानिस्तान से है। फिर उधर चीन और रूस से भी संबंध है और अमेरिका से भी। मगर वह दीखता नहीं, पाकिस्तान में अमेरिका पड़ा है। इस तरह छह मुल्क इसमें बिल्कुल 'डायरेक्टली कन्सर्ड' है। उनका इससे सीधा ताल्लुक है।"[55]

1.5.2 <u>कश्मीर का सामरिक महत्त्व व अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति-</u>

जम्मू-कश्मीर सामरिक रूप से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। कश्मीर का यह सामरिक महत्त्व कश्मीर घाटी के कारण नहीं बल्कि गिलगित-बलूचिस्तान वाले क्षेत्र में अधिक है। यही वह क्षेत्र है जो पाकिस्तान को चीन से मिलाता है। अगर आज यह क्षेत्र हमारे पास होता तो चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे का कोई अस्तित्व नहीं होता। यह क्षेत्र अधिक ऊँचाई पर होने के कारण अपने आस-पास के सभी क्षेत्रों को प्रभावित एवं नियंत्रित करता है। इसकी पहुँच मध्य एशिया व अन्य भागों तक भी है। भारत व पाकिस्तान और उसमें भी विशेषकर पाकिस्तान को जो स्वच्छ जल उपलब्ध होता है उसका 90% जल लगभग यहीं से आता है। यह खनिज पदार्थों और प्राकृतिक संपदा का भी भंडार है।

---

55. विनोबा भावे, मेरी कश्मीर यात्रा, बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, पृष्ठ-471

कश्मीर के भारत में विलय को लेकर अब तक जो विवाद की स्थिति बनी हुई है वह सोददेश्य कूटनीतियों व अन्तर्राष्ट्रीय षड्यंत्र का परिणाम है। यह षड्यंत्र ब्रिटिश काल से ही रचा जा रहा है। "पंडित नेहरू जम्मू-कश्मीर में जब लोगों की राय जानने की बात करते थे तो यह उनकी सामान्य लोकतांत्रिक आस्था के कारण ही था। लेकिन उस समय के गवर्नर जनरल लार्ड माउंटबेटन की इसमें भूमिका गहरे ब्रिटिश षड्यंत्र के कारण ही थी। अधिनियम के बाद इस प्रश्न को उठाने में उनकी क्या मंशा थी? वास्तव में इस पूरे षड्यंत्र की शुरुआत ही भारत विभाजन काल की ब्रिटिश कूटनीति से होती है। भारत से चले जाने के बाद भी ब्रिटिश सरकार मध्य पूर्व एवं दक्षिण पूर्व एशिया में अपने आर्थिक व भू राजनैतिक हितों को लेकर चिंतित थी। इसके लिए उसे अपने प्रभाव क्षेत्रवाला एक देश चाहिए था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रारंभ हुए शीत युद्ध में ब्रिटिश-अमेरिकी कूटनीति को मध्य एशिया में अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति करती थी। इसलिए आवश्यक था कि चीन और रूस के साम्यवादी प्रसार को किसी भी तरह से रोका जाए। पाकिस्तान इस मामले में ब्रिटिश-अमेरिकी कूटनीति का एक पुख्ता आधार बन सकता था। लेकिन यह तभी संभव था, यदि जम्मू-कश्मीर को किसी प्रकार भी पाकिस्तान में मिलाया जाए, क्योंकि इस रियासत की सीमा चीन, तिब्बत, रूस और अफगानिस्तान से एक साथ लगती थी।"[56]

कश्मीर का नाम बिकने लगा है। कश्मीर के सामरिक महत्त्व को चीन भली-भाँति समझता है इसीलिए सीमा से जुड़े भूभागों को हड़पने का प्रयास कर रहा है। स्पष्ट रूप से समर्थन न दिखाकर अमेरिका भी अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कश्मीर पर नजरें गड़ाये बैठा है। अमेरिका कश्मीर की नियंत्रक शक्ति से बखूबी वाकिफ है और उसे अपने हक में भुनाने हेतु लम्बे समय से प्रयासरत भी। "अमेरिका कश्मीर को विवादित बनाये रखना चाहता है अथवा उसे भारत और पाकिस्तान के बीच एक बफर स्टेट के रूप में देखने का इच्छुक है। कूटनीतिक रूप से यह उसके अनुकूल है। कश्मीर में अगर उसे घुसने का मौका मिलता है

56. कुलदीप चंद अग्निहोत्री, जम्मू-कश्मीर की अनकही कहानी, पृष्ठ- 8

तो वह चीन सहित मध्य एशिया, और भारत सहित दक्षेश पर निगरानी बनाए रख सकता है।"[57]

कश्मीर में घटने वाली अनेक आतंकी घटनाओं में अक्सर पाकिस्तान प्रेरित सूत्र मिलते हैं जिनसे वह साफ तौर पर इनकार करता आया है। अमेरिका ने ही सबसे पहले शेख अब्दुल्ला के मानसिक दबाव को भुनाकर स्वतंत्र कश्मीर की छवि को इनके समक्ष रखा था। चीन सीमाओं का अतिक्रमण कर विवाद बनाए रख रहा है। "पहले कश्मीर के शाल, कालीन, पेपरमैशी, अखरोट, बादाम, केसर, सेब बिकते थे- अब कश्मीर का नाम बिकता है। पाकिस्तान के पास बिकता है। भारत सरकार के पास बिकता है। अरब देशों के यहाँ बिकता है। दुकानें चल पड़ी हैं। अपार धन आया है। एक वर्ग विशेष की चाँदी है।"[58]

इस प्रकार कश्मीर के सामरिक महत्त्व व अन्तर्राष्ट्रीय चालों को समझते हुए ऐसे स्थायी हल की आवश्यकता है जो विवेकसम्मत, मानवता की भावना समाए एवं न्यायसंगत हो। युद्धों के विनाशकारी स्वरूप को दूर रखकर संवाद की स्थापना की जाए। प्रेम और सौहार्द उचित विकल्प हो सकते हैं। अन्यथा की स्थिति में यह तनाव शायद ही कभी खत्म किया जा सके। "जहाँ मरहम की जरूरत हो वहाँ उस्तरा चलाकर न हम मरीज का भला करते हैं न अपना। इतना तो तय है कि भारत में धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक समाज की उपस्थिति के बिना कश्मीर के साथ हमारे सम्बंध कभी सामान्य नहीं हो सकते।"[59]

अतः भारत के सिरमौर को वर्तमान में झंझावातों से बचा, सुदृढ़ बना और पूरी गरिमा के साथ आसीन रखना है। कश्मीर का क्षय, उसकी संस्कृति का विकृत होना भारतीयता के विकृत होने जैसा है। साझी संस्कृति का औदात्य अक्षुण्य बनाए रखने की आवश्यकता है। आज कश्मीर जिन अनिश्चित हालातों के घेरे में

---

57. सं० आशुतोष, जम्मू-कश्मीर : तथ्य, समस्याएँ और समाधान, पृष्ठ- 35
58. कश्मीर विद्रूप की भी स्थिति, प्रगतिशील वसुधा, अंक 74, पृष्ठ-- 30
59. अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, पृष्ठ- 430

है, उससे उसका भविष्य धुंधला प्रतीत होता है। कश्मीरी समाज जिस मानसिक दबाव व असुरक्षा की भावना से भयभीत है, उसका निदान वक्त की मांग है।

अगर कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग माना जा रहा है तो उसके साथ व्यवहार भी उसी संकल्प से प्रेरित होना चाहिए। कश्मीरियों के चोटिल स्वाभिमान पर शिफ़ा और आत्मनिर्णय के अधिकार को सही तौर पर देखे जाने की जरूरत है। कश्मीर को एक कुशल व सद्भाव प्रेरित आलिंगन की महती आवश्यकता है जिससे वहाँ शांति और समृद्धि की नयी राह बनायी जा सके।

द्वितीय अध्याय

कश्मीर केंद्रित हिन्दी कथा साहित्य : समीक्षात्मक अवलोकन (विशेष सन्दर्भ : 1990-2020)

साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बंध है। साहित्य में, समाज में जो कुछ घटित होता है उसकी अभिव्यक्ति होती है। वस्तुतः समाज में जो कुछ भी व्याप्त है, वह साहित्यकार की संवेदना का विषय है। समाज में जो कुछ भी चिंतनीय है, साहित्यकार उससे संवाद सम्बद्ध होता है। समकालीन साहित्य धरातल आज अनेक विमर्शों की चर्चा में संलग्न है। उपन्यास और कहानी आज साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधाओं के रूप में उभरकर सामने आये हैं। इन विधाओं की प्रवृत्ति तत्कालीन समस्याओं को तीव्रता से पकड़ने की होती है, इसलिए उनमें समकालीन चिंताएँ और प्रश्न अधिक मुखर रूप में चित्रित और विश्लेषित होते हैं। उपन्यास की अतीतजीवी प्रवृत्ति कथा के अंश अतीत में खोजती रही है। समकालीन उपन्यासों में तात्कालिक समस्याओं को चिंता का विषय बनाया गया है। कहानी में समस्या चित्रण का आकार उपन्यास की तुलना में कम विस्तृत होता है। समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में चिंतन का एक महत्त्वपूर्ण विषय बनकर उभरा है कश्मीर। भारत का यह धुर उत्तर राज्य हिंसा के थपेड़ों से आहत है। स्वर्ग-उपाधि से भूषित भारत का भाल घोर खतरे में है।

कश्मीर समस्या सर्वविदित है। वहाँ के नाजुक हालात के विषय में प्राय: चर्चाएँ होती रहती हैं परंतु ऐसा बहुत कुछ जिसे एक गैरकश्मीरी या कश्मीर से बाहर का समाज शायद नहीं जानता। कश्मीर का सांस्कृतिक उत्कर्ष, उतार-चढ़ावों से भरा इतिहास, साझी संस्कृति एवं कश्मीरी समाज के जीवन में बुने तानों-बानों का चित्रण हिन्दी कथा साहित्य में उपन्यास व कहानियों की आधारभूमि रही है। इन कहानी और उपन्यासों में कश्मीर में व्याप्त ज्वलंत समस्याओं का विश्लेषण व मार्मिक चित्रण किया गया है। ऐसे अनेक उपन्यास और कहानियाँ समकालीन हिन्दी साहित्य में हैं जो कल, आज और कल के कश्मीर का इतिहास, वर्तमान व भविष्य की संभावनाओं को प्रस्तुत करते हैं तथा साथ ही यह सोचने के लिए भी

मजबूर करते हैं कि यह स्वर्ग एक बेहतर भविष्य व एक संतोषजनक वर्तमान हेतु संघर्षरत क्यों? यहाँ के लोगों का जीवन इतनी भयावहता के अधीन क्यूँ? आखिर कब यह स्वर्ग, स्वर्ग बन पायेगा? ऐसे अनेक प्रश्नों व संभावनाओं का चित्रण करते हुए अनेक उपन्यास एवं कहानियाँ हिन्दी कथा साहित्य के अन्तर्गत लिखे गए हैं।

2.1 <u>चयनित हिन्दी उपन्यास : परिचयात्मक विवरण</u>

हिन्दी कथा साहित्य में कश्मीर के अतीत एवं वर्तमान को केन्द्र में रखकर अनेक उपन्यास रचे गये हैं। 1990 से लेकर 2020 तक कश्मीर के स्वर्णिम इतिहास व भयाक्रांत वर्तमान को अपने लेखन का विषय बनाते हुए अनेक उपन्यासकारों ने साहित्य सृजन किया। कश्मीर समस्या पर लिखे गए उपन्यास 'यहाँ वितस्ता बहती है (1992, चंद्रकांता)', 'कथा सतीसर (2001, चंद्रकांता)', 'पाषाण युग (2002, संजना कौल)', 'कश्मीर की बेटी (2002, शत्रुघ्न प्रसाद)', 'जम्मू जो कभी शहर था (2003, पद्मा सचदेव)', 'दर्दपुर, (2004, क्षमा कौल)' , 'व्यथ-व्यथा (2005, हरिकृष्ण कौल)', 'एक कोई था कहीं नहीं सा (2009, मीराकांत)', 'शिगाफ़ (2010, मनीषा कुलश्रेष्ठ)', 'सूखते चिनार (2012, मधु कांकरिया)', 'इकबाल (2014, जयश्री रॉय)', 'आतंक की दहशत (2018, तेज.एन. धर)', 'बर्फ और अंगारे (2020, सुधाकर अदीब)', 'काँपता हुआ दरिया (2020, मोहन राकेश)', 'कश्मीर 370 किलोमीटर (2020, रवीन्द्र प्रभात)' एवं 'नाकाबन्दी (2020, आरिफा एविस) महत्त्वपूर्ण हैं। इन उपन्यासों में कश्मीर समस्या का गंभीर चित्रण है और साथ ही मनोरम कश्मीर के सौन्दर्य को भी उकेरा गया है। प्रेम, सद्भाव, आतंक, परायेपन, राजनीतिक अव्यवस्था, स्त्री, मानवाधिकार आदि से जुड़कर इन उपन्यासों में कश्मीर के सम्पूर्ण चित्र को उकेरने का प्रयास है।

2.1.1 <u>यहाँ वितस्ता बहती है (1992)</u>

यह उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर चन्द्रकांता द्वारा 1992 में लिखा गया। कश्मीर के सौन्दर्य, संस्कृति, इतिहास को अपने उपन्यासों का विषय बनाते हुए इन्होंने तीन महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखें हैं। 'ऐलान गली जिन्दा

है (1984)' कश्मीर पर लिखित इनका प्रथम उपन्यास है। इस श्रृंखला का द्वितीय उपन्यास 'यहाँ वितस्ता बहती है' है। चन्द्रकांता का कश्मीर के साथ अन्तरंग जुड़ाव रहा है। यह क्षेत्र उनकी जन्मभूमि एवं कर्मभूमि रहा। चन्द्रकांता का जन्म 3 सितम्बर, 1938 को श्रीनगर, कश्मीर में हुआ। इनके पिता रामचन्द्र पंडित एक प्रोफेसर एवं इनकी माता सम्पत्तिदेवी गृहिणी थीं। चन्द्रकांता की बाल्यावस्था कश्मीर के सौन्दर्य, पहाड़ों, झीलों, चिनारों, गिरती बर्फ आदि की साक्षी रही है। वह एक कश्मीरी के रूप में गर्व का अनुभव करती हैं और स्वयं को भाग्यशाली मानती हैं। बहुत कम उम्र में माँ का निधन हो जाने के कारण उनका स्वभाव समय से काफी पहले गंभीर हो गया तथा पुस्तकालय उनका प्रिय स्थान बन गया। चन्द्रकांता लिखती हैं, "मैं उन भाग्यशालियों में हूँ जिन्होंने वहाँ जन्म ही नहीं लिया, वहाँ के पर्वत, पानियों, चीड़, देवदार और झीलों पर झुके वेद वृक्षों की कतारों को, अपनी रंगों-रेशों में उतरते महसूस किया।[60]

'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास में चन्द्रकांता ने कश्मीरी समाज, कश्मीरी संस्कृति और इतिहास के उतार-चढ़ावों को चित्रित किया है। इस उपन्यास में वितस्ता को कश्मीरियत के प्रतीकरूप, कश्मीरी इतिहास के साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कश्मीरी समाज में जो भी घटनाएं हुईं, वितस्ता उसकी साक्षी है। कश्मीर के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक मोड़ों का दस्तावेज है यह वितस्ता। उपन्यास के नायक राजनाथ कौल हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि राजनाथ कौल की कथा के माध्यम से उन्होंने अपने पिता प्रो. रामचन्द्र पंडित के व्यक्तित्व को पुनर्जीवित किया। वे एक उम्दा प्रोफेसर और प्रगतिशील समाज-सुधारक थे। इस उपन्यास में 'शुरू करने से पहले' शीर्षक के अन्तर्गत वह लिखती हैं, "इस कहानी के साथ मेरे अतीत का बेहद अपना अन्तरंग हिस्सा जुड़ा होने के बावजूद यह उपन्यास ही है, जीवनी नहीं, इस उपन्यास के माध्यम से मैंने पीछे मुड़कर देखा है, अपनी कुछ नितान्त निजी स्मृतियों के कोष रिक्त कर

[60] चंद्रकांता, सूरज उगने तक, भूमिका, पृ. 13

दिये हैं। अपनी यादों को खुद से अलग कर मैं मुक्त भी हुई और एक हद तक खाली भी।"[61]

इस उपन्यास में राजनाथ और वितस्ता के माध्यम से कश्मीर को टटोलने का प्रयास किया गया है। राजनाथ के जीवन में आने वाली त्रासद स्थितियाँ वास्तव में कश्मीर की त्रासदियों के रूप में हैं। राजनाथ का एक के बाद एक तीन स्त्रियों से सम्पर्क होता है। परंतु किसी के भी साथ उनका सम्बंध दीर्घ समय तक नहीं रह सका। दहेज प्रथा का विरोध करते हुए उनकी स्वयं की पुत्री इस कुप्रथा की भेंट चढ़ जाती है। संयुक्त परिवार के बचाव हेतु वे स्वयं कष्ट सहन करते हैं। वास्तव में राजनाथ का यह आहत हृदय कश्मीर का है।

उपन्यास में लेखिका ने मिथकों का अर्थपूर्ण प्रयोग किया है। इस उपन्यास में कश्मीर का लोक उभरकर आया है। चन्द्रकांता इस उपन्यास के प्रेरक कारणों पर चर्चा करते हुए लिखती हैं, "मुझे उन शख्सियतों ने भी लिखने को प्रेरित किया, जो सामाजिक सरोकारों के लिए नदी की तरह बहे और दीये की तरह चुपचाप जले पीठ पीछे की रोशनियाँ बनते ऐसे व्यक्तित्व, राजनाथ में, मुझे अपने पिता की झलक मिली। उसी व्यक्तित्व ने मुझसे 'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास लिखवाया।"[62] राजनाथ और वितस्ता की यह कहानी कश्मीर के स्वयं की है। वह त्रासद घटनाएँ कश्मीर के मानस की हैं। कश्मीर की भव्य संस्कृति उपन्यास में यत्र-तत्र अपनी पूरी गरिमा के साथ वर्णित है। उपन्यासकार को विश्वास है कि यह कथा कश्मीर के समस्त पक्षों को प्रोद्भासित करने के साथ ही रास्ते के अंधेरे को कम जरूर करेगी।

2.1.2 <u>कथा सतीसर (2001)</u>-

कश्मीर श्रृंखला में चन्द्रकांता द्वारा रचित यह तृतीय और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। कश्मीर की पृष्ठभूमि पर लिखा यह वृहद् उपन्यास है जिसे 'झूठा

---

[61] चन्द्रकान्ता, यहाँ वितस्ता बहती है, पृ. 8

[62] चन्द्रकांता, मेरे भोजपत्र, पृ.27

सच' के बाद की महान रचना माना जाता है। यह उपन्यास कश्मीर के फासिज्म की त्रासदी का वर्णन है। कथानक की भूमि 1931 से 2001 तक के राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पक्षों को समेटे हुए है। कथा का विस्तार मुख्यतः तीन भागों में है। कथा पौराणिक कश्मीर यानी सतीसर, ऐतिहासिक कश्मीर और वर्तमान कश्मीर का चित्रण मिथक, दंत कथाओं और लोककथाओं के माध्यम से करती है। कश्मीर का सामाजिक व सांस्कृतिक विखण्डन उपन्यास के केन्द्र में है। उपन्यासकार ने मानवीय अधिकार व अस्मिता से जुड़े ज्वलंत प्रश्न इस कृति के माध्यम से उठाये हैं।

'कथा सतीसर क्यों?' शीर्षक के अन्तर्गत वह लिखती हैं, "मानवीय यातना को अनदेखा करना शासकों के लिए भले सम्भव हो, रचनाकार के लिए नहीं। फिर कश्मीर तो मेरी दुखती रग है। मैंने महसूस किया कि कश्मीर की मिट्टी में रचा-बसा, 'कश्मीरियत' के रहस्यों से वाकिफ, भुक्तभोगी ही कश्मीर की पीड़ा और उसके भीतरी सच को जान सकता है और बहसों-फतवों में उलझे बिना, समय के सच को साहित्य में दर्ज कर सकता है।"[63]

'कथा सतीसर' के माध्यम से चन्द्रकांता ने कश्मीर को उसके पूरे उत्कर्ष, औदात्य, संघर्ष और अनिश्चितता के साथ प्रस्तुत किया। कश्मीर की सांझी संस्कृति, लोक गीत, लोककथाएँ अंग-संग वर्णित हैं। लेखिका ने 1931 से लेकर 2000 तक कश्मीर के इतिहास को खंगालते हुए उन सभी कारणों को प्रकाश में लाने का कार्य किया है जो आज के रक्तरंगे कश्मीर हेतु उत्तरदायी हैं। इस बीच की अनेक अव्यवहारिक नीतियों और नेताओं की स्वार्थपरता पर आक्रोश सहज द्रष्टव्य है। कथा में आतंक, हत्या, निष्कासन की सम्पूर्ण व्यथा कही गयी है। वह अपना मत रखती हैं, "लोकतंत्र के इस गरिमामय समय में स्वर्ग को नरक बनाने के लिए कौन जिम्मेदार है? छोटे-बड़े नेताओं, शासकों, बिचौलियों की कौन-सी

[63] कथा सतीसर, पृ. IX

महत्वाकांक्षाओं, कैसी भूलों, असावधानियों और ढुलमुल नीतियों का परिणाम है, आज का रक्तरंगा कश्मीर।"[64]

कथा में कश्मीरी विस्थापितों की पीड़ा भी है जो अपना सब-कुछ छोड़कर मजहबी उन्माद से बचाव हेतु कश्मीर से भागकर चले आए। चुनाव में होने वाली धांधलियों, बेरोजगारी और कश्मीर में पाकिस्तान समर्थित गतिविधियों ने आतंक के क्रूर रूप को जन्म दिया। एक अल्पसंख्यक कश्मीरी समुदाय इस आतंक की भेंट चढ़ गया। अपनी पुस्तक समर्पित करते हुए वह लिखती हैं, "यह कथा उन बेघर-बेनाम बच्चों के नाम, जिन्हें ग्यारह वर्षों के निष्कासन के बाद भी समझ नहीं आता कि वे अपने घर क्यों नहीं लौट सकते।"[65] निष्कासन में भोगे गए दुःखों का मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

चन्द्रकांता का बचपन, कश्मीर की बोली, भाषा, पर्व-त्यौहार, संस्कृति, रीति-रिवाज से जुड़ा था और इसका प्रमाण इस उपन्यास में देखने को मिलता है। वह लिखती हैं, "श्रीनगर, कश्मीर में मेरी जन्मनाल गड़ी है। मेरी स्मृतियों के कोश इन्हीं वादियों से जुड़े हैं। झीलों-झरनों और वितस्ता से मैंने जीने और बहने का मंत्र सीखा है। जन्मभूमि हमारे अनुभवों और अहसासों की जमीन होती है, इसीलिए कथा संसार का हिस्सा बन जाती है।"[66] अपनी इसी जन्मभूमि से दूर होने का दुःख उन्हें सालता रहा है जिससे मुक्त होती वह साहित्य-सृजन करती रहीं।

उपन्यास में लेखिका ने कई स्थानों पर कश्मीरी कवयित्री ललद्यद व नुन्द ऋषि को उद्धृत किया है तथा कश्मीरियत के सांस्कृतिक संदर्भों को बुना है। किस्सागोई शैली में लेखिका इतिहास एवं पुराणों के आख्यानों को भी समाविष्ट करती हैं। इक्कीसवीं सदी में व्याप्त आतंक की तुलना वे सिकंदर बुतशिकन के

---

[64] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृ. VIII

[65] वही, पृ. IV

[66] चंद्रकांता, मेरे भोजपत्र, पृ. 19

समय से करती हैं। लम्हों की खता को सदियों की सजा बताती हुई चन्द्रकांता ऐसे अनेक प्रसंगों के बारे में चर्चा करती हैं जिनका घटित होना कश्मीर की आत्मा को आहत कर गया। यह चिन्ता उनको व्याकुल कर देती है कि इस अनिश्चितता भरी स्थिति में पैदा होने वाली पीढ़ी भविष्य में राष्ट्रीयता के प्रति किस प्रकार की भावना रखेगी? क्या वो कभी समझ पाएगी कि आज जो कश्मीर अलगाववाद व आतंक का गढ़ बन चुका है, वही कश्मीर कभी साझी संस्कृति का उन्नायक रहा था।

उपन्यास में सूत्रों को जोड़ते हुए कश्मीर के उद्भव से लेकर आज तक की कथा लेखिका कहती हैं। उनका दुःख, उनकी पीड़ा और आक्रोश लाजिमी प्रतीत होते हैं। सतीसर की उत्पत्ति का जिक्र और वर्तमान में पुनः जलोद्भव जैसे राक्षस का आभास कथा को बहुआयामी बनाता है। हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द पर पहला प्रहार 1931 में अब्दुल कादर पठान के विद्रोह के रूप में हुआ। सांप्रदायिक उन्माद ने रहमान जैसे महत्वाकांक्षी युवा को आतंकी बना दिया। अलगाववाद के प्रचंड ताप के बीच भी खुर्शीद का प्रेम नमी बरकरार रखता है।

1947 में देश विभाजन तथा कबाइली हमलों ने स्थितियाँ जटिल बनायीं जिसका विस्तार 1987 में आतंकवाद के उद्भव 1990 के जबरन निष्कासन व हिंसा के रूप में देखने को मिलता है। सरकार द्वारा कड़ाई से इन स्थितियों पर काबू न पाने की प्रवृत्ति ने अल्पसंख्यकों को नरक सा जीवन व्यतीत करने की ओर ढकेला। कथा सतीसर में एक सूत्र से जुड़ी हुई अनेक मुख्य एवं गौण कहानियाँ एक साथ चली हैं। पहला सूत्र अजोध्यानाथ व उनके परिवार की कथा को पिरोए हुए है तो दूसरा कृष्णजू कौल एवं तीसरा रहमान तांगेवाले से जुड़ता है। इनके साथ काफी गौण कथाएँ, जैसे- नसीम की कथा, तुलसी एवं मंगला मौसी की कथा, महदू एवं उसके बेटों की कथा आदि उस समय के कश्मीर को समझने में सहायक हैं।

कश्मीर में हिन्दू-मुस्लिम विवाहों के भी अनेक प्रमाण इस उपन्यास में हैं। अफजल-विजया का प्रेम धर्म के बंधनों से ऊपर उठ जाता है। इसके साथ 20

वीं सदी के आखिरी दशक में मदरसों द्वारा प्रेरित मजहबी शिक्षा के रूप भी वर्णित हैं। लल्ली के विदेश स्वप्न में कश्मीरी दृश्यों से शुरू यह उपन्यास अनेक उतार-चढ़ावों को प्रस्तुत करता इस शुभाकांक्षा के साथ समाप्त होता है कि शायद कोई बड़शाह या कश्यप पुन: आतंक रूपी जलोद्भव का अन्त कर घाटी में अमन-चैन वापस लायेंगे। "आगे परीक्षा का लम्बा समय है। लम्बे रेगिस्तान। लेकिन घूम-फिरकर लौटता है आदमी वहीं, जहाँ से उगा था वह, बीज से फूटकर वृक्ष बना था। जड़ों की उन्हीं गन्धों-स्पर्शों और मिट्टी के अहसासों में, जहाँ से शाखाएँ-प्रशाखाएँ फैलेंगी- ढक देंगी दिशाएँ और आकाश।"[67]

2.1.3 <u>पाषाण युग (2002)</u>-

'पाषाण युग' उपन्यास की लेखिका संजना कौल हैं। इसका प्रकाशन वर्ष 2002 है। संजना कौल का जन्म 1 जनवरी 1958 को श्रीनगर, कश्मीर में हुआ। कश्मीर का सौंदर्य एवं समय के साथ कश्मीर की विद्रूप सी स्थिति लेखिका को लेखन हेतु प्रेरित करती रही। 'पाषाण युग' उपन्यास लेखिका के क्षोभ को व्यक्त करता है तथा कश्मीर में उग्र रूप ले चुके आतंक के प्रति चिन्ता को व्यक्त करता है।

अंजलि इस उपन्यास की प्रमुख पात्र है। पत्रकार बृजमोहन, अख्तर साहब, रवि आदि के माध्यम से कथानक आकार लेता है। यह उपन्यास घाटी के छह वर्षों की कथा पर आधारित है। यह उपन्यास ना तो कोई क्रांति गाथा है, न ही विद्रोह की कथा। कश्मीर में आए दिन हिंसक घटनाओं का होना आम बात है। कश्मीरी अपने जीवन में व्याप्त इस अनिश्चितता का आदी होने का प्रयास कर रहे हैं। दिन-दहाड़े हत्याओं का होना, सड़कों पर खून बिखर जाना, अपहरण आदि ने उन्हें संवेदनशून्यता की हद तक पहुँचा दिया है। इस उपन्यास में इसी संवेदनशून्यता को लक्षित किया गया है।

---

[67] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृ. 592

इक्कीसवीं सदी के इस सांस्कृतिक युग तक का सफर तय करने के बाद भी कश्मीर के आज जो हालात हैं वो पाषाण युग जैसे हैं। लेखिका को ऐसा लगता है कि इतने लम्बे पड़ाव को पार कर हमें जहाँ विकास मिला था, हम वहाँ से लौटकर पुन: पाषाण युग में आ गये हैं। कश्मीरियों की बची-खुची संवेदना के बचाव हेतु लेखिका संकल्परत नजर आती हैं।

'पाषाण युग' उपन्यास में एक तरफ तो हिंदू-मुस्लिम सौहार्द की मनोरम झलक देखने को मिलती है वहीं दूसरी तरफ झंडे के अपमान जैसे दुखद कृत्य। कश्मीर का भयानक एवं लहूलुहान चेहरा इस उपन्यास में धीरे-धीरे आकार लेता है और वातावरण एकाएक आगजनी, चीत्कारों और बम-विस्फोटों की आवाज से अट जाता है। यह उपन्यास आतंकवाद का उग्र स्वरूप चित्रित करता है। इस ट्रेजेडी का शिकार अंजलि का परिवार और नसीम होती हैं। कश्मीर को कल्हण ने एक ऐसे क्षेत्र के रूप में चित्रित किया था जिसे कोई अपने पुण्य प्रताप से अवश्य जीत ले परंतु भय से नहीं। आज कश्मीर को जीतने के लिए सिर्फ भय को ही एकमात्र हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है।

उपन्यास की शुरुआत एक घोंसले से नीचे गिरी चिड़िया के दृश्य से होती है। वास्तव में यही विचलित स्थिति कश्मीर की है। वे विवश एवं असहाय होने पर भी जिजीविषा को बनाए हुए हैं। राष्ट्रीयता एवं अलगाव के दो पाटों के बीच पिसते उनके हृदय पत्थर हो गये हैं। लेखिका इस भाव को व्यक्त करती हैं, "यह प्रस्तर युग नहीं था। उससे भी आगे बढ़ी हुई अवस्था थी। पत्थर की कुल्हाड़ी बहुत पीछे छूट चुकी थी। यह इस जगमग करती दुनिया की वह तहज़ीब थी जहाँ आदमी नए-नए हथियारों पर पॉलिश करना सीख गया था, इन्हें इस्तेमाल कर रहा था।"[68]

कश्मीर में उपजे आतंकवाद ने राष्ट्रीयता के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया के रूप में अलगाववाद की आवाज पैदा की। यह अलगाववाद हिंसक षड्यंत्रों पर आधारित था। इस निरुद्देश्य और भटके हुए जिहाद दर्शन ने कश्मीर को एक ऐसे मोड़ पर

---

[68] संजना कौल, पाषाण युग, पृ.73

लाकर खड़ा कर दिया जहाँ वह अपने मूलरूप से पूर्णत: विकृत हो गया। लेखिका मनोभाव स्पष्ट करती हैं, "इतिहास में कोई बड़ी घटना नहीं घटी। न हिरोशिमा की पुनरावृत्ति हुई, न नागासाकी में रेडियोधर्मिता ने जन्म लिया। तीसरा विश्व युद्ध भी नहीं छिड़ा सिर्फ एक तपोवन देखते ही देखते आदमखोर पेड़ में बदल गया।"[69]

उपन्यास में आतंकवाद की चरम परिणति के रूप में कश्मीर का 1990 में हुआ निष्कासन वर्णित है। विस्थापित परिवारों की मनोस्थितियाँ तथा साँप-बिच्छू और गर्म रेत के बीच जीवन काटता कश्मीरी समाज चित्रित है। दुःखों को झेलता यह समाज अपनी उत्कट जीवनचाह की छाप छोड़ता भविष्य के प्रति आशान्वित है। कश्मीर के इस आतंक पीड़ित तस्वीर को दिखाती हुई लेखिका भी अखंड एवं सुखद कश्मीर के स्वप्न हेतु संकल्पशील है।

2.1.4 <u>कश्मीर की बेटी (2002)</u>-

'कश्मीर की बेटी' एक कालजयी ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास के लेखक हिंदी की ऐतिहासिक उपन्यास परम्परा के अग्रणी हस्ताक्षर डॉ शत्रुघ्न प्रसाद हैं। इनका जन्म 1932 में बिहार के छपरा जिले में हुआ था। 'कश्मीर की बेटी' उपन्यास तीव्र नारी चेतना के भावों से सम्पृक्त कश्मीर की दो बेटियों राजकुमारी कोटा देवी तथा दासी पुत्र चाँदनी के जीवन से रूबरू कराने का प्रयास है। इस उपन्यास में 1320 से 1339 ई. के बीच कश्मीर की राजनैतिक परिस्थितियों के बीच कश्मीर की आखिरी महारानी कोटा देवी की आत्महत्या और शाहमीर के सत्ता हड़पने की कहानी है।

डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद अपने इस ऐतिहासिक उपन्यास में नारी की दयनीय एवं असहाय दशा का चित्रण करते हैं। इस उपन्यास में दरया शाह द्वारा जबरन चाँदनी का हरण कर दस वर्ष तक बलात्कार किया जाता है। किसी प्रकार जब वह उनके कैद से आजाद होकर घर भाग आती है, तो उसके अपने लोग तिरस्कार,

---

[69] संजना कौल, पाषाण युग, पृ.53

शक और उपेक्षा करते हैं, "दूर बाहर खड़ी स्त्रियाँ बुदबुदा रही थी। दस बरस के बाद बेटी लौट कर आई है। अब वह क्या है? इसमें बचा क्या है? छिह! छिह! दूसरी बोल रही थी, 'कैसे आ गई? इसे कौन अपनाएगा? अनब्याही बेटी दस बरस तक रख ली गई। भ्रष्ट! भ्रष्ट!"[70]

उपन्यासकार समाज में व्याप्त उस कुदृष्टि का भी परिचय देता है जहाँ एक स्त्री की असहाय दशा का कारण एक दूसरी स्त्री ही होती है। एक पीड़ित स्त्री के प्रति एक अन्य स्त्री ही सहानुभूति के भाव नहीं रखती है। स्त्री के एक वस्तु समझे जाने का दर्द इस उपन्यास में है जहाँ एक स्त्री की इच्छा के बिना उस पर अधिकार कर लिया जाता है। चाँदनी का चरित्र इस सभ्य समाज के मुंह पर तमाचा है। स्त्री की मानसिक संरचना ऐसी बुन दी गयी है जहाँ किसी पुरुष के अधीन होना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है। स्त्री की स्वतन्त्र सत्ता उसके जीवन की विडंबना बन जाती है। चाँदनी कहती है- "बलवान अपने बल का प्रयोग स्त्री पर क्यों करता है। यह कब तक चलता रहेगा। वह कितनी निर्बल है। इसलिए अबला!"[71]

इस उपन्यास के माध्यम से तत्कालीन कश्मीरी स्त्री की स्थिति प्रस्तुत है। कश्मीर की एक ऐसी रानी, जिसने अन्तिम सांस तक कश्मीर में हिन्दू शासन को बचाए रखने की कोशिश की। कश्मीर की संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के लिए निःसंकोच साम, दाम, दंड और भेद की नीतियों का पालन किया। दूरदर्शिता रखने वाली कोटा रानी अपने ही सहयोगी शासक शाहमीर की महत्वाकांक्षा का शिकार हुई। कोटा रानी के साथ विश्वासघात कर शाहमीर ने कश्मीर में इस्लाम शासन की नींव रखी। यह उपन्यास कोटा रानी तथा चाँदनी के व्यक्तित्व को कश्मीरी स्त्री के प्रतिनिधि के तौर पर प्रस्तुत करता है। एक कुशल प्रशासक व राजनेता कोटा रानी एवं उत्पीड़न की शिकार चाँदनी की कथा अनेक प्रश्नों को उकेरती है।

---

[70] डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद, कश्मीर की बेटी, पृ.77

[71] वही, पृ० 184

2.1.5 जम्मू जो कभी शहर था (2003)-

'जम्मू जो कभी शहर था' उपन्यास डोगरी की प्रसिद्ध लेखिका, हिन्दी कथाकार पद्मा सचदेव द्वारा 2003 में लिखा गया है। इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र सुग्गी नाईन है जो अपने सामान्य होने में भी विशिष्ट है। इस उपन्यास में सुग्गी के चरित्र के माध्यम से जम्मू की कथा बतायी गयी है। यह कथा जम्मू के इतिहास से जुड़कर चलती है। वर्तमान में नाई-नाईनें उतने अस्तित्व में नहीं हैं, खासकर शहरी क्षेत्रों में। ग्राम्य क्षेत्रों में भी अब उनका उतना प्रभाव नहीं रहा किन्तु एक ऐसा समय था जब नाईनें गाँवों की नब्ज हुआ करती थीं और उनके माध्यम से घर-घर की स्थिति-परिस्थिति की खबर ली जा सकती थी। वे हर घर के दुःख-दर्द को जानती थीं और अपनी सूझ अनुसार सलाह भी देती थीं।

वर्तमान में विकास की अंधी दौड़ ने सुख-सुविधाओं का अंबार अवश्य लगा दिया है परंतु लोगों के पास एक-दूसरे के दर्द बाँटने का समय नहीं रह गया। नाईनों का वह लोकरंग लगभग समाप्ति पर है। इस उपन्यास में सुग्गी नाइन के माध्यम से जम्मू के लोक का स्वरूप उभर कर आता है। जम्मू शहर की अनेक समस्याओं एवं क्षीण हो रही सांस्कृतिक अस्मिता के प्रति चिन्तन दर्ज है। सुग्गी नाईन के सहारे लेखिका इतिहास में आए सारे उतार-चढ़ावों से पाठकों को वाकिफ कराती हैं। सुग्गी का चरित्र अपनी जीवंतता के कारण खास बन पड़ा है तथा वह लोगों की प्रिय है। वह एक ऐसी शख्स है जिसके बिना गाँव की कोई खुशी, पीड़ा त्यौहार या विवाह पूरे नहीं होते।

लेखिका क्षोभ व्यक्त करते हुए कहती हैं आज जम्मू शहर का मूल स्वरूप विकृत हो गया है तथा वह एक कूड़ेखाने जैसा हो गया है। जम्मू के प्रति उनकी आत्मीयता स्वाभाविक है। जम्मू के वर्तमानस्वरूप, शासकों के दोगलेपन, राज्य नागरिकता अधिनियम, आतंकवाद आदि समस्याओं का जिक्र भी इस उपन्यास में है।

जम्मू के पुराने उन्नत रूप का चित्रण लेखिका सुग्गी के संवादों में व्यक्त करती है। सुग्गी पूरा दिन व्यस्त रहती है। जीविका का अर्जन तथा पति की मृत्यु के बाद परिवार संभालना, उसके दो ही उद्देश्य हैं। सभी के दुःखों की साक्षी सुग्गी नाईन का भी अपना एक प्रिय कोना है जहाँ वह अपना दिल खोल देती है, वह है उसकी मित्र सोमा का घर। बचपन की इस मित्रता ने हमेशा सुग्गी के आवेगों को सहारा दिया है। वह यदा-कदा अपनी भूख भी सोमा के यहाँ ही शान्त करती है। इस उपन्यास में सुग्गी के बाद जिस स्त्रीपात्र का चरित्र महत्त्वपूर्ण है, वह है सोमा। सोमा का व्यक्तितत्व एक सहृदय गृहिणी का है जो निःस्वार्थ भाव से परिवार के प्रति समर्पित है तथा उनकी मंगलकामना में ही निरत रहती है। जिसके जीवन में स्वसुख की कोई चाह नहीं है और न ही किसी के प्रति शिकायत का कोई भाव। सोमा के द्वारा गाये जाने वाले लोकगीत उपन्यास में रस का संचार करते हैं।

उपन्यास में जम्मू शहर के लोगों का रहन-सहन तथा भाषा का अपना अलग रंग है। ये रंग उन्हें देश के बाकी क्षेत्रों से विशिष्ट पहचान देते हैं। लेखिका जम्मू समाज की बारीक से बारीक बात का चित्रण करना नहीं भूलतीं। यत्र-तत्र लोकगीतों का प्रयोग मोहक है। जम्मू के प्रति उनका प्रेम इन पंक्तियों में सहज द्रष्टव्य है, "वो जम्मू मुझे याद आता रहता है। आज तो जम्मू कूड़ाखाना हो गया है। भीख मांगनेवाले भी बाहर से आ गए हैं। वैसे तो सारा भारत एक घर है, पर जब शेख अब्दुल्ला की सलाह पर महाराजा हरिसिंह ने रियासत में किसी भी बाहर के आदमी को आकर बसने में रोक लगायी तब यही मंशा रही होगी कि भीड़ न हो जाय कहीं भीड़ न हो जाय। इसमें बेटियाँ चपेट में आ गयीं। जो लड़की बाहर शादी करे वो यहाँ की शहरी नहीं है पर लड़कों को रियासत दी गयी, वो चाहे फारूख अब्दुल्ला हों या कोई और। उनकी पत्नियाँ बिना रियासत में पैदा हुए, बिना भाषा जाने यहाँ की शहरी हो गयीं। पर पद्मा सचदेव की तरह और कितनी ही लड़कियाँ यहाँ दो गज जमीन भी नहीं ले सकतीं। कुछ इस दर्द ने, कुछ सुग्गी

नाईन ने, कुछ पुराने शहर ने यह उपन्यास लिखवा दिया। हो सकता है यह उपन्यास पढ़कर आपको भी अपना पुराना शहर याद आ जाय।"[72]

2.1.6 <u>दर्दपुर (2004)</u>-

'दर्दपुर' उपन्यास कश्मीरी पंडितों के निर्वासन व स्त्री व्यथा को केंद्र में रखकर बहुत ही बेबाकी से क्षमा कौल द्वारा लिखा गया है। यह उपन्यास वर्ष 2004 में प्रकाशित हुआ। क्षमा कौल का जन्म 17 अप्रैल, वर्ष 1956 को श्रीनगर, कश्मीर में हुआ था। उपन्यास का शीर्षक एक पुर के रूप में कश्मीर को संदर्भित करता है जो वास्तव में दर्द का गढ़ बन चुका है। प्रभु, सुधा, सुमोना आदि पात्र उपन्यास में कश्मीर के यथार्थ रूप को व्यक्त करते हैं। एक कश्मीरी महिला की नजरों से निर्वासन की भीषण परिस्थितियों की जाँच इस उपन्यास के केन्द्र में है।

एक रमणीय क्षेत्र धीरे-धीरे आतंकवाद का शिकार बन गया है। गुलामा की पंक्तियाँ इस दर्द को व्यक्त करती हैं, "कश्मीर की सुंदरता और खुशहाली तबाह। नयी पीढ़ियों के अंत और कुछ नहीं। कुछ भी नहीं। मगर इस पर सोचता कोई नहीं। जो सोचता है उसे बात ढंग से समझ नहीं आती। खुदा की कसम सुधा जी अगर आतंकवाद न आया होता आज पता नहीं कश्मीर ने कितनी तरक्की कर ली होती। कश्मीर किस तरह तरक्की की राह पर था, हैं न, आपको भी पता है कि यहाँ से आपके जाने के समय तरक्की उरोज पर थी। थी न?"[73]

कश्मीर में अलगाववाद की जो विषबेल फैली, उसने कश्मीर के सौहार्द को नष्ट कर दिया। एक अनिश्चित जीवन उनकी नियति हो गयी। साम्प्रदायिकता की मानसिकता ने कश्मीरी जनमानस को बहुत हानि पहुँचायी। राजनैतिक तिकड़मों ने इस साम्प्रदायिकता को अपने हक में भुनाने की कोशिश की। कश्मीर में ब्राह्मण और मुस्लिम तबके इस भावना के शिकार हुए। ईश्वर को धर्म के नाम पर छोटा-

---

[72] पद्मा सचदेव, 'जम्मू जो कभी शहर था, पृष्ठ- 8

[73] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृष्ठ- 03

बड़ा आँकने की प्रवृत्तियों ने जन्म लिया। आतंकवाद की काली छाया कश्मीरी युवाओं को कुमार्ग पर ले जाने लगी।

सुधा नूर मुहम्मद से प्रश्न पूछती है "नूर मुहम्मद, तुम्हारे गाँव के कुछ लड़के आतंकवादी बने? हाँ। क्यों नहीं, लगभग सात। उनमें से तीन एनकाउंटर में मारे गये और दो का कुछ पता पैगाम ही नहीं, दो ने समर्पण किया। अब कांग्रेस के नेता हैं। और सरकारी नौकरी भी मिली है। मैं भी सोचता था कि नौकरी पाने के लिए यही ठीक है। मिलिटेंट बनो। सरण्डर करो। और नौकरी पाओ। और शाबाशी भी, और हो सका तो किसी अच्छी पार्टी का नेता भी। मगर मुझे नेतागिरी का कतई लालच नहीं। बस नौकरी मिल जाए।"[74]

यह उपन्यास लेखिका मजहबी आतंक की सतायी विश्व की सभी स्त्रियों को समर्पित करती है। कश्मीरी पंड़ितों के निर्वासन का दर्द बयां किया गया है। एक समुदाय के अपनी जड़ों से कट जाने का दुःख इस उपन्यास में सर्वत्र है और साथ ही स्त्रियों के कष्टों, प्रेम, त्याग और समर्पण की बानगी भी। धार्मिक उन्माद के सैलाब में न जाने कितनी स्त्रियों का अपहरण किया गया, उन्हें बलात्कार के बाद जान से मार दिया गया या उनके धर्मान्तरण कराए गए। विश्व में जब भी ऐसे उन्माद होते हैं, उनका शिकार मुख्यतः स्त्री समुदाय ही होता है।

उपन्यास की कथा कश्मीर से विस्थापित हुई सुधा के एक समाजसेवी के रूप में पुन: कश्मीर जाने से प्रारम्भ होती है। कश्मीर जाकर उसे वह सब कुछ याद आता है और अपने घर न जा पाने की टीस बनी रहती है। वह सोचती है, "कितना पास है वह घर जहाँ से उसे उस रात निकाला गया था। वह आरामगाह... वह घर जहाँ उसने हमेशा मस्ती की, माँ की छाँव देखी, पिता का लाड़ पाया। वे कमरे, वे दीवारें, वह दहलीज, वे नल, वे बरामदे कितने पास हैं। पर कहाँ हैं। उसे लगा सब निर्जीव वस्तुओं की आत्माएं उग आई हैं। प्राण फूंक गए है उनमें, ताकि

---

[74] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृष्ठ- 29

वे भी तड़पें। दोनों में विरह है। वह वहाँ नहीं जा सकती। वे इसके पास नहीं आ सकते।"[75]

लेखिका कश्मीर में कार्यरत एन. जी. ओ. की पोल खोलती हैं जिनका उद्देश्य कहने को तो कुछ और है पर जमीनी हकीकत उससे बिल्कुल अलग है। कश्मीर में सबके अपने-अपने स्वार्थ हैं, नेता अपनी राजनीति के आंकड़े गिनने में व्यस्त हैं, मानवाधिकारों की अपनी बहसे हैं, सब कमाने में लगे हैं। कश्मीर एक विशाल रंगमंच जैसा हो गया है, जहाँ सबके अभिनय जारी हैं।

इस उपन्यास में उत्पीड़न, निष्कासन के बीच एक और चित्र उभर कर आता है, वह है जीवटता का पुंज बनी कश्मीरी स्त्री का, जिसने सब कुछ सहन करते हुए भी चिरकाल से अपना अस्तित्व बनाए रखा है। लेखिका की पंक्तियाँ इस जिजीविषा का आभास देती हैं, "कश्मीर के बारे में एक आश्चर्यजनक बात कहूँ- यहाँ (कश्मीर में) स्त्री को हमेशा पृष्ठभूमि में धकेला गया। पुरुष के अपने अहंकार के कारण, इस्लामी उत्पीड़न के कारण, स्वयं इस्लाम के कारण... पर जितना धकेला गया... वह उतनी श्रेष्ठतम भी बनती गयी... जैसे अरणिमाल... जैसे हब्बाखातून। ललद्यद की बात ही कुछ और है, वह विश्व की सिरमौर ठहरी। यह शक्तिपीठ है भई। यहाँ की स्त्री शक्ति है। हर कहीं स्त्री शक्ति है, जिससे पुरुष डरता है।”[76]

2.1.7 <u>व्यथ-व्यथा (2005)</u>-

यह उपन्यास वर्ष 2005 में प्रोफेसर हरिकृष्ण कौल द्वारा लिखा गया है। प्रो. हरिकृष्ण कौल का जन्म 1934, श्रीनगर कश्मीर में हुआ था। उपन्यास में कश्मीर का पौराणिक और ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। ध्यातव्य है कि व्यथ वितस्ता नदी का ही नाम है। वितस्ता का एक और नाम झेलम भी है। इसी नदी के तीर पर कश्मीर बसा हुआ है। यह एक आत्मकथात्मक उपन्यास है

---

[75] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ.- 23

[76] वही, पृष्ठ- 33

जिसमें प्रमुख पात्र अशोक अपनी संगोष्ठी के लिए 'कश्मीर समस्या' से जुड़े विषय का चुनाव करता है, 'अ केस अगेंस्ट क्रोनोलॉजी इन द स्टडी ऑफ हिस्ट्री।' इस चुनाव के मुख्यतः तीन कारण हैं। पहला, वह स्वयं एक कश्मीरी है, दूसरा नीलमत पुराण और राजतरंगिणी ग्रन्थ और तीसरा पंडित जवाहरलाल नेहरू।

इस उपन्यास में कश्मीर से निष्कासित लोगों के नए जीवन की तलाश में दर-दर भटकने की कथा वर्णित है। इस पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं, "व्यथ-व्यथा इन दो शब्दों के एक साथ शब्दार्थ को समझना आज जनता के लिए असंभव ही हो सकता है। अतः हम सीधी भाषा में साफ कहेंगे कि व्यथ कश्मीरी भाषा में कश्मीर की ही वितस्ता नदी का नाम है। क्या जानें? हो सकता है कि इस व्यथ नामक कश्मीरी नदी ने हम गैर-इस्लामी कश्मीरियों को अनासीन जान कर अपने से दूर हटा दिया हो। रही व्यथा? वह शायद हमारे शरीर और हृदय में बस गई होगी।"[77]

उपन्यासकार भूमिका में हिन्दी साहित्य के प्रति रुचि तथा कथा साहित्य की ओर रुझान का कारण अपने मित्र अखतर महीउद्दीन की मित्रता बताते हैं। साथ ही अपने मित्र अब्दुल धनी भट का भी जिक्र करते हैं जो ऑल पार्टी हुर्रियत कांफ्रेस के एक्जीक्यूटिव मेंबर हैं। इस घटना की भी बात करते हैं जब इसी मित्र ने उन्हें कश्मीर छोड़ने को कहा था। वह अपने मित्र की कही बातें उद्धृत करते हैं, "तुम मेरे दिल के दोस्त हो इसलिए मैं तुम्हारी जिंदगी के लिए तुम्हें कश्मीर छोड़कर कहीं और जाने का मश्वरा ही नहीं हुक्म दे रहा हूँ। मुझे उसके इस मज़ाक पर हँसी आई। लेकिन अब मैं सोचता हूँ कि जिस बात को मैंने मज़ाक समझा वह मेरे लिए दर्द और हमदर्दी की पीड़ा थी। दो-तीन महीनों के बाद ही मुझे, मेरे परिवार और रिश्तेदारों को छोड़कर जम्मू, दिल्ली या कश्मीर के बाहर भारत के किसी कोने में अपनी जान और इज्ज़त बचाने के लिए रहना पड़ा।"[78]

---

[77] प्रो. हरिकृष्ण कौल, व्यथ-व्यथा पृष्ठ- 05

[78] वही, पृ.- 7

प्रो. हरिकृष्ण कौल ने राजनीति के उतार-चढ़ावों तथा कश्मीरी जनमानस में राजनेताओं के प्रति छिपे आक्रोशों का भी चित्रण किया है। बिजली कट जाने पर जब मुख्य पात्र अशोक लाइनमैन से लगातार बिजली कटने का कारण पूछता है तो वह इंदिरा गांधी को गालियाँ देते हुए 'आंजहानी' कहता है। 'आंजहानी' मतलब दूसरे जहां की। अशोक के पिता मोहनकृष्ण दर के प्रश्न करने पर रमजान जू दो टूक जवाब देते हुए कहता है, "करते थे और गलत करते थे। मरे हुए शख्स के नाम के आगे मरहूम लफ्ज जोड़ने का मतलब है कि हम उसके लिए अल्लाह से रहमत की दुआ करते हैं और अल्लाह की रहमत का हकदार सिर्फ एक मुसलमान हो सकता है।"[79]

1990 में होने वाले निष्कासन के पूर्व कश्मीर में किस प्रकार सांप्रदायिक विद्‌वेष रूप ले रहा था? यह उपन्यास में सहज द्रष्टव्य है। आने वाले कल की भयावहता का आभास कश्मीरी समुदाय को होने लगा था। अवसरवादी प्रवृत्तियाँ अपने चरम पर थीं। कश्मीरी पंडितों के घरों, बागों, खेतों की कीमतें लगायी जाने लगी थीं तथा उन्हें कश्मीर छोड़ देने की सलाह और धमकियाँ मिलना आम बात हो गयी थी। रमज़ान जू, मोहनकृष्ण दर को घर बेचने के लिए प्रेरित करता है और पुत्र अशोक के पास दिल्ली जाने की नसीहत देता है। आतंकी घटनाओं का जिक्र और मजहबी नारेबाजियों के दृश्य इस उपन्यास में हैं। जज नीलकांत गंजू की हत्या और हिंसक हादसों का अंबार तत्कालीन जटिल परिस्थितियों का सूचक है। कश्मीर में मनाए जाने वाले पर्वों-त्यौहारों की झलकियाँ प्रवाह बनाए रखती हैं। मिथकों, लोककथाओं एवं लोकगीतों का यथोचित प्रयोग किया गया है। उपन्यास का शीर्षक कथ्य का पूर्णतः प्रतिनिधित्व करता है।

2.1.8 <u>एक कोई था कहीं नहीं सा (2009)</u>-

मीराकांत रचित एवं वर्ष 2009 में प्रकाशित 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' कश्मीर समस्या पर केंद्रित महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। कश्मीर के इतिहास के चरणों के साथ एक पूरा युग इस उपन्यास में झलकता है। उपन्यास लेखिका का जन्म

---

79 प्रो. हरिकृष्ण कौल, व्यथ-व्यथा पृष्ठ- 19

वर्ष 1958 में श्रीनगर, कश्मीर में हुआ। शबरी नामक एक संघर्षशील किशोरी विधवा व उसका प्रगतिशील भाई अंबरनाथ, कश्यप बंधु की चेतना का आधार ग्रहण कर पथ पर गतिशील होते हैं। उपन्यास के केंद्र में कश्मीर में जाग रही नारी चेतना है। राजनीति का निर्मम स्वरूप दिखाया गया है। यह उपन्यास कश्मीरी जीवन और समाज को समझने की एक जीवंत दृष्टि देता है।

निर्वासन का दंश उपन्यास की पात्र शबरी के माध्यम से चित्रित किया गया है। कश्मीर के बिगड़ते हालातों को देखते हुए वह वापस कश्मीर लौटने की आस के साथ दिल्ली आती है परंतु वह आशा टूटने लगती है। उसका पूरा जीवन जिस घर में बीता वह उन्हीं स्मृतियों के संसार में खाक हो जाना चाहती है। वह कहती है, "इस घर आँगन से लगता है जन्म-जन्मांतर का नाता है। यहीं जन्म लिया, यहीं से ब्याही गई और लौटी भी तो यहीं। यहीं रहकर एक ही जीवन में न जाने कितने जीवन जिये! तो क्या अब अंतिम पहर में, चला-चली की इस वेला में इसे छोड़ दूँ? नहीं, किसी कीमत पर नहीं। हरगिज नहीं...।"[80] लेकिन शबरी जैसे कई निर्वासितों की यह छोटी-सी चाह अधूरी रह जाती है।

कश्मीर में विस्थापित होने वाले समुदाय की दयनीय स्थिति पर भी उपन्यास में लेखिका ने प्रकाश डाला है। शरणार्थी कैम्पों के बीच लोगों ने नारकीय जीवन जिए। झुलसाती धूप, बेहद छोटे टेंट और उस पर सांप-बिच्छू जैसे विषैले जीवों ने जिंदगी जहन्नुम बना दी थी। शबरी जब दिल्ली जाती है तो वह अपनी हालत बाकी विस्थापितों से बेहतर पाती है। सांप्रदायिक दंगों का शिकार बना यह समुदाय आज भी मानसिक आरोहों-अवरोहों के थपेड़े झेल रहा है। जीवन के अन्तिम समय में जब शबरी को ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वह कश्मीर नहीं जा पायेगी तो अपने बड़े भाई अंबरनाथ की पंक्तियाँ गाती है**-** "बुलबुल न ये, वसीयत एहबाब भूल जाएँ। गंगा के बदले मेरे झेलम में फूल जाएँ।"[81] शबरी फिर

---

[80] मीराकान्त, एक कोई था कहीं नहीं सा, पृष्ठ-

[81] वही, पृष्ठ- 196

कभी कश्मीर नहीं लौट पाती और उसकी मृत्यु के साथ उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है।

2.1.9 <u>शिगाफ़ (2010</u>)-

प्रस्तुत उपन्यास की लेखिका मनीषा कुलश्रेष्ठ हैं। इनका जन्म 26 अगस्त, 1967 को जोधपुर में हुआ। 'शिगाफ़' उपन्यास कश्मीर की एक मुखर आवाज बनकर पटल पर आता है। इस उपन्यास का वाचन हायडलबर्ग (जर्मनी) के साउथ एशियन मॉडर्न लैंग्वेजेज सेंटर में भी हुआ है। लेखिका कश्मीर से जुड़ी रही हैं तथा इस उपन्यास के माध्यम से कश्मीर सम्बन्धी अनेक ज्वलंत मुद्दों को उठाया है। विस्थापन की पीड़ा उपन्यास में प्रमुखता से दर्ज है।

कश्मीर से विस्थापित होने वाले लोगों का दर्द सिर्फ एक महान सामाजिक, सांस्कृतिक विरासत से जुदा होने तक ही सीमित नहीं है। यह दुःख एक नये क्षेत्र में जाकर एक नयी पहचान बनाने का संघर्ष, न बन पाने का दुःख, भटकाव व कहीं स्थिर न हो पाने की विवशता से जुड़कर और विकट हो जाता है। उपन्यास की पात्र अमिता ने यह दुःख झेला है और सैन्सबेस्टियन (स्पेन) में रहकर लगातार अपने ब्लॉग के माध्यम से शालीनतापूर्वक अपने दुःख व क्षोभ को व्यक्त करती रही है।

शिगाफ़ का अर्थ है- दरार। यह दरार कश्मीर की आत्मा में पड़ गयी है। इस दर्द से धार्मिक सौहार्द रिस रहा है, इस दरार को भरने के लिए उपन्यास का नायक पत्रकार जमान संकल्परत है। अमिता के ब्लॉग, यास्मीन की डायरी, मानव बम जुलेखा का मिथकीय कोलाज, अलगाववादी नेता वसीम के एकालाप के पड़ावों से गुजारते हुए लेखिका ने कश्मीर में व्याप्त आतंकवाद, विस्थापन, स्त्री-स्थिति, सैन्य बलों के टकराव आदि पहलुओं पर विचार किया है।

1990 में हुए विस्थापन के बाद एक नये स्थान पर अपने लिए जगह बनाना निर्वासित समुदाय के लिए बहुत मुश्किल रहा। वे परिस्थितियों के अनुसार ढल तो गए पर उनका अंतर्मन न ढल पाया। वह दर्द, वह कचोट सदा बनी रही।

लेखिका लिखती हैं, "यह अहसास कितने, ख्वाब दिखाता है और विराट अनुभव जगत की ओर ले जाता है, लेकिन इस दीवार के पीछे का जो दृश्य है वह किसने देखा है? गैरभाषियों के बीच अपनी भाषा का मोह कितना सालता है, यह बंगला बोलने को तरसती तसलीमा नसरीन से भी पूछना होगा कभी। अपने आपको भीतर रखकर लिखना ठीक नहीं होगा। मुझे स्वयं को बाहर एक फासले पर रखकर देखना होगा।"[82] उपन्यास की मुख्य पात्र अमिता इसी दर्द को स्पेन में महसूस करती है।

अपने भीतर उठे ज्वार को शांत करने के लिए या अभिव्यक्त करने के लिए वह ब्लॉग लिखती है। इस ब्लॉग के माध्यम से ही वह अन्य कश्मीरी विस्थापितों से जुड़ी रहती है। अपने दुःख को उनके दुःखों में बाँटकर कुछ समय के लिए वह खुद को अपनों के बीच पाती है। आतंकवाद, अलगाववाद, हिंसा जैसी समस्याओं का वर्णन अमिता अपने ब्लॉग में बखूबी करती है। कश्मीरियत, मानवाधिकार, अलगाववाद, स्त्री-शोषण एवं उसकी मानसिक स्थिति, अलगाववाद एवं सैन्य बलों की तकरार आदि समस्याओं को उजागर किया गया है।

2.1.10 <u>सूखते चिनार (2012)</u>-

'सूखते चिनार' उपन्यास वर्ष 2012 में हिन्दी साहित्यकार मधु कांकरिया द्वारा लिखा गया है। लेखिका का जन्म वर्ष 1957 में हुआ। अपने सृजन के लिए हमेशा अनछुए विषयों का चुनाव करने वाली मधु कांकरिया ने 'सूखते चिनार' उपन्यास में कश्मीर को अपने लेखन का विषय बनाया है। यह उपन्यास एक ऐसे नौजवान की कहानी पर आधारित है जो अपने परिवार के खिलाफ जाकर फ़ौज में मात्र इसलिए भर्ती हो जाना चाहता है कि एक दिन अखबार में उसने 'नेशन नीड्स यू' का भावुक संदेश पढ़ा। उसने संकल्प लिया कि सोल्जर आई एम बॉर्न, सोल्जर आई शैल डाई।' इस प्रकार एक ऐसा मारवाड़ी लड़का जो बनियों के घर

---

[82] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृष्ठ- 12

से था तथा नाप-तौल जिसके जीवन का हिस्सा रहा, वह हाथों में बन्दूक थाम लेता है।

यह युवक कलकत्ता छोड़कर कश्मीर के सर्द मौसम में कैंपों में जीवन जीने के लिए संघर्ष करता है। एक सैन्य-जीवन जी रहे व्यक्ति के जीवन की कठिनाईयों से यह उपन्यास पाठकों को वाकिफ कराता है। मेजर संदीप, कर्नल आप्टे, बाबा हरभजन जैसे अनेक प्रभावी पात्र इस उपन्यास में हैं जिनके माध्यम से राष्ट्र और एक फौजी के रिश्ते को समझा जा सकता है। 'युद्ध और बुद्ध' शीर्षक के अन्तर्गत जब कड़ी देखरेख के बाद भी संदीप को अपने क्षेत्र में एक जेहादी के होने की खबर मिलती है, तो वह खबरिये से जाँच-पड़ताल करता है। वह कहता है, "साहेब जी, एक तो यहाँ इस्लाम का चाबुक हर घर में लटका रहता है। लोग यहाँ जिन्दगी से ज्यादा अल्लाह, कुरान, नमाज़ और दाढ़ी-टोपी में दिलचस्पी रखते हैं। दूसरा जेहादी बनते ही सारा गाँव उसे और उसके परिवार को डर और इज्जत से देखने लगते हैं।"[83]

कश्मीर में नियुक्त सैन्य बलों के जीवन की स्थितियों का सूक्ष्म अंकन इस उपन्यास में है। 'स्वप्न और उड़ान', 'घर' 'युद्ध और बुद्ध' तथा 'सिद्धार्थ' अध्यायों के माध्यम से कश्मीर में तैनात सैनिकों और कश्मीरी जनता तथा आतंकियों के साथ उनके समीकरणों के विषय में जाना जा सकता है।

2.1.11 <u>इकबाल (2014)</u>-

कश्मीर केन्द्रित हिन्दी उपन्यास 'इकबाल' वर्ष 2014 में प्रसिद्ध साहित्यकार जयश्री रॉय द्वारा लिखा गया है। जयश्री रॉय का जन्म हज़ारीबाग, झारखंड में हुआ था। प्रस्तुत उपन्यास में कश्मीर के वातावरण का बेहद आकर्षक चित्रण किया गया है। कश्मीर को समझने की एक दृष्टि यह उपन्यास देता है। प्रेम और राष्ट्र के टकराव से उत्पन्न अनिश्चितता के बीच इतिहास को खंगाला गया है। कश्मीर के अनुपम सौंदर्य के साथ ही वहाँ के लोगों का आर्तनाद भी

---

[83] सूखते चिनार, मधु कांकरिया, पृष्ठ- 101

मौजूद है। यह उपन्यास गोवा और कश्मीर के दो किनारों के जिया और इक़बाल के प्रेम सम्बंधों के त्रासद अंत की कथा है। इस कथा में निष्कासन का दर्द और आतंक का वीभत्स रूप वर्णित है।

कश्मीर का अपना विशिष्ट राजनैतिक इतिहास रहा है तथा 'कश्मीरियत' कश्मीर की अस्मिता। कश्मीरियत की भावना को दिल में रखे हुए ये पात्र संवेदना के अनेक पड़ावों पर टकराते हैं और अपने उच्चतम बिन्दु पर पहुँचने के बाद अलगाव की कोई स्थिति नहीं छोड़ते। रूमानियत के अहसास से उपन्यास सराबोर है। कश्मीर और भारत के सम्बंधों पर बात करते हुए लेखिका तर्क और संवेदना दोनों का दामन पकड़े रहती है। कश्मीर को समग्रता से देखने का प्रयास इस उपन्यास में है। इसमें इकबाल से कहीं ज्यादा जिया की कथा कही गयी है। इक़बाल वैचारिक तौर पर जिया से कमजोर है। कश्मीर की आजादी का विचार उसके दिमाग में घर किए बैठा है जबकि जिया राष्ट्रवादी प्रतिबद्धताओं से बँधी है।

इकबाल की भावनाएँ भारत सरकार के प्रति आक्रोश से संचालित होती है। इकबाल और जिया के नज़रिये का फर्क कई गंभीर राजनैतिक प्रश्नों को उठाता है। कश्मीर की स्वायत्तता से जुड़े विचार कश्मीर को लेकर एक स्वतंत्र और पूर्वाग्रहमुक्त सोच की मांग करते हैं। निश्चित रूप से कश्मीर पर लिखे गये उपन्यासों में 'इकबाल' उपन्यास अपनी विशेष पहचान लिए हुए है।

2.1.12 <u>आतंक की दहशत (2018)</u>-

प्रस्तुत उपन्यास प्रोफेसर तेज एन. धर द्वारा वर्ष 2018 में लिखा गया। यह एक अनूदित उपन्यास है। उपन्यासकार का जन्म 26 जनवरी, 1944 को श्रीनगर, कश्मीर में हुआ था। यह उपन्यास भारतीय इतिहास के उस काले पन्ने पर लिखी गयी त्रासदी का जिक्र करता है जो 1990 में कश्मीर में घटी। यही वह समय था जब घाटी में आतंकी वारदातें चरम पर थीं। दिन-दहाड़े हत्याएँ, आगजनी और मजहबी नारों का होना आम होने लगा था। पंडितों को कश्मीर छोड़कर भाग जाने के धमकी भरे नारे दिए जा रहे थे। लोगों के नाम फतवे जारी किए गए थे।

कश्मीरी पंडितों में भय बनाए रखने के लिए लगातार प्रतिनिधित्व कर रहे पंडितों की हत्याएँ की जा रही थीं। सेक्यूलर मुस्लिमों को भी नहीं बक्सा गया। ऐसी अनेक घटनाएँ डायरी विधा में लिखे गए इस उपन्यास का हिस्सा हैं। उपन्यासकार इतने विकट समय में स्वार्थ में डूबे राजनेताओं पर भी टिप्पणी करते हैं तथा जगमोहन पर कश्मीरी पंडितों को निकालने हेतु प्रेरित करने के लगे आरोपों को भी उधेड़ते हैं। उपन्यास का पात्र मानसिक तनाव से ग्रस्त है तथा डायरी के माध्यम से पुरानी यादों को जी रहा है। वह निश्चय नहीं कर पा रहा कि उसे घाटी में रहना चाहिए या चले जाना चाहिए। नायक के अंत के साथ उपन्यास समाप्त होता है।

2.1.13 <u>बर्फ और अंगारे (2020)</u>-

'बर्फ और अंगारे' उपन्यास के लेखक सेवानिवृत्त प्रशासनिक अधिकारी डॉ. सुधाकर अदीब हैं। इस उपन्यास का प्रकाशन 2020 में हुआ। उपन्यासकार का जन्म 17 दिसम्बर, 1955 को फैजाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ। यह उपन्यास 'कश्मीरी पंडितों के महानिर्वासन' पर आधारित है। उपन्यास जुझारू कश्मीरी विस्थापित श्रीमती जमुना रानी कौल को समर्पित है। उपन्यास की कथा इलाहाबाद में जन्मी शारदा देवी से शुरू होती है जिनका विवाह 15 वर्ष की उम्र में कश्मीर के पुलवामा जिले के कृषक अमरनाथ कौल से हो जाता है। शारदा, उपन्यास की केन्द्रीय पात्र है।

उपन्यास इतिहास को पिरोए चलता है तथा इसका आरंभ महाराजा हरि सिंह के कश्मीर विलय पत्र से प्रारम्भ होता है। कबाइली आक्रमण में हुए व्यापक नरसंहार और पाक अधिकृत कश्मीर बनने पर भी चर्चा है। कश्मीरी समाज में हिन्दू और मुस्लिमों के बीच सम्बन्ध सूत्रों में दरार की प्रक्रिया भी वर्णित है। कश्मीरी समाज के खान-पान, पहनावे, त्यौहार, लोककथाओं और लोकगीतों के साथ ललद्यद, हब्बाखातून, नुंद ऋषि के सहारे 'कश्मीरियत' की सोंधी सी झलक उपन्यास में है।

कश्मीरी पंडितों के सुशिक्षित तथा मुस्लिम कृषकों के अधिकांशतः अनपढ़ या कम-पढ़े लिखे होने और अपेक्षाकृत गरीब होने को उनमें पोषित एक असन्तोष के कारण रूप में दिखाया गया है। कालान्तर में यही असंतोष मजहबी आक्रोश का रूप लेता है। उपन्यास में घाटी में सेना बलों की बढ़ती तैनाती और आतंक पर लगाम न लगा पाने की विवशता पर विचार किया गया है। इस तनाव से कश्मीरी जनमानस पर मानसिक दबाव पड़ रहा है तथा कश्मीरी स्त्रियाँ दोनों ही ओर से शोषित हो रही हैं। कश्मीर में मजहबी उन्माद 'आजादी' के नारों में स्पष्ट दिखाई देता है।

उपन्यास का अंत आजादी के असल मायने समझाते हुए होता है। भारतीय गुप्तचर आतंकी नौजवान किशोर को समझाता है, "मुझे यह मालूम है कि मेरे इस काम में मुझे कभी भी कुछ हो सकता है। ये भी हो सकता है कि मैं कभी अपने घर वालों से न मिल पाऊँ। मगर मेरे अंदर इसके बावजूद कोई खौफ नहीं है क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं जिन्हें सबसे ज्यादा प्यार करता हूँ वो हमेशा महफूज रहेंगे इसलिए मैं बिना किसी खौफ के अपने देश की सेवा करता हूँ। इसे बोलते हैं सच्ची आज़ादी...।"[84]

2.1.14 <u>काँपता हुआ दरिया (2020)</u>

यह उपन्यास वर्ष 2020 में प्रकाशित हुआ। इसके लेखक मोहन राकेश एवं सहलेखिका मीराकांत हैं। मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, 1925 को अमृतसर में हुआ। कश्मीर के लिए लेखक के मन में हमेशा एक कोमल कोना था और पुस्तक का पूर्वार्द्ध इस प्रेम को व्यक्त करता है। दुर्भाग्यवश मोहन राकेश यह उपन्यास पूरा न कर सके और उनकी इच्छा को ध्यान में रखते हुए मोहन राकेश साहित्य के गंभीर अध्येता जयदेवा तनेजा ने कश्मीरी उपन्यासकार मीराकांत की मदद ली। उपन्यास का उत्तरार्द्ध मीराकान्त द्वारा लिखा गया है। लेखक की मनोभूमि से जुड़ने के लिए मीराकांत कई महीनों तक हाउसबोट व वहाँ के लोगों

---

84 डॉ. सुधाकर अदीब, बर्फ और अंगारे, पृष्ठ- 205

का जीवन संघर्ष अनुभव करती रहीं। यह उपन्यास कश्मीर के प्रसिद्ध सौन्दर्य एवं प्रेम कहानियों से अलग दरिया में घर बनाकर रहने वाले लोगों के जीवन की कथा है। उपन्यास में हाउसबोट पर अपनी आजीविका हेतु निर्भर वर्ग की व्यथा-कथा कही गई है।

उपन्यास में 'पूर्वभूमि' के तहत मोहन राकेश ने स्वयं इसकी रचना-प्रक्रिया पर प्रकाश डाला है। खालका, खान, सिद्दीक, नूरा अन्य मुख्य पात्र हैं। कथानक का विस्तार 1947 से होता हुआ 1950 और मीराकांत द्वारा वर्तमान तक है। यह उपन्यास स्वयं में एक अलग पहल है जो कश्मीर के आम जनों से हमारा परिचय कराता है। उनकी रोजमर्रा की आवश्यकताओं व उनके संघर्षों से हमें वाकिफ कराता है। कश्मीर के एक आम व्यक्ति के जीवन की जो विपदाएँ, उम्मीदें और आकांक्षाएं हैं, हमें उनसे परिचित कराता है यह उपन्यास।

उपन्यास में राजनीतिक हलचलों और कबाइली आक्रमण का भी वर्णन है। आतंकी गतिविधियों ने कश्मीर के पर्यटन को काफी प्रभावित कर दिया। उपन्यास की पंक्तियाँ कश्मीर व उसके पर्यटन के गिरते स्तर को व्यक्त करती हैं, "उस काँपते हुए दरिया में बेगम को दिखाई देती है, थरथराती घाटी, चारों तरफ खड़े ऊँचे-ऊँचे पहाड़ जो हिल रहे हैं और पास खड़े हाउसबोटों की सहमी-सहमी परछाइयाँ। यानी कुल मिलाकर काँपता हुआ पूरी घाटी का अक्स।"[85]

2.1.15 <u>कश्मीर 370 किलोमीटर (2020)-</u>

रवीन्द्र प्रभात द्वारा लिखित यह उपन्यास वर्ष 2020 में प्रकाशित हुआ। लेखक का जन्म 5 अप्रैल, 1989 को सीतामढ़ी, बिहार में हुआ है। वे एक हिंदी उपन्यासकार, पत्रकार, कवि और लघु कथाकार हैं। यह उपन्यास लेखक उन सभी साथियों को समर्पित करते हैं जिन्होंने कश्मीर और कश्मीरियत को मजबूत बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह कश्मीर और कश्मीरियत को ध्वस्त

---

[85] काँपता हुआ दरिया, मोहन राकेश, पृ 266

किए जाने के श्रृंखलाबद्ध प्रयासों को प्रस्तुत करता है। उपन्यास में कश्मीर में होने वाले अनेक हिंसक हादसों की पड़ताल है।

उपन्यास को किस्सागोई शैली में लिखा गया है जो प्रवाह की सहजता निरन्तर बनाए रखता है। जानकारियों का संप्रेषण अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से हुआ है। कश्मीरी हिंदुओं की व्यथा को स्पष्ट करने का अथक प्रयास है। कठिन परिस्थितियों में इंसानी साहस व जिजीविषा के उत्कट रूप को दिखाया गया है। उपन्यास के सत्य घटनाओं पर आधारित होने का दावा किया गया है। भारतीयता, शांति व न्याय के प्रति विश्वस्त होने की पहल है। कश्मीर समस्या को देखने समझने की एक पारखी दृष्टि इस उपन्यास के कलेवर में समायी है।

कश्मीर के इतिहास में 5 अगस्त, 2019 को धारा 370 और 35(A) का खात्मा एक ऐतिहासिक फैसला था जिसके तहत राज्य को दो केंद्रशासित प्रदेशों में बाँट दिया गया। उपन्यास इस घोषणा के पहले कश्मीर में जो माहौल व कस्मकस थी, उसके चित्रण के साथ आरम्भ होता है। लोगों को नज़रबंद रखने व संचार व्यवस्था पर रोक लगाने और कर्फ्यू जैसे प्रतिबंध लगा दिए गए। फैसले ने लोगों में अनिश्चितता व दुविधा पैदा की। उपन्यासकार से बात करते हुए काजीगुंड शहर के एक व्यक्ति इस मामले में अपनी राय देते हैं, "हाल ही में भारतीय संसद ने देश के संघीय ढाँचे और लोकतांत्रिक चरित्र की जड़ों को हमेशा के लिए कमजोर कर देने वाला एक फैसला किया। एक गैर-संवैधानिक प्रक्रिया से निकले हुए इस फैसले के तहत न सिर्फ जम्मू-कश्मीर का विशेष दर्जा छिन गया बल्कि वह उस न्यूनतम स्वायत्तता से भी महरूम हो गया जो अन्य राज्यों को मिली हुई है।"[86] ऐसे अनेक ज्वलंत प्रश्न इस उपन्यास में हैं।

2.1.16 <u>नाकाबन्दी (2020)-</u>

यह उपन्यास सुपरिचित लेखिका आरिफा एविस द्वारा लिखा गया है और इसका प्रकाशन 2020 में हुआ। लेखिका का जन्म 1997 में हुआ और एक

---

[86] कश्मीर 370 किलोमीटर, रवीन्द्र प्रभात, पृ.10

रचनाकार के साथ ही वह सचेत पत्रकार भी हैं। यह संयुक्त रूप इस उपन्यास की बहुआयामिता में सहायक रहा है।

5 अगस्त, 2019 को कश्मीर में धारा 370 और 35 (A) को खत्म कर दिया गया। जिन स्थितियों में यह कदम उठाया गया, उसके प्रति आक्रोश व्यक्त किया गया है। कश्मीर में लगभग कर्फ्यू जैसे हालात थे। धारा 144 लगा दी गयी। आम जनता घरों में कैद थी और प्रतिनिधि नेता नजरबंद। कश्मीर को पूरी दुनिया से लगभग काट दिया गया। संचार सेवाओं पर रोक लगा दी गयी और टूरिस्टों को वहाँ से फौरन वापस जाने का आदेश जारी किया गया। मानवाधिकार की बलि चढ़ाते हुए यह तानाशाही फैसला लिया गया। 'लेखकीय' संदर्भ के अंतर्गत आरिफा इस क्षोभ को व्यक्त करती हैं, "हम जिस लोकतांत्रिक देश में रहते हैं, उस देश में सारे मानवाधिकारों को ताक पर रखकर जब सत्ता जनता का दमन करती है तो प्रतिरोध की लहर अपने आप उठती है। जनता में विरोध, क्षोभ, गुस्सा होना लाजिमी है। यह सिर्फ इसी देश में ही नहीं दुनिया के हर देश में होता है। यह गुस्सा ही इन्सानियत के जिन्दा होने की निशानी है।"[87]

उपन्यास की मुख्य पात्र सोफिया है। सोफिया के परिवार के माध्यम से कश्मीर में रह रहे स्थानीय लोगों की मुश्किलों का अंदाजा लगाया जा सकता है और दिल्ली के उसके मित्रों की मानसिकता, कश्मीर के प्रति भारत की मुख्यधारा की प्रतिक्रिया को दर्ज करती है। पुलिसिया तंत्र के आतंक की भर्त्सना की गयी है तथा कश्मीर में मीडिया की भूमिका पर भी व्यापक बहस है।

2.2 कश्मीर केन्द्रित हिन्दी कहानियाँ : विवेचनात्मक अध्ययन (विशेष सन्दर्भ 1990-2020)

कश्मीर को आधार बनाकर हिन्दी साहित्य में अनेक कहानियां लिखी गयी हैं। इन कहानियों के माध्यम से कश्मीर से जुड़ी संवेदनाओं को बारीकी से व्यक्त किया गया है। कहानी का आकार कम विस्तृत होने के कारण इसमें किसी भी

[87] कश्मीर 370 किलोमीटर, रवीन्द्र प्रभात, पृ.10

विषय को विस्तार से चित्रित तो नहीं किया जा सकता परंतु कम शब्दों में भी कहानी सूक्ष्म रूप से संवेदना को व्यक्त करने में सफल हो जाती है। कश्मीर को लेकर, विशेषकर 1990 के बाद कई कहानियां लिखी गयीं। इनमें विस्थापन के दंश, आतंक के भय, क्षीण हो रही सांस्कृतिक चेतना आदि को लेकर काफी कुछ लिखा गया है। कहानी लेखकों में सबसे महत्त्वपूर्ण नाम है- चन्द्रकांता। लेखिका ने जिस प्रकार अपने उपन्यासों में कश्मीर को समग्र रूप से चित्रित किया उसी तरह कहानियों में भी उन्होंने कश्मीर की समस्याओं व कश्मीर से जुड़े अपने चिंतन को व्यक्त किया है। चन्द्रकांता सौ से अधिक कहानियाँ लिख चुकी हैं और इनकी अधिकांश कहानियां कश्मीर पर केन्द्रित हैं।

चन्द्रकांता की सृजन-यात्रा लगातार नयी ऊंचाइयों को छू रही है। इनके साहित्य में विविधता, गहनता और सूक्ष्मता का एक अद्‌भुत सामंजस्य देखने को मिलता है। कश्मीर पर लिखी गयी इनकी प्रमुख कहानियाँ हैं, 'किस्सा गाशकौल', 'एक और परदेस', 'शरणागत दीनार्त', ‘पायथन', 'विदा गीत', 'नदी का काम बहना है’, 'रानी भाभी’, ‘सरहदों के नाम', 'नवशीन मुबारक', 'वनवास', काली बर्फ', 'आवाज' आदि। इन कहानियों में उन्होंने अलग-अलग स्थितियों व संवेदनाओं को केन्द्र में रखा है।

अपने कथा संग्रह 'कोठे पर कागा' की शुरूआत करते हुए वे लिखती हैं, "एक कृति जब लेखक के अनुभूति, सोच एवं स्पंदन की सघनता से गुजर कर पाठकों तक पहुंचती है तो लेखक अपना काफी कुछ संजोया पाठक को सौंप कर खुद को भी रिक्त करता है जो कि अन्ततः यह रिक्तता भी उसके सुख का कारण बन जाती है। खुद को वृहत्तर पाठक वर्ग के साथ बाँटने का सुख। इसके अलावा हर रचनाकार के मन में एक बेहतर व्यक्ति एवं बेहतर समाज का सपना चल रहा होता है। इसी कारण वह जीवन और जन के सुख-दुःखों को विश्लेषित कर सवालों के जवाब तलाशता है।”[88] चन्द्रकांता की विवेच्य कहानियाँ इन्हीं सवालों के जवाब ढूँढती एक बेहतर समाज को रूप देने में संकल्परत नजर आती हैं।

---

[88] चन्द्रकांता, कोठे पर कागा, फ्लैप से

'कोठे पर कागा' कथा-संग्रह की दो महत्त्वपूर्ण कश्मीर केन्द्रित कहानियां हैं- 'किस्सा गाशकौल' एवं 'एक और परदेश'। 'किस्सा गाशकौल' कहानी में किस्सागो गाशकौल को केन्द्र में रखकर उनके इर्द-गिर्द पसरे टैंटों एवं कैंपों के दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। आशाओं एवं उम्मीदों के टुकड़े होते रहने की कहानी कही गयी है। पशुओं से बदतर जीवन जीने को अभिशप्त यह समाज एक स्वच्छ एवं खुले माहौल में जीने का आदी रहा था। अपने पुरखों की जमीन से कटा गाशकौल अधिकांश निर्वासितों की तरह इन्तज़ार की अन्तहीन अवधि काटता प्राण त्याग देता है। 'एक और परदेश' कहानी में नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच बढ़ती दूरी को दर्शाया गया है। कहानी में कश्मीर के भयाक्रांत माहौल एवं अखबारों के इन त्रासद घटनाओं से भरे रहने को भी चर्चा का विषय बनाया गया है।

चन्द्रकांता मानती हैं कि रचनाकार और पाठक का एक ताउम्र बना रहने वाला रिश्ता होता है और अपनी कहानियों के माध्यम से वे इस रिश्ते से अपना सुख-दुःख जाहिर करना जरूरी समझती हैं। ये कहानियां इसी बांट का एक जरिया हैं। वे अपनी कहानियों में समस्याओं को पकड़ने की भरपूर कोशिश करती हैं। वे लिखती हैं, "हम रचना करने वाले अपनी कृतियों के माध्यम से पाठकों से संवाद करते हैं। कोई बात, चाहे वह जानी पहचानी भी हो, अपने विशिष्ट ढंग से, अपनी सोच और शैली के लिबास से सजाकर पाठक तक पहुंचाते हैं। जहाँ हम उसे अपने सुख-दुःख का भागीदार बनाते हैं, वहीं उसके सुख-दुःख बाँटते भी हैं। पाठक के साथ यही लेना-देना, संवेदन का रिश्ता ताउम्र बना रहता है।"[89]

'काली बर्फ' चन्द्रकांता का एक महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह है। इसमें प्रकाशित कहानियों में एक वैविध्य है। प्रत्येक कहानी किसी एक अलग मुद्दे को चर्चा का विषय बनाकर लिखी गयी है। इस विविधता का कारण चन्द्रकांता अपने उदित हो रहे नित नवीन भावों की प्रेरणा मानती हैं। वे लिखती हैं, "मैं एक दिन आत्मीयता और मानवीय सरोकारों से पूरमपूर कहानी 'पोशनूल की वापसी' लिखती हूं और दूसरे दिन आतंक, हत्या, अविश्वास और दरिंदगी से अँटी 'काली बर्फ'। जीवन की

[89] वही, यह कहानियां, पृ07

विविध वर्णी सच्चाइयों में वहाँ कहीं आतंक के दौर में फँसे निर्दोष जनों की पीड़ा के कारण छिपे होते हैं, जो शरणदाता होते हुए पुरखों के प्यार पगे आँगनों से निष्कासित होकर शरणागत की मजबूरियाँ ढोते होते हैं। जहाँ हिकारत, अभाव और छोटे-छोटे स्वार्थ उसे मानवीय गरिमा से वंचित कर देते हैं, वहीं 'शरणागत दीनार्त' जैसी कथा जन्म लेती है।”[90]

ये कथाएँ मानवीय यंत्रणा के विविध कारणों को उजागर करती बदलाव एवं समीक्षा हेतु प्रेरित करने को प्रयासरत नजर आती हैं। चन्द्रकांता यह कहानी संग्रह अपनी छूटी वादी को समर्पित करती हैं, साथ ही यह आशा व्यक्त करती हैं कि वे वापस अपने पाँवों के निशानों को चुनने व सहलाने कश्मीर जा सकेंगी।

इस कथा संग्रह की पहली कहानी 'शरणागत दीनार्त' लसपंडित के जीवन की त्रासद कथा पर आधारित है। कश्मीर से निर्वासित लसपंडित का जीवन हिकारतों एवं टेंटों में दुर्दशा का साक्षी रहा। आतंक की शिकार अपनी दुखियारी बेटी व उसकी नवजात शिशु को वे कैंप में भीड़ के डर से आश्रय भी नहीं दे पाते। एक सम्मानित व्यक्ति स्वयं को जलील महसूस करता हुआ किस प्रकार टूट जाता है, कथा में चित्रित है। 'पायथन' कहानी कश्मीर से विस्थापित होकर बाहरी राज्यों में गए लोगों के जीवन की व्यथा-कथा कहती है। प्रेमनाथ महाराज प्रत्येक रात खुद को अजगर की पकड़ में जकड़ा हुआ होने का सपना देख भयभीत होते हैं। अपनी बेटी बिट्टी की सुरक्षा के लिए परेशान प्रेमनाथ दिल्ली में दर-दर की ठोकरें खाता है परंतु आश्वस्ति का सुख नसीब नहीं होता।

'विदा गीत' कहानी प्रमोदिनी नामक लड़की के जुझारूपन और जिजीविषा की गाथा है जो अपना पूरा परिवार स्वयं अर्जन कर संभालती है। उसकी निडरता व श्रम उसकी बहनों एवं मां के कवच जैसे प्रतीत होते हैं। कथा के अन्त में उसके विवाह के साथ यह दारोमदार उसकी छोटी बहन सरोजिनी निभाती है। 'नदी का काम बहना है' कहानी संन्यासी होने को उत्सुक, सत्यानंद और उसकी प्रेमिका इला की कथा है। इला के संवादों के माध्यम से शादी जैसे बंधनों की सार्थकता

---

[90] चन्द्रकांता, काली बर्फ, फ्लैप से

पर प्रश्न उठाया है और वह इसे चौतरफा बुना एक मकड़जाल भर मानती है। एक स्वतंत्र विचार वाली औरत को समाज किस आश्चर्य व उपेक्षा के साथ देखता है, कौल की बातें इसकी गवाह हैं। कहानी में कश्मीर की प्राकृतिक सुषमा को इत्मीनान से उकेरा गया है।

'रानी भाभी' कहानी एक दिलेर व मजबूत स्त्री रानी की कहानी है जिसका पति डल झील में नाव पलट जाने पर अपने प्राण गंवा देता है। इस टीस को ताउम्र सहन करती रानी अपने बेअंत दायित्वों के प्रति समर्पित हो जाती है। आजीवन श्रम कर अपनी बेटियों का विवाह करती है और उन्हीं बेटियों को वह आगे भार लगने लगती है। वैसाखी के दिन वह गायब हो जाती है और मुक्ति का अधिकार प्राप्त करने का संदेश देती उसकी साड़ी डल झील पर उतराती पायी जाती है। डल झील के अप्रतिम सौंदर्य एवं वहाँ की हादसा उन्मुख स्थितियों की भी चर्चा है।

'सरहदों के नाम' कहानी, कथा-संग्रह की विशिष्ट कहानी है। ऐसी कहानियां कम ही लिखी गयी हैं। एक नौजवान, जो अपना सर्वस्व पीछे छोड़ कश्मीर में खड़ा सरहद पर तैनाती कर रहा है वह हमारे लिए कितना अमूल्य है?, इस प्रश्न के वजन से कहानी की पात्र नंदी वाकिफ है। वह हर तैनात सैनिक को अपना बेटा, अपना भाई आदि मान चिट्ठियां भेजकर उनके सुख-दुःख साझा करती है। एक बहादुर सैनिक की तुलना नंदी आकाशदीप से करती है। इस स्नेह का कारण उसका अपने फौजी प्राजी से पनपा लगाव भी रहा। 'नवशीन मुबारक' मास्टर महाराज भट्ट को केन्द्र में रखकर लिखी गयी है जो कश्मीर में हो रहे भारी विस्थापन के बीच खुद को बेघर होने की जिल्लतों से बचाने तथा समदजू के आश्वासनों और मनुहारों से उम्मीद कर कश्मीर छोड़कर बाहर नहीं जाते। तमाम परेशानियों के बीच समदजू का प्रेम उन्हें हिम्मत देता है तथा पहली बर्फ के गिरने पर वे 'नवशीन मुबारक' कहते दावतों का लुत्फ उठाना नहीं भूलते। महाराज भावुक हो समदजू के गले लग जाते हैं।

'वनवास' कहानी कश्मीर से विस्थापित जानकी देवी की कथा है। विदेश जाकर भी वे कश्मीर को नहीं भूल पातीं तथा वहां के बादलों और जंगलों में कश्मीर को ढूंढ़ती विक्षिप्त सी हो जाती हैं। अपनी संस्कृति से कटकर किसी नयी संस्कृति से वह जुड़ाव नहीं हो पाता और यही उनकी अन्तहीन पीड़ा बन जाती है। 'काली बर्फ' कहानी कश्मीर में फैले आतंक के खौफ, हत्याओं से अटे और अविश्वास से भरे माहौल पर आधारित है। कहानी की मुख्य पात्र परमी अपने विश्वास पर ही काली बर्फ अर्थात् अनहोनी का प्रहार देखती है। समर्पण भाव से सेवा करने वाली नर्स परमी आतंकी दरिंदो की हिंसा का शिकार हो जाती है। हुकुम की तामील कर रहे, जन्नत की हूरों के सपने देखते आतंकी परमी, शमा और अज़हर तीनों को मौत जैसी जिंदगी जीने पर अमादा करते हैं।

'आवाज' कहानी में एक अपहृत लड़की की जिजीविषा की गाथा कही गयी है। जिसे आतंकी मुताअ करके गर्भ से कर देते हैं। उसकी बच्ची को आतंकी मरण की अवस्था जैसा जीवन देते हैं। मौका पाकर वह उन आतंकियों को खाने में जहर दे अपनी बच्ची के साथ वहाँ से भाग जाती है। इस प्रकार चन्द्रकांता की ये कहानियां यंत्रणा, जुझारूपन और उम्मीदों की अन्तहीन गाथा जैसी हैं।

आशीष कौल कश्मीर पर लेखन कर रहे एक महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। उनकी कथा है- 'वे अड़तालीस घंटे'। कथा की शुरुआत 15 जनवरी, 1990 से होती है जिसके बाद स्थितियाँ बेकाबू हो जाती हैं। कश्मीर में सांप्रदायिकता अपने परवान चढ़ती है। 19 जनवरी को कश्मीरी हिंदुओं को वादी खाली करने की धमकी और अल्टीमेटम जारी कर दिये जाते हैं। वो अड़तालीस घंटे किस कदर एक युग का रूप लेते हैं, कहानी में वह भय, निराशा और अव्यवस्था चित्रित है। साथ ही माजिद के प्रेम को उन घंटों में एक आश्वस्त करने वाली उम्मीद के तौर पर देखा जा सकता है।

सुधाकर अदीब ने कश्मीर पर उपन्यास के साथ ही कहानियाँ भी लिखी हैं। 'जवाब-तलब' उनकी एक महत्त्वपूर्ण कहानी है जो कश्मीर में पत्थरबाजों एवं आर्मी के जवानों के बीच के तनाव को व्यक्त करती है। यह कथा इंडियन फोर्सेज

के एक वाकये पर आधारित है जहां जवान एक पत्थरबाजों से भरे इलाके से सुरक्षित निकलने हेतु अपनी गाड़ी के बोनेट पर एक पत्थरबाज कश्मीरी को बैठाकर रास्ता पार करते हैं। इस घटना से हंगामा मच जाता है और इसे अमानवीय करार देते हुए मानवाधिकार संगठन एक आपत्तिजनक मामला मान लेता है। कहानी में उस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए आर्म्ड फोर्सेज के इस कदम पर विचार किया गया है।

'वापसी' कहानी संजना कौल द्वारा लिखी गयी है। इस कहानी की पात्र सुजाता के माध्यम से कश्मीर जैसी ऋषि भूमि को लहूलूहान करने वाली जंग को चित्रित किया गया है। सैनिकों की अनगिनत चढ़ रही बलि लेखिका की चिंता का विषय है। हर दिन एक नयी रक्तरंजित कहानी कश्मीरियों के जीवन का हिस्सा हो जाती है और यह संवेदनहीनता की स्थिति उन्हें मौन बना रही है। अखबार भयावह खबरों से भरे पड़े रहते हैं। कथा का अंत इस माहौल से तंग सुजाता की वापसी के साथ होता है। 'कहूँ किससे मैं' कहानी लेखिका की दूसरी प्रभावी कहानी है जिसमें कश्मीर के विषाक्त और दमघोंटू वातावरण को केन्द्र में रखकर लेखन किया गया है। सुखद दिनों की स्मृतियां अंतर्मन में सिर उठाने लगीं। कहानी में वृक्षों के लगातार हो रहे कटाव के प्रति चिंता व्यक्त की गयी है तथा खातून आपा के माध्यम से कश्मीर के मिलनसार एवं हर घर की नब्जों के जुड़ाव को रेखांकित किया गया है। 'आजादी' के निरर्थक नारों ने कश्मीर को जहन्नुम बना दिया। इसमें कश्मीरी पंडितों के निर्वासन की पीड़ा व्यक्त की गयी है।

'मैंने झील को सांस लेते देखा है' कहानी किरण बख्शी द्वारा रचित है। मातृभूमि के प्रति लगाव इस कथा के मूल में है। लेखिका करीब बारह वर्षों बाद कश्मीर जाती है तथा श्रीनगर से अपने कभी न छूट पाये मोह को महसूस करती है। उसकी यादें इसी शहर से जुड़ी हुई हैं। इन स्मृतियों के बिना वह कितनी खोखली हो जाती है, इसका अहसास मात्र भी उसे डरा देता है। वहाँ जाकर वह अनुभव करती है कि कश्मीर अब एक ऐसी खबर बन चुका है जो सुबह नाश्ते की प्लेटों से लेकर रात के डिनर तक चर्चा का विषय बना हुआ है। विघटन की शनैः-

शनैः चल रही प्रक्रिया को लेखिका उजागर करती हैं। आर्मी की जबरदस्त तैनाती में वह शहर लेखिका को एक आर्मी कैंप जैसा प्रतीत होता है और रिश्तों की टूटन हर जगह है। वह झील को सिकुड़ता हुआ पाती है पर जब उसे इस काली रात की सुबह प्रेरणा देती है तो लगता है कि झील जिन्दा है और सांस ले रही है।

2.3 <u>कश्मीर केन्द्रित अनूदित हिन्दी कहानियाँ</u>

कश्मीर को लेकर हिन्दी साहित्य में जितने उपन्यास लिखे गए हैं उसकी तुलना में कहानियां काफी कम हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि कश्मीर क्षेत्र के रचनाकार अधिकांशत: अपनी कहानियाँ कश्मीरी, उर्दू, डोगरी, पंजाबी तथा गोजरी भाषा में लिखते रहे हैं। कश्मीर केन्द्रित संवेदनाओं का उभार अपेक्षाकृत इन भाषाओं की कहानियों में अधिक है। यह अवश्य है कि इन कहानियों का विविध विद्वानों द्वारा हिंदी में अनुवाद किया गया है। अतः भाव और चेतना के उचित प्रतिनिधित्व हेतु इन भाषाओं से अनूदित हिंदी कहानियों को भी शोध का विषय बनाया जा रहा है। इन कहानियों का संक्षिप्त विवरण व समीक्षा प्रस्तुत है।

2.3.1 <u>कश्मीरी भाषा से अनूदित हिन्दी कहानियाँ</u>

कश्मीरी भाषा की कई महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं जिनका अनुवाद हिन्दी में किया जा चुका है। कुछ अनूदित कहानियाँ हैं, 'उल्टे पाँव वापसी', 'धत तेरे की', 'गृह देवता', 'हृदय में बैठा कसाई', 'अस्पताल से घर तक' आदि। 'उल्टे पाँव वापसी' कहानी अमीन कामिल द्वारा लिखी गयी है। इस कहानी का हिन्दी में अनुवाद डॉ. शिब्बन कृष्ण रैना ने किया है। यह कहानी कश्मीरी समाज में व्याप्त अंधविश्वास को बखूबी व्यक्त करती है। राजो नामक पात्र के सहारे से समाज में स्त्री की दयनीय स्थिति को रेखांकित किया गया है। एक स्त्री की महत्ता उसके जन्म देने की क्षमता तक ही होती है, बांझ कहकर उन्हें महत्त्वहीन समझ लिया जाता है। राजो के मन में मां न बन पाने की टीस बनी रहती है।

'धत तेरे की' कश्मीरी कहानी रूपकृष्ण भट्ट द्वारा रचित है। इस कहानी का हिन्दी अनुवाद प्यारे हताश कृत है। यह कथा द्वदनाग मुहल्ले के मजीद कौल के जीवन की गतिविधियों पर केन्द्रित है जो आजादी और अलग आसमान के सूरज की रोशनी में होने को लालायित है। जहन्नुम और जन्नत के बीच फँसा मजीद सकते में आ जाता है और जीवन को खोने का भय उसे हर क्षण सताता रहता है। कलाश्नकोव और फतवे के दृश्य कहानी में देखे जा सकते हैं।

कमल हाक द्वारा रचित कहानी 'गृहदेवता' महत्त्वपूर्ण कश्मीरी कहानी है जिसका हिन्दी में अनुवाद प्रख्यात साहित्यकार क्षमा कौल द्वारा किया गया है। कहानी में लोककथाओं एवं मिथकों का बेजोड़ प्रयोग है। गृहदेवता की परिकल्पना को रोमांचक तौर पर प्रदर्शित किया गया है। कश्मीर छोड़कर बेघर हुए लोगों के गृहदेवता उन्हें दर-दर ढूंढते फिरते रहे तथा 'गाड बत' के लिए तरस गए। पौष कृष्णपक्ष के किसी भी शनिवार को कश्मीरी लोगों द्वारा शाम में घर की अटारी पर गृहदेवता को मछली और भात का भोग लगाया जाता है जिसे कश्मीरी 'गाड़ बत' कहते हैं।

'हृदय में बैठा कसाई' कहानी अख्तर महीउद्दीन द्वारा कश्मीरी भाषा में लिखी गयी है। इस कहानी का कश्मीरी से हिन्दी में अनुवाद नामी कवि अग्निशेखर द्वारा किया गया है। यह कथा गड़रियों एवं उनके द्वारा पाले जा रहे भेड़ों पर लिखी गयी है जहाँ गड़रियों की पीढ़ी दर पीढ़ी में कसाईपन की भावना को सम्बोधित किया गया है। कहानी का शीर्षक गडरियों के हृदय में बैठे उस कसाई को चिन्हित करता है। रक्षक और भक्षक दोनों का मिश्रित अंश गड़रिये के होने की गवाही और जमानत है।

कश्मीरी में मखनलाल पंडित रचित तथा श्याम बिहारी द्वारा हिंदी में अनुवादित 'अस्पताल से घर तक' कहानी कश्मीर में व्याप्त भय एवं आतंक की दास्तान कहती है। कहानी का मुख्य पात्र प्रेमनाथ अस्पताल के पास लग रहे साम्प्रदायिक नारों को सुनकर आश्चर्यचकित रह जाता है और उसे विश्वास नहीं होता कि समय इतनी तेजी से अपना चेहरा बदल रहा है। बिगड़ते हालातों से

मजबूर होकर प्रेमनाथ जम्मू चला जाता है, इस उम्मीद के साथ कि शायद आगे स्थितियां बेहतर हो जाए।

2.3.2 डोगरी से अनूदित हिन्दी कहानियाँ

डोगरी भाषा की कहानियों में विशेषकर जम्मू क्षेत्र को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। डोगरी में कहानियों की एक सशक्त परंपरा है और उस क्षेत्र विशेष के अध्ययन हेतु डोगरी से अनूदित कहानियों की समीक्षा आवश्यक है। डोगरी से अनूदित हिन्दी कहानियाँ हैं- 'बलकाक और नोनो' , 'दस्तकें', 'धूप-तेजाब', 'अर्थ-वर्क', 'मिनार, दरिया और राजनाथ', 'उत्तर क्या है', 'फिरौती' आदि। इन कहानियों में जम्मू क्षेत्र के समाज, विस्थापित लोगों के जीवन, प्रशासन आदि पर चर्चा की गयी है।

'बलकार और नोनो' कहानी वेद राही द्वारा डोगरी भाषा में लिखी गयी है। इसका हिन्दी में अनुवाद अरुणा शर्मा ने किया है। यह कहानी लद्दाख में कार्यरत रहे बलकाक तथा वहाँ से सप्रेम भेंट के रूप में लाए गए उनके तिब्बती नस्ल के कुत्ते नोनो के प्रति अगाध प्रेम पर आधारित है। लेह के सर्द माहौल का आदी नोनो कश्मीर से विस्थापित हो जब जम्मू की तपती गर्मी में पहुंचता है तो बेसुध हो जाता है। बलकाक के लगातार प्रयासों के बाद भी नोनो प्राण त्याग देता है।

मनोज रचित तथा डॉ. राज जम्वाल द्वारा डोगरी से हिन्दी में अनुवादित कहानी 'दस्तक' दक्षिणी कश्मीर में रह रहे मास्टर नजीर पर आधारित है। मास्टर का मन अन्तर्द्वंद्वों से घिरा अनिश्चय की भेंट चढ़ जाता है। सदियों से हर युद्ध का केन्द्र रही शोषित स्त्री के प्रति चिंतन व्यक्त है। मिलिट्री और मिलिटेंसी के जुल्मों का ज्वलंत दस्तावेज है यह कहानी। इनटेरोगेटिंग के नाम पर आम जनता को पीड़ित करना आर्मी के आए दिनों का काम हो गया। मास्टर नजीर इस उत्पीड़न का शिकार होते हैं।

'धूप तेजाब' कहानी डोगरी में शिवदेव सुशील द्वारा लिखी गई है तथा इसका हिंदी में अनुवाद शेख मुहम्मद कल्याण द्वारा किया गया है। कहानी में जम्मू की भीषण गर्मी में विस्थापितों की हो रही दुर्दशा को चित्रित किया गया है। कश्मीर की ठंड के आदी लोगों के लिए जम्मू के विपरीत मौसम में जी पाना एक चुनौती की तरह था। वहां के खाने कश्मीरी प्रकृति के भोजन से बिल्कुल अलग थे। ऐसे में मखनलाल की जिंदगी में जम्मू और वहां की धूप तेजाब जैसी हो जाती है और वह अपना पूरा दिन इससे निजात पाने की कोशिशों के बीच गुजारता है।

'अर्थ-वर्क' कहानी चमन अरोरा द्वारा लिखित है तथा इसका हिन्दी अनुवाद किया गया है। कहानी की मूल समस्या प्रशासन में फैला भ्रष्टाचार है। जहाँ प्रत्येक कार्य के कई गुने पैसे वसूल किए जाते हैं तथा राशि सुयोग्य तक नहीं पहुंचती। ऐसी ही एक फाइल अर्थ वर्क आइटम की होती है जिसके रेट्स कई गुना वसूल किए जाते हैं। कहानी का पात्र बशीर ऐसे एस्टीमेट्स को देखकर खीझता है और क्षोभ व्यक्त करता है।

बन्धु शर्मा कृत 'मिनार, दरिया और राजनाथ' कहानी मूलतः डोगरी में लिखी गयी है और इसका हिन्दी अनुवाद भी हुआ है। यह कहानी राजनाथ और उनके मित्र हाजी मीर अली की मनुष्यता पर आधारित कथा है। जहाँ एक मित्र दूसरे का हाथ थामे अंधेरी सुरंग में फँसा हुआ भी उसे ढांढस बंधा रहा है बजाय इसके कि दूसरी ओर कोई रोशनी नहीं दिखती। डरे-सहमे तो बेशक हैं पर पूरे दिलो जान से दूसरे के सुख-दुःख में शरीक होते हैं।

'उत्तर क्या है?' कहानी डोगरी में नरसिंह देव जम्वाल द्वारा लिखी गयी है। डोगरी से अनूदित यह कहानी बहादुर हवलदार ध्यानचन्द के सहारे उसके इर्द-गिर्द फैले आतंक के माहौल को चित्रित करती है। भारतीय सेना की क्षमता पर अगाध विश्वास रखने वाला यह सिपाही सरकार के फिजूल नियंत्रण की निंदा करता है। ध्यानचंद के मित्र मुहीउद्दीन के बड़े बेटे को आतंकी बनाने के लिए उत्सुक मिलिटेंट उसके मना करने पर गोलियों से छलनी कर देते हैं तथा छोटे

बेटे बशीर को भी मिलिटेंट बनाने का फरमान भेजते हैं। इसके साथ इकबाल जैसे युवाओं का भी जिक्र है जो खुद आगे बढ़कर मिलिटेंसी में शामिल होते हैं।

'फिरौती' कहानी डोगरी भाषा में प्रवीण केसर द्वारा रचित तथा हिन्दी में अनूदित है। इस कहानी में पुलिस तथा अर्धसैनिक बलों के शोषण पर प्रकाश डाला गया है और साथ ही मिलिटेंटों द्वारा कश्मीरी लोगों के अपहरण, गुप्त सूचनाओं के विषय में पूछताछ तथा फिरौती के लिए भारी-भरकम धनराशि की मांग किए जाने की घटना चित्रित है।

2.3.3 <u>उर्दू, पंजाबी एवं गोजरी से अनूदित हिन्दी कहानियां</u>

'मुखबिर' कहानी उर्दू भाषा में दीपक बुदकी द्वारा लिखी गयी हैं तथा इसका उर्दू से हिंदी में अनुवाद चंद्रमोहन भट्ट ने किया है। यह कथा कश्मीर में फैली उस हिंसा की गवाही है जब भारत सरकार के गुप्तचर होने के शक मात्र से मिलिटेंट आम कश्मीरी की हत्या कर देते थे। प्रत्येक व्यक्ति इस भय से आक्रान्त था कि कहीं हिटलिस्ट में उसका नाम तो नहीं। हब्बाकदल में रहने वाला कश्मीरी पंडित नीलकंठ इस यातना का शिकार हो जाता है। कश्मीरियत का क्षत-विक्षत होना वह स्वयं देखता है। फौजी गाड़ियों और गश्ती दलों के बीच जीवन तनाव के घेरे में चित्रित है। कबाइली आक्रमण की भी घटनाएं चर्चा का विषय बनायी गयी हैं। भारतीय सेना के मुखबिर होने के शक में नीलकंठ और उनकी पत्नी अरनदती को आतंकी गोलियों से भून देते हैं।

'आदमी नहीं' एम. के. वकार रचित गोजरी कहानी है जिसका उर्दू से अनुवाद दिलीप कुमार कौल ने किया है। कथा काका जुमा पर आधारित है जो सदियों से खानाबदोशी से जुड़ी परंपरा का हिस्सा है। हर नये मौसम के साथ उसका एक नया ठिकाना होता। डोगरी और गोजरी के मीठे संवादों से कहानी अटी पड़ी है। आतंक के दौर में बिगड़े हालातों का मंजर इस कहानी में भी चित्रित है। दरवाजे पर पड़ने वाली एक ठक-ठक उस काका जुमा के दिल को दहला देती है जो निडर पीरपंचाल और जोजिला को कुछ ही छलांगों में लांघ जाता है। आतंक का दुष्प्रभाव उसके बच्चों एवं मवेशियों पर भी पड़ता है।

'किशनगोपी का लौट आना', 'तफतीश', 'तमाशबीन' एवं 'युद्ध' पंजाबी में लिखी कश्मीर केन्द्रित कहानियाँ हैं जिनका हिन्दी में अनुवाद हुआ है। 'किशनगोपी का लौट आना' कहानी के लेखक कंवल कश्मीरी हैं तथा इसका हिंदी में अनुवाद अग्निशेखर ने किया है। यह कहानी एक प्रवासी पंक्षी किशनगोपी को लेकर लिखी गयी है जिसके आगमन से कश्मीर में बसंत की शुरुआत मानी जाती है तथा इसी पक्षी के सहारे परिंदों के जन्म से लेकर कश्मीरी किसानों से उनकी दोस्ती के किस्से सुनाए गए हैं। आतंक और क्लाशनिकोव के बढ़ते प्रभाव तथा दयनीय घटनाओं का भी जिक्र है।

खालिद हुसैन द्वारा पंजाबी भाषा में रचित तथा अग्निशेखर द्वारा अनुवादित कहानी 'तफतीश' महत्त्वपूर्ण अनूदित कहानी है। इसमें मेजर शर्मा तथा माई, जो कि एक वयोवृद्ध कश्मीरी स्त्री है के मध्य संवादों के माध्यम से कश्मीर में आर्मी तथा मिलिटेंसी के बीच व्याप्त तनाव को चित्रित किया गया है और माई इस तनाव को खत्म करने की ओर इशारा करती है। उसका मानना है कि लड़ाई तबाही का नाम है और इस नफरत के चलते न जाने कितनी मांओ की गोद उजड़ जाती है।

'तमाशबीन' कहानी मूलत: हरभजन सिंह सागर द्वारा लिखी गयी है तथा इसका पंजाबी से अनुवाद कुलविन्दर मीत ने किया है। यह कहानी कश्मीर की भयावह परिस्थितियों में भी संवेदनहीन और तमाशा देखने तक सीमित लोगों के मुंह पर तमाचा है।

बलजीत सिंह रैना रचित तथा श्याम बिहारी द्वारा हिंदी में अनुवाद की गयी कहानी 'युद्ध' जम्मू-कश्मीर में बन रहे युद्ध के माहौल पर केन्द्रित है। कश्मीर को एक विश्वव्यापी रोचक मुद्दे के रूप में देखते हुए कश्मीरी इस क्षेत्र के भविष्य की चिंता करते हैं।

स्पष्ट है कि अनूदित हिंदी कहानियों में भी कश्मीर से जुड़ी समस्याओं का बेहतरीन अंकन किया गया है तथा मौलिक कहानियों के समान ये भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं।

तृतीय अध्याय

कश्मीर और कश्मीरियत

कश्मीर और कश्मीरियत का गहन जुड़ाव है। कश्मीर के विषय में चिंतन करते हुए उसकी रूह अर्थात् कश्मीरियत का मनन अति आवश्यक प्रतीत होता है। किसी भी क्षेत्र विशेष के लोक संस्कृति का अधिकांश भाग वहाँ के साहित्य में उपस्थित रहता है। कश्मीर सांस्कृतिक वैभिन्नता में तनिक हटकर है। यहाँ की तहजीब, भाईचारे की भावना एवं धार्मिक एकता की छटाएं इसे विशिष्ट बनाती हैं। कश्मीर की भूमि सूफी-संतों और ऋषि-मुनियों के ध्यान की भूमि रही है। इस पर नाग, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, पंडित, सिक्ख, जैन सभी धर्म के लोगों का साझा जीवन विकसित होता आया है। यहाँ का वातावरण आध्यात्मिक भावना से पूरित रहा है।

अहिंसा, करुणा, मित्रता का भाव तथा एक दूसरे का सहयोग उनकी प्रवृत्तियाँ रही हैं। पंडित एवं मुस्लिमों के धार्मिक विश्वास एंव मान्यताएँ लगभग समान हैं। इनकी मातृभाषा कश्मीरी है। पंडितों एंव मुसलमानों के उपनाम भी एक जैसे ही हैं। वे पंथों से भले अलग हों पर आत्मा से एक हैं। यही आत्मीय एकता 'कश्मीरियत' की प्रेरक है। कश्मीर कैंद्रित हिन्दी उपन्यासों एवं कहानियां में कश्मीरियत की मनोरम झलकें एवं उसकी अवधारणा का साझा रंग द्रष्टव्य है ।

3.1 कश्मीरियत : अवधारणा एवं सांस्कृतिक संदर्भ

कश्मीरियत अपने वास्तविक रूप में एक सांस्कृतिक-सामाजिक स्थिति है। इस भावना का बीज कश्मीर में प्रवाहित होने वाली सांस्कृतिक धारणा के कारण अंकुरित हुआ। यह लगभग छह सौ वर्ष पहले अस्तित्व में आने वाली भावधारा है। एक क्रूर, हिंसक और प्रतिशोध से विषाक्त वातावरण में अहिंसा, धैर्य और प्रेम की अमृतधारा बहाने वाली कवयित्री लल्लेश्वरी एवं उनके शिष्य नुंद ऋषि की जन सुलभ भाषा में वास्तविक अध्यात्म की ओर लोगों को ले जाने वाली यह धारा आगे चलकर 'कश्मीरियत' के रूप में जानी जाने लगी। प्रेम, सद्भावना, स्वपीड़ा

की स्वीकृति, परपीड़ा की मनाही, दर्शन, अध्यात्म और ज्ञान इसके अभिन्न तत्त्व थे।

"कश्मीर घाटी अपनी प्राकृतिक सुंदरता की तरह ही अपनी सांस्कृतिक विरासत के लिए प्रसिद्ध है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में भी कश्मीर को स्वर्ग की उपमा दी गई है। कश्मीर इतिहास, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, भाषा, दर्शन आदि की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध रहा है। सदियों से इसने विभिन्न सभ्यताओं और धर्मों को अपनाया तथा आत्मसात किया। हिन्दू-मुस्लिम और बौद्ध दर्शन के सम्मिलन से यहाँ मानवतावाद, धर्मनिरपेक्षता तथा सहिष्णुता की एक मिली-जुली संस्कृति का विकास हुआ।"[91] यह मिली-जुली संस्कृति ही 'कश्मीरियत' की आधारभूमि है। इस भाव के बिना कश्मीर की आत्मा को समझ पाना संभव नहीं। एक ऐसा रंग जिसमें मिलकर बाकी सभी रंग अपनी पहचान या विशिष्टता खो एकाकार हो जाते हैं, वह है कश्मीरियत।

कश्मीर में अभिनवगुप्त के अवसान के बाद स्थितियाँ विकट हो गयीं। ग्यारहवीं शताब्दी का वह कश्मीर, सामाजिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक रूप से भी भटकाव का शिकार हुआ। समाज में व्याप्त अराजक माहौल बाहरी आक्रमणकारियों के जमाव में सहायक रहा। धर्म और दर्शन रूढ़ियों में जकड़े हुए थे। ऐसे समय में लल्लेश्वरी का आगमन जनसाधारण के जीवन को अनेक झंझावातों से बचाव हेतु महत्त्वपूर्ण हुआ। दार्शनिक स्पष्टता और बेबाक आलोचनापूर्ण काव्यात्मक व्यंजना से लल्लेश्वरी ने समाज को प्रभावित किया तथा उनकी शिक्षाओं को जन साधारण के जीवन में उतारने का काम उनके प्रिय शिष्य नुंद ऋषि ने किया। इस प्रकार कश्मीर में यह एक प्रबल सांस्कृतिक उठान का समय था जो निरंकुश राजनीति और सांप्रदायिक रूढ़ियों पर कठोर प्रहार करने वाला रहा। लल्लेश्वरी के वाक् और नुंद ऋषि के श्रुक् ग्रामीण जनजीवन का

[91] सं. भारतेश कुमार मिश्र, संस्कृति पत्रिका (कश्मीर विशेषांक), अंक 19, पृष्ठ-5

अभिन्न अंग बन गए और इसके फलस्वरूप एक नवीन लोक-संस्कृति का विकास हुआ।

3.2 <u>समकालीन संदर्भ में कश्मीरियत-</u>

'कश्मीरियत' की यह भावना समय के साथ विकृत हुयी। प्रेम और सौहार्द की वह ऋषि वाटिका आतंकवाद रूपी क्रूर राक्षस द्वारा धीरे-धीरे नष्ट कर दी गयी। कश्मीर की एक बड़ी आबादी को धर्मांतरण करना पड़ा तथा कश्मीरियत को अपने सांस्कृतिक आधार से काट कर एक राजनीतिक नारा भर बनाकर रख दिया गया। अग्निशेखर लिखते हैं- "भारतीय राजनीति के क्षुद्र स्वार्थों और अदूरदर्शी रवैये के चलते घाटी में ऐसी कट्टरतावादी शक्तियाँ सक्रिय होती गईं जिन्होंने योजनाबद्ध तरीके से कश्मीर की पारम्परिक पहचान को मिटा डालने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इसके साथ-साथ संसार को भरमाते रहने की नीयत से चारों तरफ 'कश्मीरियत' की डुगडुगी भी बजाई। सबकी अपनी-अपनी 'कश्मीरियत', सबका अपना-अपना एजेंडा। यहाँ तक कि जिन लोगों ने हाल के वर्षों में मज़हबी उन्मत्तता और पाकिस्तान-परस्ती के जुनून में सारे सेक्युलर खोल उतार फेंके, वे लोग भी जरूरत पड़ने पर रणनीति के चलते इसकी दुहाई देने लगते हैं।"[92] विद्वानों का एक हिस्सा 'कश्मीरियत' की अवधारणा को पूर्णतः ठुकरा दिए जाने का समर्थन करता है। इस वर्ग का मानना है कि 'कश्मीरियत' सिर्फ अपने स्वार्थों को भुनाने का राजनीतिक नारा भर बनकर रह गयी है। उग्रवाद 'कश्मीरियत' को कट्टरता के रंग में रंग रहा है।

'कश्मीरियत' की अपनी विशिष्ट पहचान अब धूमिल होने लगी है। उसकी सांस्कृतिक विरासतें अब नष्ट हो रही हैं और पुनः हम उसी विषाक्त वातावरण में लौट आये हैं जिसमें हिंसा अपने चरम पर है। आतंकवाद ने मानवीय मूल्यों पर प्रहार किया है। सदियों का भाईचारा भूल कश्मीरी एक-दूसरे को शक की निगाहों से देखने लगे। साझी संस्कृति ढह गयी और उसके ढहाव को रोकने के प्रयास भी न के बराबर हुए। कश्मीरियत के इस अहसास के क्षीण होने के दर्द को

---

[92] अग्निशेखर, कश्मीर : विद्रूप की सी स्थिति, प्रगतिशील वसुधा, अंक 74

चन्द्रकान्ता अपने उपन्यास 'कथा सतीसर' में व्यक्त करती हैं, "कहीं लिहाज मुरौव्वत, कहीं बेपनाह मुहब्बत कहीं सिर्फ एक-दूसरे की अहमियत का अहसास। सदियों से एक-दूसरे की आदत बने, एक-दूसरे पर निर्भर ज़मीनदार बलजू हो या काश्तकार सुलजू। अपने घरों में मस्त। एक के घर रोगनज़ोश पके, दूसरे के घर साग-भात। दूसरे की हाँडी में झाँकने की नीयत नहीं थी। दोनों अपनी जगह ठीक थे। गुलाम कुम्हार घड़े, कसोरे, रामगोड, सोन्यपतुल न बनाए तो वकील मुंसिफ श्यामलाल भट्ट 'शिवरात्रि' का पर्व कैसे मनाएगा? सुला दर्जी, मगा लुहार, निका नाई, राहती कुंजड़न, घर साफ करने वाला गुलवातुल इसलिए अहम थे क्योंकि उनके बिना कृष्णजू दफ्तरबन्द, अजोध्यानाथ वकील और दीनानाथ मास्टरजी का काम चल नहीं सकता। इस सच को मानकर चलने की आदत पड़ गई थी। लेकिन अब? अचानक एक-दूसरे की नजरों में शक और वहम।"[93]

पृथकतावाद का यह जहर 'कश्मीरियत' की भावना को क्षीण कर रहा है। समकालीन संदर्भ में यह अत्यन्त आवश्यक है कश्मीरियत की गंगा-जमुनी संस्कृति को बचाने के कठोर कदम उठाए जाएँ। यह पहल ही कश्मीर के जन जीवन में सुख और सौहार्द की छटाएँ वापस ला सकती है। 'कश्मीरियत' को राजनीतिक उठा-पटकों से अलग कर उसे उसके मूल स्वरूप में समझे और स्वीकृत किए जाने की ज़रूरत है। ऋषि परम्परा को लौटा लाना समय की माँग हैं। आतंकवाद का खात्मा किए बगैर यह शायद संभव नहीं। यह रक्त रंगा रणक्षेत्र साम्प्रदायिक सौहार्द का उत्सुक है।

सर्वधर्म समभाव और मानवीयता का पाठ पढाने वाली ललद्यद को आज फिर से मनों में उतारने की जरूरत है। जिन ऋषि, सूफी सन्तों और शैव भक्तों ने सर्वधर्म समन्वित संस्कृति को 'कश्मीरियत' का नाम दिया, उन्हीं के एक पुरोधा, असद परे ने कहा था "कय छि कुनी, वथ ब्योन-ब्योन... मकसद तो एक

---

[93] चंद्रकान्ता, कथा सतीसर, पृष्ठ- 63

ही है, रास्ते भले अलग- अलग हों। एकम् सत्य विप्राः बहुधा वदन्ति। इन्होंने भी आत्ममंथन और आत्मसाक्षात्कार पर जोर दिया था।"[94]

कश्मीर की वादी और 'कश्मीरियत' को बचाने के लिए महजूर अमीन कामिल, अर्जनदेव मजबूर और दीनानाथ नादिम जैसे न जाने कितने शायरों ने धार्मिक उन्माद से बचकर रहने की हमेशा प्रेरणा दी। इतनी कोशिशों के बाद 'कश्मीरियत' का इस प्रकार ध्वस्त होना दुःख का विषय है। वह कश्मीरियत जो कभी गर्व का विषय हुआ करती थी, आज दूर-दूर तक उसकी आस नहीं। पाक प्रेरित आतंकवाद, स्वार्थपरक नीतियों तथा विश्व स्तर पर व्याप्त जिहाद ने हालात संभलने न दिए। तुष्टिकरण की नीतियों ने स्थिति और भी बिगाड़ दी। कश्मीरी पंडितों का विस्थापन 'कश्मीरियत' के ताबूत में आखिरी कील ठोंकने जैसा था।

हिन्दी कथाकारों ने यह व्यथा अपने साहित्य में दर्ज की। एक सांझी विरासतों वाला समाज अपने विकृत रूप में कैसा दिखता होगा? यह संजना कौल के उपन्यास 'पाषाण युग' में आतंकवादी शाहिद की मौत पर हलवा बँटने वाले दृश्य से समझा जा सकता है। लेखिका लिखती हैं, "अंजलि ने खिड़की खोली, तो धूप का एक खुशनुमा टुकड़ा उसके चेहरे को नमी से छू गया। उसने पूरी खिड़की खोलकर नदी किनारे दूर-दूर तक देखा। शायद पिछली शाम को दरिया के आर-पार पाकिस्तान और आजाद कश्मीर के झंडे ताने गये थे। पाकिस्तान जिंदाबाद के गगनभेदी नारे सुनने के बाद भी उनमें से किसी ने खिड़की नहीं खोली थी।"[95]

'कश्मीरियत' विश्वासों और उम्मीदों का एक ऐसा बेजोड़ भाव था जो हर कश्मीरी को सदियों से आश्वस्त करता चला आया था। छोटी-छोटी घटनाओं को मजहबी रंग देकर हिन्दू-मुसलमानों के बीच कभी न भरने वाली दरारें डालने की कोशिश की गयी। रघुनाथ मंदिर को नुकसान एवं हजरतबल दरगाह में रखी पवित्र कुरान की प्रतियों को नष्ट किए जाने की घटनाएँ ऐसी ही थीं। ऋषि परम्परा को

---

[94] चंद्रकांता, ऋषि परम्परा का दुःखान्त, साहित्य भारती, जुलाई-सितम्बर, 2018

[95] संजना कौल, पाषाण युग, पृ. 31

ध्वस्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ी गयी। इन विषम परिस्थितियों में भी कश्मीर में कहीं न कहीं एक आस अभी भी बची हुई है जो 'कश्मीरियत' की राख में भी एक चिंगारी की उम्मीद से जिंदा है। 'कथा सतीसर' की ये पंक्तियाँ इसी जीवंत भाव को व्यक्त करती हैं, "चु जाल दीवी बलस चांग्य, बु द्दुस मशीदि बलुक बांग्या म्य रोट काबा, चे बुतखान, चु म्योन बोय, बु चोन बोय।"[96] इसका अर्थ यह है कि तुम देवी के मंदिर में दीप जलाओ, मैं मस्जिद में अजान दूंगा। मैं काबा की शरण जाऊंगा, तुम बुतखाने की। तुम मेरे भाई हो और मैं तुम्हारा।

3.3 <u>साझी विरासत का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य : ललद्यद व नुन्द ऋषि</u>

'कश्मीरियत' की साझी विरासत के पनपने का महत्त्वपूर्ण श्रेय कश्मीरी कवयित्री ललेश्वरी एवं उनके शिष्य नुन्द ऋषि को जाता है। ललेश्वरी के विषय में विद्वानों में मत वैभिन्न है। उनके जन्म-समय एवं जन्म-स्थान दोनों को लेकर अलग-अलग मत हैं। सर्वसम्मति से ललद्यद का जन्म चौदहवीं शताब्दी में माना गया है। लल का जन्म कश्मीर के एक मध्यवर्गीय पंडित परिवार में हुआ था तथा इनके जीवन को लेकर कश्मीर में आज भी कई लोककथाएँ कही जाती हैं। "उसके बचपन के बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त हो सकी है, लेकिन कहा जाता है कि उसकी प्रारम्भिक शिक्षा सिद्ध श्रीकंठ के हाथों हुई। उसी ने उसे शैवदर्शन का ज्ञान कराया। उसका विवाह छुटपन में पाम्पुर गाँव के एक ब्राह्मण युवक के साथ हुआ। सास बुरा बर्ताव किया करती थी, और पति भी संसार के प्रति उसके दृढ़ वैराग्य को समझ न सका, इसलिए दोनों की नहीं बनी। वह फिर अपने गुरु सिद्ध श्रीकंठ के पास गई, जिसने उसके भक्ति-पूर्ण हृदय को परखा। लली को आत्मज्ञान हुआ और वह अपने आराध्य के चरणों में उसकी भावना में लीन होकर, उन्हें खोजने निकली।"[97]

ललद्यद घरेलू हिंसा, उपेक्षा और चरित्र लांछन का शिकार रहीं। इन घटनाओं ने उनमें एक विरक्ति का भाव पैदा कर दिया तथा वो संन्यासिनी बन

---

[96] चन्द्रकांता कथा सतीसर, पृ. 408

[97] मोहनकृष्ण दर, मनोरम कश्मीर, पृ- 20

गईं। लल विवस्त्र होकर आनंद का अनुभव करते हुए सड़को पर फिरने लगीं। कुछ समय बाद उनकी तोंद, जिसे कश्मीरी भाषा में लल कहा जाता है वह लटक गयी। तोंद के लटक जाने से उनकी गुप्त इन्द्रियाँ ढँक गयी और प्रेमनाथ बज़ाज मानते हैं इसी कारण उनका नाम ललद्यद पड़ गया। ललद्यद की कविताएँ (वाख) कश्मीरी जनजीवन के बेहद नजदीक थीं तथा मानवता की भूमि पर रहकर लल ने एक अनूठे आराध्य की संकल्पना की। वह एकता का प्रचार करने वाली समाज-सुधारक थीं। उन्होनें कश्मीरियों को संदेश दिया कि शिव कण-कण में व्याप्त है इसलिए हिंदू-मुस्लिम का भेद न करो। उनकी कविता का माधुर्य और आकर्षण सिर्फ इस बात से समझा जा सकता है कि आज भी ललद्यद के 'वाख' कश्मीरियों की जुबान पर हैं और धैर्य की पराकाष्ठा का उदाहरण देते हुए ललद्यद को उसका प्रतीक माना जाता है।

ललद्यद ने अपने वाखों के माध्यम से कश्मीरी समाज में व्याप्त कुरीतियों और विसंगतियों पर कठोर प्रहार किया। उन्होंने मूर्तिपूजा और पाखण्डों की बेबाक आलोचना की। उनका दर्शन भीतरी ज्ञान और मुक्ति का संदेश देने वाला था। मुस्लिम समुदाय उन्हें लल 'आरिफा' सम्बोधित करने लगा। 'दर्दपुर' उपन्यास की सुधा मीनाक्षी को ललद्यद के विषय में बताती हुई कहती है, "ललद्यद ने योग-पद्धति से, ईश्वरीय-मार्ग से आध्यात्मिक क्रान्ति की और शीर्षस्थ हुई। ज्ञान और अनुभव की अद्वितीय सामंजस्यकर्ता। शिव को अपने से अभिन्न करती हुई- 'शंकर लोभुम तने सॉती।' यानी शिव स्वयं मेरी देह के साथ सटे हुए मिले हुए मुझे... कितना कहूँ... एक-एक शब्द अमृत है... एक-एक शब्द शक्ति सम्पन्न है... सूत्र है... शक्तिवर्धक है उनके वाखों का।"[98]

कश्मीर में ललद्यद द्वारा अंकुरित की गयी इस परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य नुन्द ऋषि द्वारा किया गया। शेख नुरुद्दीन के जन्म के विषय में भी अनेक मत हैं। उनके जन्म के साथ अनेक चमत्कार व दैवी आशीर्वाद के किस्से जोड़े जाते हैं। इन किस्सों में एक सर्वाधिक प्रसिद्ध किस्सा उनके ललद्यद से

---

[98] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृष्ठ- 107

मिलन का है। "कहा जाता है कि नुरुद्दीन, जिनका घर का नाम माँ-बाप ने नुन्द (सुन्दर और योग्य) रखा था, जन्म के तीन दिनों बाद भी अपनी मां का दूध नहीं पी रहे थे, तब ललद्यद आईं और बालक को गोद में उठाकर कहा- तुम जन्म लेने से नहीं शर्माए तो संसार के सुख आनंद लेने से क्यों शर्माते हो? उसके बाद बालक नुन्द ने ललद्यद के स्तनों से दूध की पहली बूँदों के साथ संसार के पहले सुख का आनंद लिया। नवजात शिशु जब तृप्त हुआ तो ललद्यद ने उसकी माँ को यह कहते हुए लौटाया- "लो! मेरे उत्तराधिकारी का पालन-पोषण करो।"[99]

इसी लोककथा के साथ नुन्द ऋषि को ललद्यद की परम्परा के साथ जोड़ा जाता है। दोनों ने ही सरल कश्मीरी भाषा में काव्यरचना कर कश्मीरी जनजीवन को प्रभावित किया। नुन्द ऋषि निश्चय ही कश्मीर के लोकप्रिय व प्रभावी संत हैं। उनके द्वारा पोषित ऋषि परम्परा 'कश्मीरियत' में प्राण फूंकती रही। उनका जीवन संयमी था। ललद्यद की भाँति वे भी लोगों को अपनी आत्मा टटोलने की प्रेरणा देते रहे।

शेख नुरुद्दीन के समय में ही साम्प्रदायिकता हावी होने लगी थी। नुन्द ऋषि ने इस विषबेल को उखाड़ फेंकने के अथक प्रयास किए तथा समाज में भाईचारे का समर्थन किया। उनकी ख्याति चारों ओर फैल गई तथा उनके अनुयायियों द्वारा जगह-जगह आश्रम खोले गए। हिन्दू-मुस्लिम के बीच बढ़ रही दरार को पाटने का कार्य किया तथा समाज को संतुलन की दिशा दी। नुन्द ऋषि इस्लाम के प्रचारक अवश्य थे परन्तु उन्होंने अपने शिष्यों को कभी भी दूसरे धर्मों से घृणा करने की शिक्षा नहीं दी। बराबरी और सहिष्णुता का भाव रखने की प्रेरणा उनके श्लोकों में निहित है। यही कारण था कि वे दोनों ही समुदायों में प्रिय हुए। 'व्यथ-व्यथा' उपन्यास में हरिकृष्ण कौल नुन्द ऋषि की इन शिक्षाओं पर प्रकाश डालते हैं। "कुरान पढ़ना और पढ़कर उसे ठीक-ठाक समझना क्रिकेट जैसा कोई लड़कपन का खेल नहीं है। शेख उल आलम नुन्द ऋषि ने कुरान पढ़ने का दावा करने वालों से बिल्कुल सही सवाल किया है -

---

[99] अशोक कुमार पांडेय, कश्मीरनामा, पृष्ठ- 89

क्वरान परान कोनो मूदख?

क्वरान परान गोय नो सूर?

क्वरान परान जिंदु क्येथू रुदुख?

क्वरान परान दोंद मनसूर !![100]

अर्थात् मुसलमान वह है जो अपने और पराये में जरा भी फर्क न करे। उसके लिए सब अपने हों। कोई गैर हो ही नहीं।

इस प्रकार कश्मीर में सहअस्तित्व की एक ऐसी धारा प्रवाहित हुई जिसने कश्मीरी जनमानस को जीवंतता प्रदान की। जहाँ एक-दूसरे का हाथ पकड़कर जीने को सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया। एक ऐसी संस्कृति जिसने विभिन्न धर्म के लोगों को पारस्परिक सम्मान करते हुए जीवन जीने की कला सिखायी। एक-दूसरे के उत्सवों, सुखों-दुःखों में शामिल होना तथा दूसरे को आघात न पहुँचाना जिस संस्कृति के मूल में था, वही लोकसंस्कृति आगे चलकर 'कश्मीरियत' के रूप में जानी जाने लगी। यद्यपि आज वह 'कश्मीरियत' की भावना दम तोड़ रही है फिर भी उसकी आस कश्मीरी समाज को मजबूती देती है।

लहूलुहान कश्मीर में प्रेम व सौहार्द अभी भी बाकी है। 'शिगाफ' उपन्यास में अमिता के ब्लॉग पर श्रीनगर से ओमार खालिद द्वारा की गयी प्रतिक्रिया आश्वस्त करने के भाव से पूरित है। "अमिता, मुझे यकीन है कि हमारा कल्चर, जिन्हें हम कश्मीरियत कहते हैं, वह इतनी कमजोर नहीं कि कट्टरपन्थी इसे कुचल दें। तुम लोग लौटोगे तो वक्त के बीतने के साथ इसकी चमक लौट आएगी और यह फिर अमन और भाईचारे से गुलज़ार होगा।"[101]

3.4 <u>लोकजीवन एवं लोकसाहित्य</u>

---

[100] प्रो. हरिकृष्ण कौल, व्यथ-व्यथा, पृ- 50

[101] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृष्ठ- 57

साहित्य और जीवन का घनिष्ठ संबंध है। समाज में रहकर ही एक व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है। मनुष्य समाज से ही अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ प्राप्त करता है और समृद्ध होता है। किसी भी साहित्य की उत्तम स्थिति उस समाज की श्रेष्ठता की सूचक है। समाज में उपस्थित साहित्यकार अपने चारों ओर फैले आयामों से जुड़कर साहित्य का सृजन करता है। अपने समय के उतार-चढ़ावों को साहित्यकार अपने चिंतन का विषय बनाता है और पाठक वर्ग को उन विषयों पर सोचने हेतु विवश करता है।

लोकजीवन एवं लोक संस्कृति का ज्ञान किसी भी देश या स्थान के वास्तविक रंग-रूप को जानने में काफी मददगार है। लोक संस्कृति का जन्म लोकजीवन से होता है। इसी लोकजीवन का साहित्य लोकसाहित्य कहलाता है। "यही वह साहित्य है जो संबंधित स्थान के लोगों, के रहन-सहन तथा उन विशेष क्षणों का विश्लेषण करता है, जो इनके अंग बनकर रह जाते हैं और इन्हीं क्षणों को लोक आस्था कहते हैं। लोक आस्था का लोक मान्यताओं से गहरा संबंध होता है। ये लोक मान्यताएँ संबंधित स्थान की भौगोलिक सीमाओं तक ही सीमित रहती हैं।"[102]

लोकजीवन में परिवार एक ऐसी इकाई है जिसकी अपनी अलग महत्ता है। परिवार ही व्यक्ति को आकार देता है तथा हर परिस्थिति में मजबूती से खड़ा रहता है। पारिवारिक सम्बन्धों में परस्पर लगाव, सहयोग, समन्वय, सम्मान एवं उम्मीदों का भाव अन्तर्निहित होता है। परिवार समाज का आरंभिक चरण है। एक मनुष्य परिवार से होकर सामाजिकता की ओर अग्रसर होता है। कश्मीर केन्द्रित हिंदी कथा साहित्य में पारिवारिक सम्बन्धों की इस श्रृंखला को बारीकी से बुना गया है।

सफल व असफल दोनों ही प्रकार के दाम्पत्य सम्बंधों को चित्रित किया गया है। 'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास के प्रमुख पात्र राजनाथ के जीवन में एक के बाद एक तीन स्त्रियों का आगमन होता है। यद्यपि इन तीनों ही सम्बन्धों

---

[102] अवतार कृष्ण राजदान, कश्मीरी लोक संस्कृति के कुछ रंग, सं० भारतेश कुमार मिश्र, संस्कृति पत्रिका (कश्मीर विशेषांक), अंक- 19

की परिणति त्रासद होती है परन्तु दाम्पत्य की सफलता पूर्ण रूप से देखी जा सकती है। विशेषकर राजनाथ एवं उनकी पहली पत्नी सुभद्रा को लेकर, जहाँ छूत की बीमारी के बाद भी राजनाथ अपनी पत्नी की सेवा करते हैं। दूसरी तरफ सुभद्रा राजनाथ के सुखद भविष्य हेतु उनसे दूसरे विवाह का अनुरोध करती है। सुभद्रा कहती है, "मुझे माँ के घर भेज दो, अब मैं अच्छी नहीं होऊँगी। तुम्हें मेरी सौगंध मुझे भेज दो। हमारा इतना ही सम्बन्ध था समझ लो। मैं तुम्हें और कष्ट नहीं देना चाहती, मुझे भेज दो।"[103] इसी प्रकार के सफल दाम्पत्य संबंध 'कथा सतीसर' के लल्ली-केशवनाथ, माधव-सोना, शिवनाथ-कमला आदि चरित्रों के माध्यम से दर्शाये गये हैं।

पत्नी-पति के वर्तमान में बदल रहे सम्बंधों पर भी टिप्पणी है जहाँ स्त्री-पुरुष समानता के तारों ने स्त्री-सशक्तीकरण के साथ उसके कुछ अनमोल गुणों यथा त्याग, सेवा, समर्पण पर जंग लगा दी है। तलाक जैसे कदम आम हो रहे हैं। सफल दाम्पत्य सम्बन्धों के साथ असफल रिश्तों की भी एक लम्बी कड़ी है। अफजल-विजया, जयदेदी-गुपाल कान्दुर (कथा-सतीसर) आदि अनेकों उदाहरण हैं।

संयुक्त परिवारों के टूटने की पीड़ा प्रमुखता से चित्रित है। पिछले कुछ दशकों में जितनी तीव्रता से पाश्चात्य शिक्षा, उपभोक्तावाद, औद्योगीकरण एवं विदेशी संस्कृति जीवन में प्रवेश कर गयी, वह विघटन का एक प्रमुख कारण रही। समय, जो संयुक्त परिवार का आधार था वह अब न के बराबर है। नई पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ी को समझ नहीं पा रही है। उनकी बातें वर्तमान पीढ़ी को दकियानूसी और निरर्थक लगती हैं। सहजीवन अब स्वजीवन की ओर अग्रसर होने लगा है। वृद्ध माँ-बाप बोझ लगने लगे हैं और रिश्तों से स्वतंत्र होने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इस समस्या को 'कथा सतीसर' उपन्यास में बेहद मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है। अयोध्यानाथ का परिवार इसका उदाहरण प्रस्तुत करता है। पहली दो पीढ़ियों में सम्मान व प्रेम का भाव था परंतु व्यक्तिवादिता की शिकार तीसरी पीढ़ी अपने स्वार्थों को केन्द्र में रखते हुए जड़ों से कटकर बिखरने लगी।

---

[103] चन्द्रकांता, यहाँ वितस्ता बहती है, पृ॰ 36-37

लेखिका लिखती हैं, "ताता घर का बिखरना देख रहे हैं, स्वीकार नहीं पाते। वक्त और हालात के बदलाव के बीच भी रचे-बसे संयुक्त परिवार का मोह छूटता नहीं। ताता को बबलाल याद आते हैं, स्कूल मास्टर पिता वेदों-पुराणों के जानकार पिता लक्ष्मण जू रैना जो आशीर्वाद की तरह अथर्ववेद की वे पंक्तियाँ सुझाया करते, जिनका सार था कि कभी जुदा मत होओ, इकट्ठे फलो-फूलो, समृद्ध होते, एक तार से जुड़े रहो। एक-दूसरे से मधुर वचन बोलते, विचार-विवेक से, मन से, एक महत् उद्देश्य के लिए साथ रहो।"[104]

लोकजीवन की अपनी एक अलग सोंधी सी महक होती है। लोग आत्मीय स्तर पर एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। किसी एक की खुशी पूरे समाज की खुशी होती है। लोकजीवन का यह धूपछाँही रंग कश्मीर केन्द्रित उपन्यासों एवं कहानियों में देखा जा सकता है। 'काली बर्फ' कहानी की परमी धर्म-जाति से परे सभी को अपना परिवार मानती है। 'नाकाबन्दी' उपन्यास की सोफिया के लिए पूरा कश्मीर उसका अपना है। सबके दुःख-दर्द उसके अपने हैं। 'पाषाण युग' की अंजलि अपने लोगों को आतंक के घेरे से निकालकर बाहर लाना चाहती है। 'मैनें झील को साँस लेते देखा है' कहानी की किरण बख्शी पूरे विस्थापित कश्मीरी समाज को वापस बसाने की प्रेरणा से ओतप्रोत है। पारस्परिक सहयोग और सहअस्तित्व की भावना से जुड़े कश्मीरी समाज से कश्मीरी पंडितों का निष्कासन निश्चय ही एक कलंकित कर देने वाली घटना थी।

3.5 <u>लोकगीत एंव लोककथाएँ</u>

कश्मीरी लोकसाहित्य अत्यन्त समृद्ध है। "लोक साहित्य वह साहित्य है जिसकी रचना लोक याने जन द्वारा अनायास ही होती रही है। इस साहित्य-सृजन की प्रक्रिया तभी से आरम्भ हुई होगी जब से मानव को वाणी का वरदान मिला होगा। मानव मन को जब विभिन्न अनुभूतियों से गुजरना पड़ा होगा तो वह अपने स्वभाव के कारण इन अनुभूतियों को अपने मन में ही कैद करके न रख सका होगा। मन के भावों को व्यक्त करने की ललक जब चरम पर पहुंच गई होगी

---

[104] चंद्रकांता, कथा सतीसर, पृष्ठ- 360

तभी लोक-मानस से लोक साहित्य की धारा फूट पड़ी होगी।"[105] इसके अन्तर्गत संतवाणी, भक्तिगीत, अध्यात्म से जुड़े गीत, प्रणय आधारित गीत, विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत, श्रम करते हुए गाये जाने वाले गीत, व्यंगाधारित लडीशाह, खेलते समय गाये जाने वाले गीत एवं लोककथाएँ सम्मिलित की जाती हैं। 'सुफीयाना कलाम' भी लोकसाहित्य के अन्तर्गत ही है। कश्मीर में शायद ही कोई ऐसा अवसर हो जिस पर आधारित गीत न बनाये गये हों। इनके गीत जीवतंता और आकर्षण से भरे होते हैं। कश्मीर केन्द्रित उपन्यास एवं कहानियाँ इन लोकगीतों व कथाओं से यथोचित सिंचित हैं।

कश्मीरी समाज व लोक को अगर कोई साहित्यकार बेहद ही बारीकी से समझ पाया है तो वो हैं चन्द्रकांता। चन्द्रकांता के उपन्यास व कहानियाँ कश्मीरी लोकजीवन को बेहतर रूप से समझ पाने में सहायक हैं। उनके उपन्यासों में हर अवसर पर लोकगीतों, लोककथाओं, मिथकों एंव दंत कथाओं का प्रशंसनीय वर्णन है। सुबहान मल्लाह के गले से फूटा सूफियाना कलाम शमा बांध देता है। **"**डेकि छुस डेक टिक, कनन कनवअली SSS माशू SS क अज यियि सअलिए SS।"[106] अर्थात् मेरी माशूका के माथे पर टिकुली है, कालों में बालियाँ हैं। मेरी माशूक आज मेरे घर आमंत्रित है।

कश्मीरी लोकगीत 'कश्मीरियत' की एक खुशबू दे जाते हैं। कश्मीर निखरकर सामने आता है और अपनी विशिष्टता का मोहक अहसास करा जाता है। गीतों की अपनी स्निग्ध परंपरा कश्मीरी लोकसंस्कृति को समृद्ध बनाती है। उपन्यासों की अपेक्षा कहानियों में इन लोकगीतों का प्रयोग कम है।

कश्मीर से जुड़ी अनेक लोककथाएँ हैं। ये लोककथाएँ कश्मीरी संस्कृति की भव्यता को प्रदर्शित करती हैं। इनमें वास्तविकता के साथ कल्पना का एक रोमांचक मिश्रण है। अतीत की गौरवशाली स्मृतियों एवं महान व्यक्ति प्रायः इन लोककथाओं का केन्द्र होते हैं। कश्मीर की प्रमुख लोककथाएँ- 'हँसने वाली मछली', 'चालीस

---

[105] पृथ्वीनाथ 'मधुप', 'कश्मीर की लोक कथाएँ पूर्ववचन, पृ०7

[106] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृष्ठ- 61

भाइयों की पहाड़ी', 'बुद्धिमान काजी', 'माँ वैष्णोदेवी', 'नागराय और हीमाल', 'सैयद और सईद', 'ललद्यद' आदि पर आधारित हैं। इन लोककथाओं की कहानी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सहज प्रवाहित होती है। इन कथाओं का प्रचलन शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों ही वर्गों में है। इन कथाओं को बच्चे, वृद्ध, युवक एवं औरतें बड़े ही मनोरंजन के साथ सुनते हैं। प्रभाव डालने की क्षमता के बल पर इन कथाओं ने सीमाएँ लांघी हैं।

"लोक-कथाओं को अत्यन्त लोकप्रिय बनाने में, इनमें वर्णित तिलिस्म, चमत्कार तथा मनुष्य की तरह बोलने वाले पशु-पक्षियों आदि का भी हाथ है। इनमें विद्यमान मनोरंजन तत्वों के कारण भी ये अत्यंत लोकप्रिय रही हैं, बल्कि यह कहना अनुचित न होगा कि कई लोक-कथाएँ मनोरंजन के लिए ही कही गई हैं। 'कश्मीर की लोक कथाएँ' सदा लोक पक्षधर तथा साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी आवाज दर्ज कराती रही हैं।"[107]

'कथा सतीसर' उपन्यास में कश्मीर के उद्भव के विषय में बताते हुए चन्द्रकांता पौराणिक लोककथा का सहारा लेती हैं। वह लिखती हैं, "इस कथा के अनुसार कश्मीर में एक बड़ी झील थी जिसे सतीसर कहते थे। इस झील में जलोद्भव नामक राक्षस रहता था। उसे पानी के अंदर कोई मार नहीं सकता था। वह राक्षस आततायी था। वह अपनी राक्षसी प्रवृत्तियों के कारण किनारों पर रहते नाग, निषाद्, दर्द, भुट, भिक्ष आदि आदिवासी जातियों का संहार करने लगा तो भीषण यंत्रणाओं से त्रस्त राजा नील ने जो उन दिनों नागों का राजा था, पिता कश्यप ऋषि के पास कनखल जाकर अरदास की, कि उन्हें जलोद्भव राक्षस से मुक्ति दिलाई जाए। तब कश्यप ऋषि ने राजा नील को त्रिदेव को प्रसन्न करने का सुझाव दिया। नील की कठिन तपस्या से त्रिदेव प्रसन्न हुए। उन्होंने पहाड़ काटकर झील का पानी निकाल दिया और जलोद्भव राक्षस मारा गया।"[108]

107 पृथ्वीनाथ 'मधुप', कश्मीर की लोक कथाएँ, फ्लैप से

108 चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृष्ठ- 13

'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास में राजनाथ कौल पुराणों में प्रचलित अनेक कथाएँ यथा- कुम्भ पर्व, समुद्र मंथन, पुण्य-पाप आदि अपनी पत्नी गौरी को सुनाते हैं। 'दर्दपुर' उपन्यास में सुधा अपने मित्रों को ललद्यद के जीवन की यातनाओं से परिचित कराती है।

कश्मीर में मनाए जाने वाले त्यौहारों एवं देवताओं से जुड़ी अनेक लोककथाएँ हैं। लोककथाओं के अन्तर्गत प्रेम-कथाओं का प्रचलन अधिक है। 'हीमाल-नागराय', 'यूसूफ शाह-हब्वा', 'बेबुर-लोलर', लैला-मजनू' आदि की प्रेमकथाएँ इश्क की नयी ताबीर गढ़ती हैं। जहाँ एक ओर 'हीमाल-नागराय ने प्रेम के लिए पुनर्जन्म लिया वहीं यूसुफ के वियोग में हब्वा ने अपने प्राण त्याग दिए। बसोक में एक ही स्थान पर दोनों की कब्र बनी। सामाजिक प्रतिरोधों का शिकार बेबुर लोलो-लोलो पुकारता रहा।

लोककथाओं के साथ-साथ कश्मीर में मिथक एवं दंतकथाओं की भी परंपरा है। 'शिगाफ़' उपन्यास में मनीषा कुलश्रेष्ठ 'जुलेखा का मिथक' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत जुलेखा और मिलिटेंट सगीर की गाँव में चर्चित कथा सुनाती हैं और उसकी तुलना पूर्व-प्रचलित सूफी संसार की रहस्यमयी प्रेम दीवानी जुलेखा से करती हैं। वह लिखती हैं, "वो जुलेखा और थी, यह जुलेखा और। यह अपनी किस्मत खुद लिखने की गुस्ताखी नहीं कर सकी। प्योरली एंड मैडली इन लव।"[109]

3.6 रीतियाँ एवं परंपराएँ

किसी भी समाज का अनिवार्य एवं अभिन्न अंग वहाँ पर मानी जाने वाली परंपराएँ और मनाए जाने वाले त्यौहार हैं। प्रत्येक समाज के अपने विशिष्ट रीति-रिवाज होते हैं। इन रिवाजों का पालन पीढ़ी-दर-पीढ़ी किया जाता है। कश्मीर केन्द्रित कथा साहित्य में इन धार्मिक एवं सामाजिक संस्कारों को चित्रित किया गया है। यद्यपि कश्मीरी हिन्दुओं के ही रीति-रिवाजों को प्रमुखता से चित्रित

[109] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृष्ठ- 200

किया गया है लेकिन कुछ ऐसे संस्कार हैं जो दोनों ही समुदायों में समान रूप से प्रचलित हैं। यथा- दही-रस्म, जन्म, मुंडन, विवाह की रीतियाँ आदि।

कश्मीर में स्त्रियों के गर्भवती होने के अवसर पर 'दही-रस्म' का विधान है। 'कथा सतीसर' उपन्यास में लेखिका लल्ली की इस रस्म का जीवंत वर्णन करती हैं। लल्ली की दही-रस्म के अवसर पर मंगला मौसी अपनी दही रस्म की चर्चा करती हुई कहती हैं, "मेरी दही-रस्म जब हुई गाशाजी के वक्त, घर में वाजवान लगा। काकन्य देदी ने बिरादरी तो बिरादरी, बड़ियार से खरयार तक मुहल्लेवालों को दो-दो बार सददा देकर न्यौता। कोई दो सौ जनियों ने वो 'साल' खाया कि महीनों याद करके चटखारे लेते रहे।"[110] इसी उपन्यास में पारिवारिक पुरोहित आनन्द बायू चौबीस संस्कारों का महत्त्व बताते हैं और गर्भाधान से लेकर 'अपवर्गे त्रिविधिक' तक मुहूर्तों की कड़ी जोड़ देते हैं। लल्ली की पुत्री कात्यायनी के नामकरण एवं अन्नप्राशन संस्कार भी वर्णित हैं। उपन्यास के पात्र माधव की मृत्यु पर मृत्यु समय होने वाले एवं उसके बाद के विधानों की भी जानकारी दी गयी है। "माधव की मुक्ति के प्रयास हुए। हरिद्वार में अस्थि-विसर्जन, श्राद्ध, तर्पण, मटन में श्राद्ध, दान-दक्षिणाएँ ब्राह्मणों को, गरीब-गुरबा को भोज, अन्नदान, वस्त्रदान, दीपदान और हजार हा शान्ति पाठ। आनन्द बायू ने स्वयं आकर भगवद्गीता के अट्ठारह अध्यायों का पाठ पहली मासवार तक पूरा किया। तेरही के दिन घर-परिवारवालों को 'खक' में बुला-बिठाकर गीता-ज्ञान दिया।"[111]

कश्मीरी पंडित एवं मुस्लिम दोनों ही समाज में 'विवाह रम्म' परम्परागत तरीके से निभाई जाती है। विवाह से जुड़ी परंपराओं की शुरुआत कई दिनों पूर्व ही हो जाती है। विवाह तय होने से लेकर वधू के घर आने तक रीतियों की एक लंबी श्रृंखला उल्लास के साथ मनायी जाती है। हल्दी, मेहंदी आदि रीतियों के अपने नियम हैं, जो पूरी तन्मयता से निभाये जाते हैं। 'काली बर्फ' कहानी संग्रह की 'विदा गीत' कहानी में प्रमोदिनी के विवाह के समय हुई रस्मों को चित्रित किया

---

[110] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृष्ठ- 30

[111] वही, पृष्ठ- 46

गया है। लेखिका लिखती हैं, "मंगलोति में बहनें दुलहन को हल्दी-मलाई मल रही है। बरतन माँजने से खुरदुरे हाथों में ढेर सी मेहंदी रचाती है सखियाँ। सात सुहागिनों के घर से अक्षत के चावल और पानी आया है प्रमोदिनी के स्नान के लिए। केले व आम के पत्तों के बीच प्रमोदिनी का मंडप सजा। प्रमोदिनी की माँ के घर से विदा वेला आ गई।"[112]

पद्मा सचदेव कश्मीर को बेहद पास से देखने वाली रचनाकार हैं। जम्मू एवं कश्मीर की संस्कृति, वहाँ के रीति-रिवाज की समृद्ध परंपरा उनके सृजन का हिस्सा रही है। 'जम्मू जो कभी शहर था' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में जम्मू की रीतियों, परंपराएँ एवं डोगरी गीतों को आकर्षक रूप से व्यक्त किया गया है। उपन्यास की मुख्य पात्र सुग्गी की प्रिय सहेली है पंडिताइन सोमा। सोमा की ससुराल जा रही डोली के मुहूर्तानुसार लाने का वर्णन है। वहाँ की एक रीति है कि जब बहू को ससुराल भेजा जाता है तो देहरी पर ले जाने से पहले मुहूर्त के अनुसार पास के एक घर पर रोका जाता है। यह घर 'लोआ वाला घर' कहलाता है। लेखिका लिखती हैं, "सोमा, यह सोचकर पुलकित हो उठी कि जब उसकी डोली ससुराल के द्वार पर रुकी तो बहू के लिए गायी जाने वाली गालियों में यह गाली गायी जा रही थी-

'लोको गड्ढा खंदी ऐ भठोरे

छप्पड़ पीन्दी दाल।"[113]

(लोगो, बहू गड्डा भरकर रोटियाँ खाती है और तलैया जितनी ढाल) कश्मीर रीतियों एवं परंपराओं से जुड़ा अपनी जिजीविषा एवं जीवंतता की अद्भुत गाथा कहता है।

3.7 <u>कश्मीरी पर्व एंव त्यौहार-</u>

जम्मू, कश्मीर एवं लेह-लद्दाख एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ अलग-अलग धर्मों के लोग हैं और उनसे जुड़े ढेर सारे पर्व। हिंदुओं के अपने प्रिय पर्व हैं,

---

[112] चन्द्रकांता, काली बर्फ कहानी संग्रह, विदा गीत कहानी, पृष्ठ- 56

[113] पद्मा सचदेव, जम्मू को कभी शहर था, पृष्ठ- 37

मुस्लिम वर्ग के अपने खास त्यौहार। पंजाबियों के अपने और बौद्ध धर्म मानने वालों के भी कुछ विशेष पर्व हैं। इन पर्वों की विभिन्नता कश्मीर को अनेक रंगों से रंग मोहक बनाती है। कश्मीर में मनाए जाने वाले प्रमुख त्यौहारों में शिवरात्रि, सरस्वती पूजा, दीपावली, खिचड़ी, अमावस्या, ईद, नवरोज, मुहर्रम, रामनवमी, सिंधु दर्शन, लद्दाख महोत्सव, साका दावा महोत्सव, लासर, हेमिस महोत्सव, बैसाखी, ट्यूलिप महोत्सव, शिकारा महोत्सव, गुरेज महोत्सव, लोहड़ी आदि हैं। कश्मीर केन्द्रित कथा साहित्य में तीनों ही क्षेत्रों के इन विशिष्ट त्यौहारों का ब्यौरा यथोचित वर्णित है।

कश्मीर में मुस्लिम समुदाय का प्रमुख पर्व है, 'ईद'। ईद का त्यौहार बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है। रमजान में हर मुसलमान रोजा रखता है तथा उसके रोजे की शुरुआत सहरी के साथ होती है और शाम में इफ्तार करने तक वे बीच के समय में कुछ भी नहीं खाते। इस बीच शारीरिक कमजोरी का वे कम अनुभव करते हैं तथा लगन से रोजे रखते हैं। 'शिगाफ' उपन्यास का पात्र जमान अमिता के चाय न पीने पर कम बातें होने की सोच पर कहता है, "मेरा रोजा इतना कमजोर तो नहीं चाय-सिगरेट से टूट जाए।"[114]

'खिचड़ी अमावस्या' कश्मीर के प्रसिद्ध त्यौहारों में शुमार है। यह पौष मास में मनाया जाता है तथा लोक विश्वास पर आधारित इस पर्व में यक्षराज के लिए खिचड़ी पका उन्हें भोग लगाया जाता है। 'कथा सतीसर' उपन्यास में इस पर्व का वर्णन किया गया है, "पौष मास में हिन्दू घरों में खिचडी- अमावस्या मनती। खूब-सा घी का बघार दे चावल मूंग की स्वादिष्ट खिचड़ी बनाई जाती, साथ में माछ, मीट जैसी जिसकी पारम्परिक रीत हो। यक्षराज के लिए खिचड़ी का भोग लगता। सभी पकवानों से सजी पत्तल घर की ऊपरी मंजिल के किसी कोने में, लीप-पोतकर सजा दी जाती।"[115] इसी पर्व के तर्ज पर कश्मीर में 'गाड़बत' एवं 'दिवचखीर' भी

---

[114] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृष्ठ- 229

[115] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृष्ठ- 156

मनाये जाते हैं जिसमें पहले में मछली-भात एवं दूसरे पर्व में मेवे डली खीर कन्या-पूजन कर खिलायी जाती है।

कश्मीर में कई ऐसे त्यौहार भी हैं जो किसी अन्य समुदाय के पर्वों के प्रभाव में शुरू हुए हैं, जैसे- 'सुन्नीपुत्तल' और 'वागुरबाह'। ये दोनों ही त्यौहार 'शिवरात्रि' से प्रभावित होकर क्रमशः मुसलमान शासकों एवं डोगरा के सिक्खों द्वारा मनाये जाने लगे। इन पर्वों के बारे में जानकारी देते हुए ताता कहते हैं, "शिवरात्रि ठेठ हिन्दू पर्व होते हुए भी अपनी वादी में हिन्दू-मुसलमान और सिक्खों का मिला-जुला महापर्व बन गया है। कभी शायद यह मजबूरी रही हो, पर डोगरा राज्य में भी हमने 'सुन्नीपुत्तल' और 'वागुरबाह' की पूजा बरकरार रखी, यह हमारी धार्मिक सहिष्णुता का प्रमाण है, और यही हमारी कश्मीरियत है।"[116] उपन्यास में जन्माष्टमी और रामनवमी उत्सवों का भी उल्लेख है।

लेह लद्दाख में मनाए जाने वाले त्यौहार अक्सर बौद्ध मठों के प्रांगण में ही आयोजित किए जाते हैं। रंग-बिरंगे वस्त्र और भयानक मुखौटे पहनने वाले भिक्षु बुराई पर अच्छाई की जीत का जश्न मनाते हेतु चाम अर्थात् पवित्र मुखौटा नृत्य करते हैं। जम्मू-कश्मीर की अपेक्षा लद्दाखीय पर्वों का वर्णन कम देखने को मिलता है।

3.8 <u>कश्मीरी समाज में व्याप्त रूढ़ियाँ एवं बाह्याडम्बर</u>

प्रत्येक समाज में ऐसे कुछ लोग पाए जाते हैं जो धर्म के मूल उद्देश्य को न समझकर दिखावे एवं कर्मकाण्डों में उलझे रहते हैं। आत्मा की दीप्ति से कोई सरोकार नहीं होता, मात्र अंधविश्वास की डोर से प्रेरित होते हैं। ऐसे लोग समाज के पाखंडी लोगों में गिने जाते हैं। कश्मीर केन्द्रित उपन्यासों एवं कहानियों में ऐसे लोगों की खुलकर आलोचना की गयी है। 'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास के पंडित नंदलाल अनेक कर्मकाण्डों को मानने वाले ऐसे ही पतित चरित्र व्यक्ति हैं। चन्द्रकांता लिखती हैं, "इधर घाट की निचली सीढ़ी पर देखिए, जनेऊधारी

---

116 चंद्रकांता, कथा सतीसर, पृष्ठ- 16

पण्डित नन्दलाल पानी में कमर तक डूबे, सूर्य की ओर टकटकी बाँधे सूर्य वन्दना कर रहे हैं। दोनों हाथों से पानी उछाल पितरों को पानी देते है, जनेऊ धोते गायत्री मंत्र का स्तवन करते हैं, 'ॐ भूर्भुवः स्वः', इतना धीमे कि कुछ ग़ज दूर रात के मैले तन को बहते पानी से छपक-छपक उजला करती नूरी-ज़ेबा न सुन ले।"[117] इसी उपन्यास के पात्र राजनाथ अपनी पत्नी गौरी को दान-दक्षिणा को सुपात्र की झोली में डालने की सलाह देते हैं।

किसी भी समाज में आस्था और विश्वास के साथ ही अंधविश्वास, रूढ़ियों तथा शुभ-अशुभ जैसी भी बातें होती हैं जिन्हें हम तावीज, भभूत, झाड़-फूंक जैसे प्रसंगो में देख पाते हैं। 'कथा सतीसर' में अयोध्यानाथ का परिवार पुनर्जन्म की बातों में विश्वास रखता है। लल्ली शुभ मुहूर्त के चलते बुरे समय में भी ससुराल को जाती है। पंडित आनन्द बायू नवजात को ठाकुरद्वारे में पढ़ा तावीज सुरक्षा के लिए देते हैं। बुरे सपने देखने पर माँ वितस्ता को देख लेने से अपशकुन टल जाता है, यह विश्वास अनेक प्रसंगो में वर्णित है। लल्ली जब बुरा स्वप्न देखती है तो हड़बड़ाकर वितस्ता को जाती है। "खिड़की खोल बहती वितस्ता को नमस्कार किया। सपना सुनाया। अभ्यासवश ही। बुजुर्गों के कहे, "बुरा सपना माँ वितस्ता को ही सुनाना, वह पाप-शाप, डर-वहम धोकर मुक्त करने वाली हैं ना।"[118]

विवेचित कथा साहित्य में शकुन-अपशकुन, नजरों का लग जाना, सौगंध लेने के किस्से, ग्रह-नक्षत्र की बातें, जादू-टोना, भाग्य का आश्रय आदि सामाजिक विश्वास देखें जा सकते हैं जो एक हद तक रूढ़ियों से भी ग्रस्त हैं। समाज में एक गर्भवती को हमेशा बाँझ स्त्री की नजर से दूर रखने की कोशिश की जाती है। उपरोक्त उपन्यास की लल्ली को ऐसे ही बचाया जाता है। भूत-प्रेत, चुड़ैल की मान्य कल्पनाएं समाज का हमेशा से हिस्सा रही हैं। यह भ्रम लोगों को भय से ग्रस्त रखता है। राजनाथ के प्रेम में लीन गौरी को शान्त देख काकनी ऐसे ही अंदेशे लगाती है, "काकी हैरान! माँ समझी कोई टोना-टोटका कर गया नन्नी को।

---

117 चन्द्रकांता, यहाँ वितस्ता बहती है, पृष्ठ- 13

118 चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृष्ठ- 42

कभी पलटकर बोली नहीं आज तक। आज अचानक क्या हो गया? परी जैसी तो लगती थी। काकी बोली कहीं वीर तले का मसान तो नहीं लांघ आयी संध्या बेरी?"[119]

समाज में ये अंधविश्वास अज्ञानता व कम जागरूकता के कारण हैं। इन्हें जाँचने-परखने की प्रवृत्ति कम ही दिखाई पड़ती है। शहरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में इनका अधिक चलन है। जातियों के अपने उलझे तार हैं। नक्षत्रों के अपने अलग जाल है। हालांकि कुछ पात्र इन बाह्याडंबरों से समाज को बाहर निकालने में प्रयासरत दिखते हैं।

3.9 वेशभूषा एंव खानपान का वैशिष्ट्य

किसी क्षेत्र विशेष की वेशभूषा एवं वहाँ का खानपान उसकी सांस्कृतिक समृद्धि का सूचक है। इनमें उस क्षेत्र का भौगोलिक प्रभाव, धार्मिक भाव आदि स्पष्ट होते हैं। वेशभूषा एवं खानपान व्यक्ति और समाज की रुचि, रूझान और सौन्दर्य की विशेषताओं को प्रदर्शित करते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक देश, प्रांत एवं समाज की वेशभूषा व खानपान में आंशिक अंतर अवश्य होता है। कश्मीर एक पर्वतीय प्रदेश है तथा वहां की जलवायु उस क्षेत्र को ठंडे मौसम वाला बनाए रखती है। इसलिए वहाँ गर्म कपड़ों की अधिकता है। साथ ही कांगड़ी का प्रयोग भी सर्दी से बचाव हेतु किया जाता है। 'पाषाण युग' उपन्यास के पात्र बृजमोहन अपने बिस्तर में कांगड़ी अवश्य रखते हैं। कश्मीरी गहनों एवं वेशभूषा का वर्णन करती हुई चन्द्रकांता लिखती हैं, "चफकल, गुलूबन्द, चन्दनहार, अलका होर, कड़, तालरज। दो बेटियों में बाँट देगी। बहू के लिए भी रह जाएगा। 'कल वल्युन' के लिए 'पूच-तरंगा' भी तैयार है। भला हो गुल जोजिवाले का। हाथ में हुनर है। जूज की महनी मलमल और बारीक जाली। उस पर जारी की बढ़िया बेल, जी खुश हो गया शारिका की सास जी का। ताता खुद बनारस से साड़ियाँ ले आए हैं। पाँच-पाँच बनारस की, दो पश्म और रफल की साड़ियाँ हो गई।"[120] इसी उपन्यास में

---

119 चन्द्रकांता, यहाँ वितस्ता बहती है, पृष्ठ- 45

120 चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृष्ठ- 42

पुरुषों की वेशभूषा का भी वर्णन है। जहाँ बलभद्र फिरन के भीतर काँगड़ी, कंटोप-कम्बल से पूरा शरीर ढका, पैरों में भारी बूट पहनकर खास कश्मीरी वेशभूषा में नजर आते हैं।

विवाह के समय पहनी जाने वाली विशेष वेशभूषा का भी चित्रण है। कश्मीर की मुस्लिम स्त्रियों का पहनावा वहां की हिन्दू स्त्रियों से काफी अलग है। हिन्दू स्त्रियाँ अधिकतर साड़ी पहनती हैं और मुस्लिम स्त्रियाँ सलवार कमीज। संजना कौल अपने उपन्यास 'पाषाण युग' में बताती हैं, "लिबास बदल गये थे। साड़ियों की जगह ढीली सलवार कमीज और मलमल की चादरों ने ले रखी थी। बुर्कों की तादाद में खासा इजाफा हो गया था।"[121] कश्मीर में छाए आतंकवाद एवं पाश्चात्य सभ्यता ने कश्मीर के पारम्परिक पहनावे पर काफी प्रभाव डाला है। आभूषणों की अनगिनत किस्में हैं। 'देजहार' एक आवश्यक गहना है जो हर विवाहित कश्मीरी स्त्री सुहाग की निशानी के रूप में कानों में पहनती है।

कश्मीर में शाकाहार एवं मांसाहार दोनों ही प्रकार के भोजन का प्रचलन है। वहाँ मछली-चावल, साग-भात, सोंगर भात, कड़म का साग, नूनचाय, कहवा, रोगनजोश, तबकमाज, वाजवान, शोरबा, कीमा, कवाब, फिरनी आदि प्रमुख व्यंजन हैं। 'वाजवान' वहाँ की एक प्रमुख खाद्य परम्परा है जिसमें एक के बाद एक कई डिशें परोसी जाती हैं। यह डिशें अधिकांशतः मटन से बनी हुई होती हैं। एक बैठक में चार से पाँच लोग एक थाली में वाजवान खाते हैं। स्वीट डिश के अंतर्गत फिरनी तथा अंत में कहवा दिया जाता है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ 'शिगाफ़' उपन्यास में वाजवान की खूबियाँ गिनाती हैं, "सारी वादी सरगोशियों और गीतों में डूबी है। अम्मी को उम्मीद थी, हमारे घर भी उबटन धुलेगा। हर घर में वाजवान की खुश्बू आती है। माँ बड़ी चाची से वाजवान में शामिल माँस के तमाम पकवानों की लिस्ट पूछती है। वाजवान यानी शादी की दावत में माँस से बने कई विभिन्न खाद और मसालों से बने व्यंजन,

---

[121] संजना कौल, पाषाण युग, पृष्ठ- 54

रिस्ता, रोगनजोश, तबकमाज, दनिवाला कोरमा, आब गोश मार्चवोंगानोर कोरमा, और गुश्ताबा! गुस्ताबा पानी फुल स्टॉप।"[122]

'कश्मीरियत' की यह सद्भावी धारा आज भी प्रवाहित हो रही है। कश्मीर में एक आकर्षण है जो इसे बाकी क्षेत्रों से अलग बनाता है। कश्मीरी लोकजीवन, लोकसाहित्य, ललद्यद के 'वाख', नुन्द ऋषि के 'श्रुक्', त्यौहार, धार्मिक मान्यताएं एवं कश्मीर की जीवंतता कश्मीर के महत्त्व को आज भी अक्षुण्ण बनाये हुए है। कश्मीरी संस्कृति की अंतर्धारा इसी भावना से बनी हुयी है। साझी संस्कृति विरासत की आत्मा घायल अवश्य है परंतु इतिहास गवाह है कि हर कठिन परिस्थिति से लड़कर वह और निखरी है। आज का अनिश्चित दौर शायद ऐसा ही कोई बुरा समय है जिससे पूरी मजबूती से लड़कर ही इस भव्य विरासत को बचाया जा सकता है और उदात्तता बनी रह सकती है।

---

[122] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृष्ठ- 104

चतुर्थ अध्याय

निर्वासन की त्रासदी एवं सांस्कृतिक संघर्ष

4.1 विस्थापन : स्वरूप एवं उत्तरदायी कारण-

विस्थापन का सामान्य अर्थ है, अपने मूल स्थान से हटकर कहीं और बस जाना। कभी यह परिस्थितिजन्य होता है तो कभी आवश्यकताओं को देखते हुए। यह समस्या कभी एक समुदाय की स्वीकृति एवं स्वेच्छा से उत्पन्न होती है तो कभी बलात एक समुदाय को विवश किया जाता है कि वह मूल स्थान छोड़ दे। इस विस्थापन में विवशता का अंश होता है न कि बेहतर जीवन की प्राप्ति का उद्देश्य और यह निःसंदेह प्रथम प्रकार के विस्थापन से कहीं अधिक पीड़ादायक है। मनुष्य चिरकाल से अपनी जीविका और भविष्य में प्राप्त होने वाले उत्तम अवसर की चाह में एक स्थान से कटकर दूसरे स्थान पर विस्थापित होता रहा है परंतु इस विस्थापन में वह समुदाय या व्यक्ति पुनः अपने पूर्व स्थान पर लौट जाने का हक कभी नहीं खोता। कश्मीर में अल्पसंख्यकों का जबरन विस्थापन इससे उलट है। एक ऐसा समाज जो अनिश्चितता की स्थिति में अपना मूलस्थान छोड़ता है और आज भी अपनी भूमि को वापस न लौट पाने को अभिशप्त है।

"विस्थापन वृहत् समस्या का सूचक हूँ। यह अपनी जड़ों से कट जाना है, और उस स्थान परिवेश में पहुँच जाना है जहां अपना कहने के लिए, अपनेपन का भान कराने के लिए कुछ भी नहीं है। एक विचित्र स्थिति में अपने अस्तित्व की तलाश करना है और नवप्राप्त समाज में अपने आस्तित्व का बोध कराना है, समर्पित हो जाना है नियति की इच्छा के प्रति और अवलम्ब लेना है अपनी बुद्धि का, अपने श्रम का और अपने व्यवहार का। अर्थात् अपने आप को ही नये पौधे के रूप में विकसित करना है। उस स्थिति का सहज अनुमान लगाया जा सकता है जहां नयापन नहीं परायापन है, जहाँ कुछ पाने की लालसा है और सब-कुछ खोने का दंश है।"[123] कश्मीर का विस्थापित समुदाय आज भी इन्हीं समस्याओं से

---

[123] (डॉ. अचला पाण्डेय, विस्थापन का साहित्यिक विमर्श, पृ०।।

गुजर रहा है। एक अन्तहीन पीड़ा और मानसिक दबाव उनकी जिन्दगी का सच बन चुके हैं। विस्थापितों की समस्याएं अत्यन्त जटिल हैं और इनसे निजात पाने की भरपूर कोशिश करने के बाद भी लगभग वे असफल से ही रहे हैं। केन्द्रीय राजनीति की संकल्पबद्धता का अभाव इस टीस का प्रमुख कारण है।

वर्तमान में विस्थापन की समस्या एक गंभीर प्रश्न के रूप में है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से ही कश्मीर की समस्या ऐसे राजनीतिक नासूर के रूप में उत्पन्न हुई जिससे अभी तक निजात नहीं पाया जा सका है। प्रायः सैन्य दलों से मुठभेड़, सीमा पार से घुसपैठ, विमान हाइजैकिंग, आतंकियों की हत्या के विरोध में लंबे कर्फ्यू आदि ने वहां के जनजीवन को तबाह कर दिया। इनके प्रभाव में कश्मीर के अल्पसंख्यकों को जो नारकीय जीवन जीने को विवश होना पड़ा, उस विवशता के मार्मिक दृश्य हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित हैं। राजनैतिक उठापटक, कमजोर राज्य प्रशासनिक नेतृत्व, स्वार्थवश किए गए अदूरदर्शी फैसले, चुनावों में हुई धांधली और सांप्रदायिकता की कट्टर एवं क्रूर लहर ने कश्मीरी अवाम की जिंदगी को तहस-नहस कर दिया। असुरक्षा की भावना से प्रेरित कश्मीरी पंडित अपनी मातृभूमि को छोड़कर जम्मू, दिल्ली, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में विस्थापित होने को विवश हुए। यह एक साधारण घटना नहीं बल्कि एक मानव निर्मित त्रासदी थी। अपनी प्राणों से प्यारी भूमि से कट जाने का दर्द असह्य है और वह दर्द तब और बढ़ जाता है जब अपनी जन्मभूमि पर वापस जा पाने की कोई उम्मीद भी न हो।

कश्मीर की संत कवयित्री ललद्यद की आध्यात्मिक संदर्भों में कही गयी पंक्तियाँ, "आम्यन टाक्यन पोन्य जन श्रमान/ जुव छुम ब्रमान गुर गछता।" आज कश्मीरी निर्वासितों के जीवन का सच बन गई हैं। उनके उक्त वाख का अर्थ था कि "कच्चे सकोरों के ज्यों पानी रिस रहा हो, मेरा जी कसक रहा है, कब अपने घर चली जाऊँ।" कश्मीर से विस्थापित समुदाय के लिए ये पंक्तियां उनके हाथों की ऐसी लकीर की तरह हैं जिन्हें वे चाहकर भी नहीं मिटा सकते। चन्द्रकांता अपनी रचना 'मेरे भोजपत्र' में इस व्यथा का जिक्र करती हैं, "ललद्यद ने

आध्यात्मिक संदर्भों में बात कही थी। धरती पर उसका कोई घर नहीं था। लेकिन आम जन ईंट-गारे से बने उस घरौंदे की बात करता है, जिसमें उसके स्वप्न, उसकी स्मृतियाँ और उसका भविष्य दफ हो गया है। लेकिन हूक वही है। भीतर कोई फाँस अटकी हुई है, जो इतने वर्षों के विस्थापन भोगने के बाद भी निकल नहीं पा रही है।"[124]

साम्प्रदायिक उन्माद, शिथिल नेतृत्व और राजनीतिक साँठ-गाँठ की भेंट चढ़ा कश्मीर का यह अल्पसंख्यक समुदाय आज भी अपनी पुण्य भूमि पर वापस जाने के हजारों प्रयास कर रहा है। निरन्तर मिली असफलताओं व उपेक्षा के बावजूद इस प्रबुद्ध वर्ग के आशा का दीप अभी भी निराशा व हताशा से भरे उनके जीवन को उद्देश्य की ओर अग्रसर रहने के लिए प्रेरित करता आया है। वर्तमान में यह चिंता प्रतिबद्ध रचनाकारों की संवेदना का एक महत्वपूर्ण विषय बन चुकी है।

4.2 <u>विस्थापन की परिस्थितियाँ : घायल स्मृतियाँ</u>

विस्थापन की ये परिस्थितियाँ मुख्यतः कश्मीर घाटी में उपजे आतंकवाद के कारण उत्पन्न हुईं। 1987 से ही एक विषाक्त वातावरण का अनुभव वहां की आवाम करने लगी थी जिसका चरम उत्कर्ष 1990 में हुए कश्मीरी पंडितों के भारी विस्थापन के रूप में देखा गया। किसी भी घटना के पीछे की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उसकी रूपरेखा तय करती है। तत्कालीन राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव ने कश्मीर में आकार ले रही इस समस्या को एक वृहद रूप दिया। डॉ. राजकिशोर ने 'कश्मीर का भविष्य' पुस्तक श्रृंखला के पांचवें अंक में इन परिस्थितियों पर विस्तृत चर्चा की है। वह राजनीतिक परिस्थितियों को महत्वपूर्ण मानते हैं, "दुनिया की स्थिति में बदलाव और भारत एवं पाकिस्तान की भीतरी राजनीतिक परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव के कारण कश्मीर की समस्या काफी उलझ गयी है। बहुत कुछ जो 1947-48 में जिन मुद्दों को भारत और पाकिस्तान पकड़े हुए थे, अब वे रूढ़ बन हठधर्मिता का रूप ले चुके हैं, जबकि जमीन पर

---

[124] चन्द्रकांता, मेरे भोजपत्र, पृ0 124

स्थितियाँ बिल्कुल बदल चुकी हैं। देश में राष्ट्रविरोधी हिन्दुत्व का जो उन्माद उभरा उसने पारंपरिक रूप से भाईचारे में बंधी कश्मीर की हिन्दू और मुसलमान जनता को काफी हद तक एक दूसरे से बेगाना कर दिया। इसका एक नतीजा तो हुआ है कि हिंदुत्ववादियों के उकसाने पर बड़ी संख्या में कश्मीर घाटी से कश्मीरी पंडितों का पलायन, जिनका अपने पड़ोसी मुसलमानों से गहरा रिश्ता था।"[125]

एक दूसरा कारण इन परिस्थितियों का प्रेरक माना जाता रहा है और वह यह कि सदियों से बहुसंख्यक कश्मीरी समुदाय में पल रही घृणा और असंतुष्टि की परिणति थी। ये परिस्थितियां कोई अचानक उत्पन्न नहीं हुईं अपितु वर्षों से कश्मीरी पंडितों द्वारा बहुसंख्यक कश्मीरी मुसलमानों का शोषण करने से पनपीं और अपने विकट रूप में 1990 के हिंसा व आतंक के दौरान देखी गयीं। कई साहित्यकार व इतिहासकार इस कारण को एक वास्तविक व प्रभावी कारण मानते हैं तो कई इसे बेबुनियाद कहकर ठुकराने में विश्वास रखते हैं। अशोक कुमार पाण्डेय ने अपनी शोधपरक पुस्तक 'कश्मीर और कश्मीरी पंडित' में इसकी चर्चा की है। वे इस मनोदशा का क्रमिक विश्लेषण करते हुए अपनी राय व्यक्त करते हैं, "डोगरा राज कश्मीरियों के खिलाफ़ गहरे क्षेत्रीय पूर्वग्रह और मुसलमानों के खिलाफ धार्मिक पूर्वग्रह की कहानी है। इस दुहरे पूर्वग्रह का सबसे बड़ा असर कश्मीरी मुसलमानों पर पड़ना ही था लेकिन कश्मीरी पंडितों के लिए भी यह समय उतना अच्छा नहीं था, जितना अक्सर इधर के आख्यानों में दिखाया जाता है। असल में, आम तौर पर 1947 को कश्मीर समस्या की शुरूआत का वर्ष मानने की राजनीतिक दृष्टि से हटकर गौर से देखें तो कश्मीरी समाज के भीतर वह खींचतान डोगरा राज्य की स्थापना के साथ शुरू होती है जिसने दोनों समुदायों के बीच तनावों की वह अनवरत श्रृंखला पैदा की जिसने एक तरफ दोनों के मन में पूर्वग्रह भरे तो दूसरी तरफ़ धार्मिक कट्टरता की प्रवृतियों को बढ़ावा दिया।"[126]

---

[125] सं० राजकिशोर, कश्मीर का भविष्य, पृ० 120

[126] अशोक कुमार पांडेय, कश्मीर और कश्मीरी पंडित, पृ०108

इन कारणों पर विचार करने पर दोनों ही मत अतिरेक का शिकार प्रतीत होते हैं। विशेषकर द्‌वितीय, पंडित समुदाय निश्चय ही अपने प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एवं शैक्षणिक स्तर के कारण उच्च पदों पर काबिज रहा परंतु उनके कार्यकलापों की डोर सत्ता के हाथ में थी। वे मात्र उस सत्ता का चेहरा थे न कि स्वयं प्रशासक। ऐसा अवश्य है कि बहुसंख्यक मुसलमानों की तुलना में वे कहीं अधिक समृद्‌ध थे और सरकारी नौकरियों के अधिकांश भाग पर उनका कब्जा था। कम समृद्‌ध बहुसंख्यक समुदाय से उनके प्रत्यक्ष संघर्ष के कारण एक दरार अवश्य आ गयी थी। 'कथा सतीसर' उपन्यास में चन्द्रकांता ने जॉर्ज फर्नांडिस साहब के यह कहने पर कि पंडित कसूरवार हैं, उन्होंने सरकारी नौकरियों में बहुसंख्यकों का हक छीना, अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं, "पंडित हैरान हैं, प्रबुद्‌ध नेताओं पर। पता तो होना चाहिए उन्हें, कि पंडित कश्मीर की आबादी का मात्र दो प्रतिशत हैं। दो प्रतिशत कितने पद ले सकते हैं? अगर लिए भी हों, तो उन्हें पता होगा कि कश्मीर की अर्थव्यवस्था का आधार कालीन इंडस्ट्री, शाल इंडस्ट्री, पेपर मैशी, वुड वर्क, रेशम के कारखाने और टूरिज्म हैं। देश-विदेश तक फैले इस व्यापार में, कितने पंडित शामिल हैं? मुट्ठीभर ही तो? वहाँ किसने किसका हक छीना है?"[127]

कश्मीर घाटी में विस्थापन की इस समस्या का सबसे बड़ा कारण वहाँ आतंकवाद की फैलती बेल और उसके फैलाव को रोक पाने में असमर्थ प्रशासन रहा। इस साम्प्रदायिक आतंकवाद ने अपना सबसे बड़ा शिकार वहाँ के अल्पसंख्यक कश्मीरी पंडितों को बनाया। हिंसा, अपहरण, बलात्कार और हत्याओं की ऐसी श्रृंखला शुरू हुई जिसकी भयावहता आज भी पीड़ा का विषय है। लोकतांत्रिक भारत देश की छवि पर यह घटना एक कालिख की तरह है जहाँ प्रशासन ने अपनी सियासत खेलने में वहाँ की जनता को दरकिनार कर दिया। सन् 1987 के चुनाव में नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस की सरकार ने जो धाँधली की उससे कश्मीर की राजनीति में गुणात्मक परिवर्तन आया। इसके विरोध में भारी उतार-चढ़ाव आए। प्रदर्शनकारियों ने बैलट को फर्जी कह बुलेट को ज्यादा आस से देखा। यह बदनुमा

[127] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृ0 513

दाग़ कश्मीरी पंडितों के भविष्य का हिस्सा हो गया। इस प्रकार कश्मीर में व्याप्त इन परिस्थितियों ने 1990 में होने वाली हिंसा की ताबीरें लिखनी शुरू कर दी थीं।

4.3 विस्थापन का इतिहास एवं सन् 1990

वर्ष 1990 में होने वाला विस्थापन कश्मीरी पंडित समुदाय का पहला विस्थापन नहीं था। इससे पहले भी लगभग छह बड़े और ग्यारह छोटे विस्थापन इतिहास के पन्नों में दर्ज हैं। संभवतः यह विस्थापन इतनी भारी मात्रा में और ऐसी हिंसक परिस्थितियों में हुआ कि इसका प्रभाव राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर तक हुआ। विस्थापन का यह सिलसिला मुस्लिम आक्रमणकारी तैमूर लंग के समय से शुरू होता है। सन् 1235 ई. में राजदेव के काल में ब्राह्मणों पर भीषण अत्याचार हुआ एवं 'ना भट्टोहम' (मैं ब्राह्मण नहीं हूँ) के नारे गूंजे। एक दर्दनाक मंजर की दास्तान सुल्तान सिकन्दर के राज्यारोहण के साथ शुरू होती है जब तलवार के जोर पर इस्लाम के वर्चस्व को स्थापित करने के हर संभव प्रयास किए गए। कश्मीर से हिन्दुत्व के उन्मूलन की ऐसी तीव्र लहर चली कि धर्मान्तरण या प्राणों से हाथ धोना, इनमें से किसी एक विकल्प का चयन कश्मीरी पंडितों की नियति बन गयी। मीर हमदानी के प्रभाव में सिकन्दर ने अहनिश मूतिभंजन एवं धर्मान्तरण को जारी रखा। इस विकट समय में बहुत से ब्राह्मण परिवार कश्मीर छोड़कर बाहरी राज्यों में बसने को विवश हो गये। 1586 ई. में कश्मीर में मुगल शासन का आधिपत्य स्थापित होने के साथ ही कश्मीरी पंडितों ने राजस्व विभाग में अपना दबदबा बनाया और अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए देश के अलग-अलग रजवाड़ों में भी प्रवेश करने लगे। मुगलों के समय हुए विस्थापन अधिकांशतः उत्तम अवसर की प्राप्ति से जुड़े थे। मुहम्मद शाह नामक शासक के दौर में कश्मीर से आए राजा जयराम भान नामक व्यक्ति के निवेदन पर कश्मीरी ब्राह्मणों के लिए 'कश्मीरी पंडित' सम्बोधन प्रयोग में लाया जाने लगा।

1753 से 1820 के दौरान कश्मीर पर अफगानों ने शासन किया। कश्मीरी पंडितों का राजस्व विभाग में दबदबा कायम रहा तथा बेहतर विकल्पों की तलाश

में वे बाहर राज्यों को भी गए। अफगानों के बाद वर्ष 1824 से 1846 तक सिख साम्राज्य में कश्मीरी पंडितों की स्थिति और मजबूत हुई और वे भारत के अनेक रजवाड़ों के उच्च पदों तक पहुँचे। संभवतः अधिकांश विस्थापन जीविका के स्तर को उच्च करते रहने की प्रेरणा से हुए परंतु इनमें सबसे क्रूर विस्थापन सुल्तान सिकंदर के समय हुआ, "बहुत से कश्मीरियों को, जिन्होंने मुसलमान बनने से इनकार कर दिया, बोरों में बांधकर डल झील में डुबो दिया गया। कोई कश्मीरी माथे पर तिलक लगाए दिख जाता था तो उसे मार दिया जाता था। कोई वितस्ता की पूजा करता दिख जाता तो उसे पकड़ लिया जाता। मंदिरों को ध्वस्त कर दिया गया और उनके स्थान पर मस्जिदें बना दी गई। कहा जा सकता है कि मतांतरण का यह अभियान बुतशिकन के शासनकाल में चरम सीमा पर पहुंच गया था। लगता था, हारी पर्वत के नीचे मृत पड़ा जलोद्भव पुन: जिंदा हो गया था। लोककथा है कि घाटी में केवल ग्यारह कश्मीरी हिंदू परिवार बचे थे।"[128]

भारत विभाजन के पश्चात् भी वर्ष 1947 से लेकर 1986 तक शनैः-शनैः विस्थापन जारी रहा क्योंकि परिस्थितियाँ कश्मीरी हिन्दू समुदाय के लिए विकट होती जा रही थीं। लगभग तीस प्रतिशत विस्थापन उस कालखण्ड में हुआ जब पाकिस्तान प्रेरित कबायली अपना कहर बरपा रहे थे। उसके बाद भी 1986 तक विस्थापन होते रहे। 'जम्मू जो कभी शहर था' उपन्यास में पद्मा सचदेव कबायली आक्रमण के समय मीरपुर से विस्थापित मास्टरजी का जिक्र करती हैं। वे अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए सुग्गी से कहते हैं, "जब हमने मीरपुर छोड़ा, हम समझते थे कि अगर चले भी गये तो आठ दस दिन बाद वापस लौट आएंगे। इधर-उधर से भयानक खबरें आ रही थीं। हमने मीरपुर में ही हिन्दुओं के मुहल्ले में घर भी ले लिया था। आज भी याद है। मकान-मालकिन ने कहा था, क्या बात करते हैं, अपनों से भी कोई किराया लेता है। ये समझिए कि आप ही का घर है। हम तो

---

[128] कुलदीप चंद अग्निहोत्री, कश्मीर के सांस्कृतिक संघर्ष के विविध पक्ष,बहुवचन पत्रिका, अंक 64- 65- 66, पृ0 314

वहाँ आराम से बैठे हुए थे, तब दो चार लोगों ने आकर कहा-आप लोग क्या कर रहे हैं? सारा मीरपुर खाली हो गया।"[129]

कश्मीर में साम्प्रदायिकता धीरे-धीरे अपनी जड़ें जमा रही थी और सौहार्द अपना दायरा समेटने लगा था। लोगों के बीच का प्रेम और विश्वास खत्म होने लगा। जिनके साथ मिलकर सुख-दुःख बाँटे गये, पर्व-त्यौहार मनाये गए, जिनके कंधों को समय आने पर सहारा दिया गया उन्हीं कन्धों को कमजोर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी गयी। सदियों से चली आ रही दोस्तियों में दरारें पड़ने लगी और वे एक-दूसरे को शक की नजरों से देखने लगे। 'निजाम-ए-मुस्तफा' के लिए दिन-दहाड़े कश्मीर के चर्चित शख्सों को मारकर आमजन के मन में डर बैठाने के प्रयास चरम पर थे। 10 फरवरी 1984 को जस्टिस नीलकांत गंजू द्वारा मकबूल बट को विमान अपहरण और हत्या के आरोप में फांसी देने के कारण आतंकी क्रुद्ध हो गए। 1986 में राममंदिर का ताला टूटने पर अनन्तनाग जिले में साम्प्रदायिक हिंसा हुई। 1988 से 1989 के बीच घाटी में लगातार निर्मम हत्याएं होती रहीं। जन्नत कहा जाने वाला कश्मीर जहन्नुम बन गया। 'पाषाण युग' उपन्यास की लेखिका लिखती हैं, "सिर्फ एक तपोवन देखते ही देखते आदमखोर पेड़ में बदल गया।"[130]

कश्मीर लगातार आतंक के साये में रहा। 21अगस्त, 1989 को युसूफ हलवाई, 14 सितम्बर 1989 को भाजपा नेता टीकालाल टपलू, 4 नवम्बर को नीलकांत गंजू की हत्याओं ने पड़ितों के हृदय में असुरक्षा का भाव पैदा किया। रुबिया सईद के अपहरण के बाद कश्मीर में आतंकवाद का घिनौना दौर अपनी रफ्तार और तेज करता है। 2 दिसम्बर, 1989 को जनता दल की सरकार में गृहमंत्री पद पर आसीन हुए मुफ्ती मोहम्मद सईद पहले कश्मीरी थे। उनके शपथग्रहण के ठीक 4 दिन बाद उनकी बेटी रूबिया सईद का अपहरण और उसकी फिरौती के बदले भारत सरकार की गिरफ्त में कैद तीन और बाद में पांच

---

[129] पद्मा सचदेव, जम्मू जो कभी शहर था, पृ. 54

[130] संजना कौल, पाषाण युग, पृ. 53

आतंकियों की रिहाई की मांग की गयी। फारुक की काफी चेतावनियों के बाद भी इन खूंखार आतंकियों को रिहा कर रुबिया को वापस लाया गया और कालान्तर में यही आतंकी कश्मीर की शान्ति भंग करने में जिम्मेदार रहे और कश्मीरी अवाम को सरकार के इस अदूरदर्शी फैसले की भारी कीमत चुकानी पड़ी। इस घटना के बाद आतंकियों का मनोबल बढ़ गया और उन्होनें अनगिनत अपहरण और रिहाई की घटनाओं को अंजाम दिया। आतंकियों ने भारत सरकार से जुड़ी हर संस्था पर हमला किया और हर उस कारक को मिटाने की कोशिश की जो कश्मीर को तथाकथित आजादी दिलाने में बाधक बन रहा था। संभव है इसी कारणवश कश्मीरी पंडित उन्हें अपने पथ के कांटे नजर आए जिन्हें डरा-धमका या हत्या कर कश्मीर से बाहर भेजना उनका एकमात्र उद्‌देश्य बन गया। इसके पश्चात् कश्मीरी आवाम को स्तब्ध कर देने वाले हादसे आम हो गए। हत्या, अपहरण, बलात्कार एवं धमकी उनकी दिनचर्या का हिस्सा हो गये। 'इकबाल' उपन्यास में लेखिका वर्ष 1990 की हिंसक घटनाओं का अंकन करते हुए 19 जनवरी की रात का भी जिक्र करती हैं, “उन्नीस जनवरी 1990 की रात को जगह-जगह मस्जिदों से लाउडस्पीकरों के जरिए घोषणा की गई कि कश्मीरी पंडित समुदाय के लोग कश्मीर छोड़कर चले जायें- 'असि छू बनावुन पाकिस्तान, भटव रोस्तुय भटन्यब सान' यानी हमें पाकिस्तान चाहिये, हिंदुओ के बिना, लेकिन उनकी औरतों के साथ। और फिर उनका दूसरा नारा- 'यहां क्या चलेगा- 'निजाम-ए-मुस्तफा !' यानी इस्लाम का कानून। पहले ‘आफताब' फिर 'अलसफा' अखबार में तो खुलकर लिखा गया कि पंडित अड़तालीस घंटों में कश्मीर वैली से निकल जायें..."[131]

अनिश्चित परिस्थितियों के मद्‌देनजर कश्मीरी पंडित अपने को असुरक्षित महसूस करते रहे और न चाहते हुए भी विस्थापित होकर जम्मू एवं अन्य भारतीय राज्यों में नारकीय व गुमनाम जीवन जीने को अभिशप्त हो गये। कश्मीर से रातों-रात सैकड़ों कश्मीरी पंडित परिवार अपनी आवश्यकता मात्र वस्तुएं लेकर

---

[131] जयश्री रॉय, इकबाल, पृ. 83

अपने घरों को पड़ोसियों के भरोसे पर छोड़कर और मन में वापस लौट पाने की आस लिए बाहर भाग आए। वह समुदाय इस बात से पूर्णतः अनभिज्ञ था कि आगामी भविष्य में उनके लिए परिस्थितियाँ बद से बदतर होती जायेंगी। अवश्य ही 1990 का यह विस्थापन कश्मीरी इतिहास के पन्नों पर एक काले धब्बे की तरह है।

4.4 <u>विस्थापन भोगी समाज की अंतहीन पीड़ा</u>

कश्मीर से विस्थापित हुए पंडित समुदाय पर निर्वासन का शाप दीर्घकालिक रहा है। वर्तमान में अवश्य उन्होंने अपनी पहचान बनाने व स्थायित्व प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली है पर अपनी मातृभूमि से अलग होने की पीड़ा आज भी उन्हें उसी प्रकार कचोट रही है। अपनी इस मनोदशा को कश्मीर से विस्थापित एवं अन्य गैर कश्मीरी साहित्यकारों ने भी रचना का विषय बनाया है। कोई भी रचनाकार अपने भीतरी दबावों से प्रभावित होता है। ये दबाव परिस्थितियों के सापेक्ष आवेग की शक्ल में अभिव्यक्ति का मार्ग तलाशते हैं। साहित्य एक ऐसा ही मार्ग है, जहाँ रचनाकार अपने विचार, अनुभूति और संवेदना की बुनावट को अभिव्यक्त करता है। रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से आंतरिक उद्वेलनों से मुक्त हो जाना चाहता है। हिन्दी साहित्य में ऐसे अनेक उपन्यास व कहानियों की रचना हुई जिसमें इस पीड़ा को खुलकर व्यक्त किया गया है।

'दर्दपुर' उपन्यास विस्थापित समाज की इस चीत्कार के अनेक चित्रों को समेटे हुए है। सुधा एक एनजीओ की कार्यकर्ता के रूप में कश्मीर जाती है और उसके अपने घर, गली, स्कूल उसकी आंखों के सामने प्रत्यक्ष होने लगते हैं। वहीं जाकर उसे अपना न कह पाने की विवशता सुधा में कड़वाहट पैदा करती है, "कितना पास है वह घर जहाँ से उसे उस रात निकाला गया था। वह आरामगाह... वह घर जहाँ उसने हमेशा मस्ती की, माँ की छाँव देखी, पिता का लाड़ पाया। वे

कमरे, वे दीवारें, वह दहलीज, वे नल, वे बरामदे कितने पास हैं। पर वह कहाँ है।"[132]

कश्मीर से जब जबरन पंडितों को भगाया जा रहा था, ऐसे कई परिवार थे जो किसी भी कीमत पर वहाँ से वापस नहीं आना चाहते थे। उन्हें अपने प्राणों से ज्यादा फिक्र अपनी मातृभूमि से अलग होने की थी। मीराकांत रचित 'एक कोई था कहीं नहीं सा' उपन्यास की पात्र शबरी भी हर हाल में कश्मीर में ही रहना चाहती है। पृथ्वी द्वारा लगातार किए जा रहे प्रयासों के बावजूद वह उसके साथ दिल्ली जाने से मात्र इसलिए इंकार कर देती है कि अपना वजूद शबरी मात्र घर, अपने शहर और एक रिफॉरमी के रूप में कश्मीर में बदलाव की प्रेरणा से घर पढ़ने आ रही लड़कियों से जोड़ पाती है। वह निर्णय करती है, "यहाँ अभी बहुत मेरे अपने हैं वही दे देंगे मुखाग्नि। इस घर-आँगन से लगता है जन्म-जन्मातर का नाता है। यहीं जन्म लिया, यहीं से ब्याही गयी और जब लौटी भी तो यहीं। यहीं रहकर एक ही जीवन में न जाने कितने जीवन जिये ! तो क्या अब अन्तिम पहर में, चला-चली की इस वेला में इसे छोड़ दूं? नहीं किसी कीमत पर नहीं। हरगिज़ नहीं।"।[133] लाख कोशिशों के बाद भी शबरी को कश्मीर छोड़कर जाना पड़ता है और वह वापस फिर कभी कश्मीर नहीं आ पाती।

कश्मीर से निकलकर भारी संख्या में जम्मू, दिल्ली आदि राज्यों में आए पंडितों को कैंपों या किराए के मकानों में गुजारा करना पड़ा। जिनकी आर्थिक स्थिति थोड़ी संभली हुई थी या जिनके बाहरी राज्यों में सगे-सम्बन्धी थे उन्हें अपेक्षाकृत कम दिक्कतें हुई। कैंपों में रहने वाले विस्थापितों का जीवन नारकीय हो गया। अपनी न्यूनतम सुविधाओं के लिए भी उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। परिवार के सदस्यों के हिसाब से कैंपों में मिलने वाली जगह, राशन, स्वास्थ्य एवं शैक्षिक सुविधाएँ न के बराबर थीं। एक बहुत बड़ी दिक्कत उन्हें मौसम के विपरीत होने से हुई। कश्मीर के सर्द मौसम के अभ्यस्त ये निर्वासित जम्मू की गर्मी बड़ी

---

[132] दर्दपुर, क्षमा कौल, पृ०72

[133] मीराकांत, एक कोई था कहीं नहीं -सा, पृ०181

मुश्किल से झेल पा रहे थे। अनिश्चितता एवं अंधकारमय भविष्य मानसिक दबाव का कारण बनने लगा। कैंप के जीवन के विषय में 'किस्सा गाशकौल' कहानी में लेखिका लिखती हैं, "अलस्सुबह जब आसमान के अदीठ कोने से बादलों की मटमैली, छिजी लिहाफ को भेद, सूरज की पहली किरण धरती को छूने निकलती है तो पहाड़ों के दामन में कुकरमुतों की तरह उगे बेशुमार टेंटों, शिविरों और कच्चे-अधपके खोखों की सोई बस्ती हडबड़ाकर जाग पड़ती है, ज्यों सूखी नाली में पड़े केंचुए पानी की बौछार पड़ने से बुलबुलाकर रेंगने लगे हों। बहुत सवेरे जागने की आदत उम्र दराज बूढ़ों में तो होती ही है, पर यहाँ जवान, बूढ़े सभी कुछ मुलतबी न हो सकने वाली जरूरतों के तहत, दिन का चेहरा देखने से पहले ही दिन में शुरुआत करने पर मज़बूर हैं। सो आसमान में लाली बिखरते ही हाथों में डिब्बे, बोतलें, थैली-शैली लिए लोग मीलों मील लम्बी कतारों में खड़े हो जाते हैं।"[134] इतने अभावग्रस्त माहौल में रहते हुए भी यह समुदाय इस समस्या के निजात हेतु प्रयासरत रहा। इस प्रयास में गाशकौल, 'शरणागत दीनार्त' के लसपंडित आदि पात्रों के संघर्ष चित्रित हैं।

कश्मीर से विस्थापित हुए लोगों की दयनीय दशा को लेकर साहित्य में एक क्रोध भी उभर कर आया है जहाँ भारत सरकार के प्रति कश्मीरी पंडितों की विश्वस्त प्रवृत्ति एवं प्रशासन की असमर्थता को लेकर प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी है। एक ऐसी स्थिति जिसकी विकटता को संभाला जा सकता था, उसे प्रशासनिक स्तर पर गंभीरता से नहीं लिया गया। इतनी अमानुषिक घटना के बाद भी उनके जीवन को पुनः ढर्रे पर वापस लाने व संतुष्ट करने के न के बराबर प्रयास हुए। अपने ही देश में वे शरणार्थी बना दिए गए। भारत ने उनकी बेहतरी के लिए कोई ख़ास हिम्मत नहीं दिखायी। वो मात्र वोटबैंक की राजनीति का एक मोहरा बनकर रह गए। 'शिगाफ' उपन्यास की लेखिका इस पर अपना मत स्पष्ट करती हैं, "मैं आज निर्वासित हूं-क्योंकि तुमने चुना था निहत्थों को मारना। मैं आज निर्वासित हूँ- मैंने चुना सम्मान से जीना, हथियार न उठाना। मैं आज निर्वासित हूं- क्योंकि

---

[134] चन्द्रकांता, कथानगर : वादी ए कश्मीर, किस्सा गाशकौल, पृ०172

पूरा संसार चुप रहा, महज कुछ लोग ही तो मर रहे थे। मैं आज निर्वासित हूँ- क्योंकि मेरा भारतीय होने में विश्वास था।"[135] विस्थापन का मनोवैज्ञानिक प्रभाव अमिता की दादी के मतिभ्रम एवं उसकी माँ की असंतुलित मनोस्थिति के रूप में देखा जा सकता है।

कश्मीरी विस्थापित समाज को अपनी अस्मिता बचाये रखने के लिए भी काफी संघर्ष करना पड़ा। पारिवारिक स्नेह, उत्तम परवरिश की आकांक्षा, रोजगारोन्मुख शिक्षा और बेहतर भविष्य की कामना के बीच लड़खड़ाते हुए वे विपरीत परिस्थितियों में भी बेहतर ढूंढकर लाने को प्रयासरत रहे। भारतीय संविधान कश्मीर में भारतीयता की रक्षा नहीं कर पाया। यह ध्यान देने योग्य है कि भारत के भीतर ही कश्मीरी हिन्दू आज भी शरणार्थी बना क्यों फिर रहा है? 'बर्फ और अंगारे' उपन्यास में लेखक दुःख प्रकट करता है, "अपने ही देश में शरणार्थी बन जाने की पीड़ा क्या होती है? इसे हमारा तथाकथित विकसित और सुविधा भोगी समाज, कदाचित आज के चकाचौंध भरे समय में समझ ही नहीं सकता। वैसे भी, जाके पैर न फटी बेबाई सो क्या जाने पीर पराई?"[136]

ऐसे कश्मीरी पंडित जो कश्मीर में ही रहे उनका जीवन भी झंझावातों का शिकार हुआ। 'दर्दपुर' की नीरा जुत्सी के पिता नवगाम के नामी जमीनदारों में थे। सुधा को प्रतीत होता है कि शायद अपनी भूमि से अलग न होने से नीरा एक सुकूनभरी जिंदगी जी रही होगी। नीरा सुधा के इस विचार को नकार देती है। उसे विस्थापित लोगों की जिंदगी स्वयं से ज्यादा स्थिर लगती है। वह न जाने पर पछतावा करती है। वह कश्मीर में अपनी अस्मिता के लिए लड़ रही है। नीरा कहती है, "दीदी मैं एक अंधेरे कमरे में बंद हूँ। नजरबंद हूं। मुझे नवगाम का गांव अब नरक लगता है। गांव का वह महलनुमा घर मुझे घर नहीं लगता। मुझे जम्मू के कैंपों में रह रहे अपने पड़ोसियों और रिश्तेदारों से ईर्ष्या होती है वहां मुझे जिंदगी लगती है चाहे कष्टमय। हमारे रिश्तेदारों ने काफी तरक्की कर ली है।

---

[135] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ, पृ. २9

[136] सुधाकर अदीब, बर्फ और अंगारे, पृ० 112

मुझसे पढ़ाई में कमजोर सहपाठिनें तो कई इंजीनियर तक बन गयी हैं।"[137] 'शिगाफ' उपन्यास की नसीम भी एक अलग किस्म का निर्वासन भोग रही है जो भविष्य में बेहतर स्थितियां जम्मू-कश्मीर से बाहर अन्य राज्यों में देखती है।

साहित्यकारों का एक ऐसा वर्ग भी है जो इन दु:खद परिस्थितियों के पीछे कश्मीरी पंडितों की अप्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति को जिम्मेदार मानता है। कश्मीरी पंडितों का समुदाय हमेशा से ही एक असंगठित समुदाय रहा है। अपने आस-पास हो रहे जुल्मों के खिलाफ खुलकर बोलने और संगठित होकर लड़ने की कोशिशें कम ही की गयीं जिसका खामियाजा वे आज तक भोग रहे हैं। पंडितों की इस प्रवृत्ति पर 'दर्दपुर' उपन्यास में क्षमा कौल ने निराशा व्यक्त की है, "हम हारे हैं... बेबस हैं.. हमारे खून में ही अब हार का बहुत बड़ा स्वीकार है। तिस पर हम उस कुसमय के शिकार हैं जहां वोट का शासन है और वोट में उसी की विजय है जिसका संगठन है, जिसकी संख्या है। हम संगठन से डरते हैं। हम शत्रु की अधीनता स्वीकार करते हैं, हृदय से स्वीकार करते हैं, मगर आपसी संगठन की बात यदि सोचें तो एक-दूसरे से स्वयं को श्रेष्ठ समझने की लीचड़ बीमारी से ग्रस्त हो जाते हैं। हम एक-दूसरे की ईर्ष्या में विगलित हो उठते हैं, इसलिए संगठन टूटते हैं। हमारा मन बीमार मन हो चुका है। क्षुब्ध मन। दु:खी और पराजित मन है हमारा। गुलाम मन है... अब खैर...।"[138] इसके साथ ही भारत सरकार के प्रति भी तीव्र क्षोभ व्यक्त है। केन्द्र ने हमेशा तुष्टीकरण की नीति अपनायी। एक कड़ा रुख अपनाकर स्थिति को काबू में करने की अपेक्षा वे आतंकियों को मनमानी करने देते रहे और राष्ट्र के निष्ठावान लोगों की उपेक्षा की। यासीन मलिक और बिट्टा कराटे जैसे क्रूर आतंकियों को सुधार के अवसर दिए और भारत सरकार के राजकोष से उन्हें आर्थिक सहायता दी।

कश्मीर से विस्थापित होकर आए लोगों को आर्थिक परेशानियों का भी सामना करना पड़ा। ऐसे अचानक वहां से निकाल दिए जाने के कारण उनके पास

---

[137] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 15

[138] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृष्ठ. 369

सुचारू ढंग से जीविका चलाने के लिए कोई निश्चित योजना नहीं थी और न ही वे कश्मीर से इतनी अधिक पूंजी लेकर बाहर आ पाये थे कि स्थितियां नियंत्रण में होतीं। इसका मुख्य कारण था उनकी संपत्तियों का खेत, बाग व घरों के रूप में होना जिन्हें वे वहीं छोड़ कर आ गए। सरकारी कर्मचारियों की नौकरियाँ व वेतन अचानक रुक गए। चन्द्रकांता इस विषय में लिखती हैं, "एक सौ पच्चीस रुपए के अनुदान पर, जैसा महानगर में संभव था, वैसा जीवन जीते रहे लोग। प्राइम मिनिस्टर रिलीफ फंड के रुपए, करीब तीस लाख, कुछ ही दिनों में खतम हो गए। आगे? कश्मीरी समिति दिल्ली शरणार्थियों के लिए डटी रही। यों विस्थापितों के क्या हक और क्या जीना? कश्मीर भवन, अमर कालोनी में ट्रांजिट कैम्प खुला। समिति ने अन्न व कुछ मूलभूत जरूरतें जुटाई और सरकार को टहोकते रहे, हमें न्याय चाहिए। हम इस देश के नागरिक हैं। हमारे पढ़े-लिखे बच्चों को नौकरियाँ चाहिए। स्कूल-कॉलेज में दाखिले चाहिए, रुके वेतन चाहिए।"[139]

4.5 <u>सांस्कृतिक विलोपन की आशंका</u>

कश्मीर एक सांस्कृतिक उत्कर्ष वाला क्षेत्र रहा है। एक अविस्मरणीय इतिहास और सतत् प्रवाहित परम्परा का संगम इस क्षेत्र को उत्कृष्ट बनाता है। ऐसी भूमि से कटने का दुःख अकथ्य है। कश्मीर केन्द्रित हिन्दी कथा साहित्य में विस्थापन से जुड़ी अभिव्यक्तियों में सांस्कृतिक विलोपन की आशंका को भी स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। सांस्कृतिक विलोपन वह प्रक्रिया है जब किसी प्रभावशाली सांस्कृतिक समूह की सांस्कृतिक प्रथाओं और रीति-रिवाजों का क्षय होता है या उन्हें वह समुदाय धीरे-धीरे भूलने लगता है। यह स्वाभाविक और बलात् दोनों प्रकार से हो सकता है। कश्मीर से विस्थापित समुदाय के साथ यह आशंका आज का सच है। जहाँ एक ओर कश्मीर से जबरन उनके नामों-निशान मिटाए जाने के अनगिनत प्रयास किए जा रहे हैं वहीं दूसरी तरफ पंडित समुदाय की वर्तमान पीढ़ियां अपने सांस्कृतिक गौरव व समृद्धि से अनभिज्ञ हैं या अधिक प्रभावशाली सांस्कृतिक समूह को अपना रहे हैं। कश्मीरी विस्थापित अपनी खुली

---

[139] चंद्रकांता, कथा सतीसर, पृ. 512

जड़ें लिए इस दंश को झेल रहे हैं। तेज. एन. धर लिखते हैं, "यह अनुमान लगाना थोड़ा जल्दी होगा, मगर मुझे लगता है कि आम लोगों की और सरकार की, खासतौर पर पंडितों के प्रति उदासीनता का विनाशकारी नतीजा होगा। अगर उनको घाटी में अपने घरों में जाने में मदद नहीं की जाएगी तो वे अपनी भाषा, रिवाज और परंपरा खो देंगे और देश की दूसरी सांस्कृतिक पहचान में समाविष्ट हो जायेंगे। वे एक संप्रदाय के तौर पर विलुप्त हो जायेंगे।"[140]

स्पेन के एक छोटे से शहर में विस्थापन का दंश भोग रही अमिता अपने ब्लॉग के माध्यम से पूरे विश्व में विस्थापित कश्मीरी पंडित समुदाय से जुड़ी है तथा पोस्ट पर उनकी प्रतिकिया के माध्यम से मनोस्थितियां साझा होती हैं। 29 दिसम्बर, 2004 को अमिता की एक पोस्ट पर 31 दिसम्बर 2004 को आयी प्रतिक्रिया कश्मीर से पंडित समुदाय के सफाये के बारे में जिक्र करती है, "लौटने में क्या रखा है, भूल जाओ, उन अव्यवहारिक लोगों की तरह व्यवहार मत करो। यहां जम्मू में बहुत कश्मीरी हैं जो भूल नहीं पाए हैं, लौटने को पगलाए हुए घूमते रहते हैं। मगर उनके जले हुए मकानों पर बुलडोजर चलाए जा रहे हैं। वो बाजार, जहाँ कश्मीरी हिन्दुओं की दुकानें होती थी, नए सिरे से खुल रहे हैं। तुम सब मिट चुके हो वहां से। विलुप्त शब्द सुना है न? और ये कश्मीरी इंटलेक्ट बन्दे, इनकी सिंपैथी तुम्हारे फेवर में नहीं हो सकती।"[141]

कश्मीर में स्थानों के नाम निरन्तर बदले जा रहे हैं। उन्हें इस्लामिक प्रतिनिधित्व वाले नामों से जोड़ा जा रहा है। कश्मीरी पंडितों के आस्था का प्रतीक रहे विभिन्न मंदिरों, जलस्रोतों और तीर्थस्थानों को हानि पहुंचायी गयी। ये सभी क्रियाकलाप स्वतः न होकर एक साम्प्रदायिक मानसिकता की प्रेरणा के तहत अंजाम दिए जा रहे हैं। 'दर्दपुर' उपन्यास में जेहाद के इस रूप की लेखिका ने निंदा की है। नारबल के रूप में जाने जाने वाले क्षेत्र का नाम बदलकर अली आबाद रख दिया गया। लेखिका लिखती है, "लेकिन हुर्रत। मुझे नहीं लगता कि

---

[140] तेज. एन.धर, आतंक की दहशत, पृष्ठ 180

[141] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ, पृ० 54

नारबल नाम कुछ ऐसा हिन्दू नाम था या वैदिक नाम था। कोई आपत्तिजनक बात इसमें ऐसी थी कि कट्टरपंथियों को इसे बदलने की जरूरत महसूस हुई। फिर ऐसा क्यों? आखिर आग को नार वे भी बोलते ही होंगे। इसका मतलब है कि हर गाँवों के नामों की दुर्दशा की गयी होगी... इसी को कहते हैं नामोनिशान मिटाना। है न?"[142]

विस्थापित होते हुए यह समुदाय अपने साथ वतन की मिट्टी और चिनार के पत्ते इस आस से लाए थे कि फिर जरूर वहाँ वापस लौटना होगा। अब जबकि वहाँ जा पाना इतना मुश्किल है और खुद को दूर रखना मानसिक तौर पर इतना व्यथित करने वाला, उस क्षेत्र से अस्मिता और पहचान के जबरन मिटाए जा रहे चिन्ह छटपटाहट का कारण बने हुए हैं। उनकी आत्मा आतंकियों के अत्याचारों और निष्कासन की विभीषिकाओं से टूट चुकी है। 'इकबाल' उपन्यास में सांस्कृतिक विलोपन की इस समस्या को लेखिका रेखांकित करती है, "यह डर, यह दर्द, यह विस्थापन- बस यही हासिल था आज जन्नत् के इन आदिमानवों के पांच हजार वर्षों की सांस्कृतिक विरासत का... आंखों की नदी पलकों का कच्चा किनारा तोड़कर बह निकली है आकूल वन्या में, अदम्य प्लावन में। तवी रो रही है, वितस्ता रो रही है, मट्टन के सूरजकुंड का हरा जल रक्तिम हो गया है... मल्कापुखराज, तवी, चिमगोइयां,स्टापू के खेल, अमरनाथ की गुफा, अखरोट के पेड़, बुर्जुग चिनारों की छांव, मट्टन के सूरजकुंड का हरा, रेशमी जल, नर्गिस के फूल, किन्नरों, गंधर्वों की कहानियां... हर तरफ खून, हर तरफ आग, हर तरफ बारूद की कड़वी- कसैली गंध और इन सबके बीच कोई लगातार चिल्ला रहा है- अल जेहाद ! अल जेहाद ! अल जेहाद !"[143]

4.6 <u>निर्वासितों हेतु पुनर्स्थापन नीतियों की भूमिका</u>

विस्थापित कश्मीरी पंडितों ने सरकार से निरन्तर प्रभावी पुनर्स्थापन नीतियों को लागू करने का अनुरोध किया है। लगातार हो रहे प्रदर्शनों के बावजूद

---

[142] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ. 209

[143] जयश्री रॉय, इक़बाल, पृ. 36

सरकार से मदद की जगह उपेक्षा ही मिली है। यह अवश्य है कि बीतते समय के साथ उन्हें मिलने वाली राहत राशि आंशिक रूप से बढ़ायी गयी परंतु उन्हें पुन: कश्मीर में बसाने को लेकर कोई ठोस कदम सरकार ने नहीं उठाया। वर्तमान में उन्हें सरकारी तंत्र से बहुत कम उम्मीदें हैं। अपने ही छोटे-छोटे समूह, एनजीओ और प्रदर्शन समितियों के माध्यम से वे अपनी माँगे रखते आ रहे हैं, इस उम्मीद के साथ कि शायद अब कुछ बेहतर हो। कश्मीरी पंडितों को वहां पुनः बसा पाना लगभग तब तक संभव नहीं जब तक आतंकवाद को समूल नष्ट न किया जाये। हजारों विस्थापित आज भी सरकार और सामाजिक संगठनों से सहायता की आस लगाए बैठे हैं जिससे वे अपने घरों में वापस जा सकें।

विस्थापितों में अभी भी अपनी मातृभूमि पर पुनः लौटने का उत्साह मौजूद है पर बंदूक का डर अक्सर उन्हें इस फैसले पर दुबारा विचार करने को मजबूर करता है। जैसे ही कुछ परिवार वहाँ बसने की कोशिश करते हैं, आतंकी उनकी हत्या कर बाकियों के हौसले पस्त करने का कोई अवसर नहीं छोड़ते। प्रदीप मैगज़ीन ने अपनी यह मनोस्थिति स्पष्ट की है, "कई अन्य पंडितों की तरह, मैं अब कश्मीर का एक नियमित आंगतुक हूँ, लेकिन स्थायी वापसी का विचार मेरे दिमाग़ में कभी नहीं आया। बंदूक का डर अभी भी 'हमें' सताता है, हालांकि घाटी में पर्याप्त आवाजें हैं जो हमें वापस बुलाती हैं और कहती हैं कि 'वापस आओ'। आखिरकार ऐसी जगह पर कौन लौटना चाहेगा जहाँ मौत सड़कों पर नाचती है, जहाँ स्थानीय लोग असुरक्षित हैं और आर्थिक रूप से अपने अस्तित्व को बनाने के लिए कोई रोजगार मौजूद नहीं है।"[144]

एक ऐसा समुदाय जो मात्र स्मृतियों को लिए जी रहा है और आज भी अपने जीवन के तारों को बीते समय से निकालकर वर्तमान से नहीं जोड़ पा रहा, इस विश्वास पर कि एक दिन माँ शारिका उन्हें जरूर वापस बुलाएंगी। उनका यह विश्वास गत शताब्दियों के क्रूर निष्कासनों को देखते हुए आज भी बना हुआ है।

[144] संपादक शिप्रा किरण, सुलगता कश्मीर, सिकुड़ता लोकतंत्र, वक्त की आवाज 2, पृ॰27

जब वे बार-बार कश्मीर से उखाड़े जाने पर भी फिर वापस कश्मीर में जाकर अपनी जगह बनाने में सफल रहे तो अब भी कोई न कोई कश्यप या बड़शाह उन्हें इस समय से जरूर बाहर निकालेगा। हिंदी कथा साहित्य में यह आशा अपनी जीवन्तता के साथ चित्रित है। किरण बख्शी अपनी कहानी 'मैंने झील को साँस लेते देखा है' में उम्मीद व्यक्त करती हैं, "ऐसा न कहो। इस धरती पर सब कुछ पहले जैसा होकर रहेगा। मेरा विश्वास है, और फिर ऐसी तो कोई रात नहीं होती जिसकी सुबह न हो।"[145] इसी प्रकार चंद्रकांता भी 'कथा सतीसर' उपन्यास के अंत में एक नवजात बच्ची की पहली चीख के साथ कश्मीर के सुखद भविष्य की कामना करती हैं।

कश्मीर में पुनर्स्थापन को लेकर ऐसे कई समुदाय हैं जो जमीनी स्तर पर काफी काम कर रहे हैं और विस्थापितों को पुनः बसाने के लिए संकल्परत हैं। कश्मीरी पंडितों की वापसी भारतीय राजनीति में एक अहम मुद्दा है। इस विषय में बहुत सी बहसें लगातार जारी हैं। यह निश्चित है कि विस्थापन की त्रासदी का दंश झेल रहे कश्मीरियों के लिए न्याय उनका सम्मानजनक पुनर्वास ही हो सकता है। हाल ही में कश्मीर से धारा 370 और 35(A) का हटाया जाना भी इन नीतियों को सुचारू रूप से लागू करने के लिए उठाये गये महत्वपूर्ण कदम के तौर पर देखा जा रहा है लेकिन वास्तविकता में किस हद तक यह प्रभावी रहेगा, यह शोध का विषय है। कुछ इस कदम को पुनर्स्थापन को और जटिल बना देने की एक कड़ी के रूप में भी देख रहे हैं। उन मतों के अनुसार यह घाटी में रह रहे पंडितों के लिए मुश्किलों को और बढ़ाने वाला कदम रहा है।

कश्मीरी पंडितों को पुनर्स्थापित करने का एक महत्वपूर्ण कदम मनमोहन सिंह के समय में उठाया गया। जब प्रधानमंत्री राहत पैकेज के माध्यम से कश्मीर में नौकरियों की व्यवस्था की गयी तथा लगभग छह हजार पंडित कश्मीर के बडगाम, अनंतनाग सहित नवनिर्मित ट्रांजिट कालोनियों में बसने को प्रेरित हुए। 5 अगस्त, 2019 को हुए इस ऐतिहासिक फैसले से जब कश्मीर में हालात बेकाबू

---

[145] प्रगतिशील वसुधा, अंक 74, पृ० 252

हुए तो वे पुनः जम्मू वापस आ गए। अतः यह तो निश्चित है कि कश्मीर में बिना शान्ति के पुनर्स्थापन संभव नहीं हो पायेगा।

'पनुन कश्मीर' बीते दशक में कश्मीरी विस्थापितों को पुनः स्थापित करने का प्रयास कर रही एक प्रमुख संस्था है जो दिसम्बर, 1990 में आकार लेती है और इनकी मांग है कि कश्मीर घाटी में एक अलग राज्य का निर्माण हो। कश्मीरी पंडितों के साथ हुए अन्याय के प्रति कार्यवाही हेतु मानवाधिकार कमीशन को समस्याओं की और ज्यादतियों का ब्यौरा भेजता है। चन्द्रकांता के उपन्यास ‘कथा सतीसर’ में इस संस्था के विषय में बात की गयी है, "पंडितों के जले अधजले खाली बियाबान सुनसान घरों में मौत का सन्नाटा है। पीटर के मन में हौल सा उठता है। क्या विस्थापित हिन्दू फिर अपने घरों में लौट आएंगे? विश्वास नहीं आता। उधर जम्मू में माइग्रेट कश्मीरियों ने 'पनुन कश्मीर' की मांग उठाई है, कि कश्मीरी हिन्दुओं के लिए वादी में बनिहाल या उधमपुर के आसपास सिक्योरिटी जोन बनाये जाने का। झेहलम नदी के उत्तर और पूर्व के इलाके में सभी विस्थापित हिन्दुओं का होमलैंड बने। उन्हें अपनी जन्मभूमि में सम्मान से बसने का अधिकार दिया जाए। टेंटों, शिविरों और तंग कमरों में ठूँसे-ठूँसे वे माइग्रेट की बेइज्जत और जलालत भरी जिन्दगी नहीं जीना चाहते।”[146] पुनर्स्थापन मुश्किल अवश्य है पर असंभव नहीं। कश्मीरी विस्थापितों को पुनः बसाये जाने के लिए कड़े कदम उठाये जाने और उन पर सख्ती से अमल जरूरी है। 'एक कोई था कही नहीं सा' उपन्यास की जया इसी भाव से प्रेरित है। वह जानती है कि 'चार चिनारी' स्थान तभी सार्थक होगा जब उखड़े हुए चौथे चिनार को पुन: मजबूती से उसी जगह लगाया जायेगा।

---

[146] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृ० 531

पंचम अध्याय

सामयिक परिदृश्य और हिन्दी कथा साहित्य में कश्मीर सम्बंधी ज्वलंत मुद्दे

कश्मीर घाटी को ऋषि वाटिका की उपमा दी गयी है। सन्तों, सूफियों, दार्शनिकों, शैव धर्म के आचार्यों एवं प्रबुद्ध काव्यशास्त्रियों की कर्मभूमि कश्मीर रहा है। कल्हण अपनी राजतरंगिणी में कश्मीर के विषय में बताते हुए उसे पृथ्वी का सबसे मनमोहक प्रदेश कहते हैं-

"त्रिलोक्या रत्न सूः श्लाघ्या तस्या धनपर्नेसरित,

तत्र गौरी गुरुः शैलो, यत्तश्मिन्नपि मंडलम।" [147]

और वर्तमान! इक्कीसवीं सदी के इस दौर में यह कश्मीर एक रक्तरंजित क्षेत्र बन चुका है। साम्प्रदायिक उन्माद की जड़ें गहरे पैठ चुकी हैं। सामासिक संस्कृति वाला यह क्षेत्र आज धर्मों के बीच दरारों से अटा पड़ा है। आतंकवाद ने जनमानस को आक्रान्त कर दिया है। जहाँ केसर की क्यारी में बारूद बिछाया जा रहा है और बुरहान वानी जैसे आतंकियों की मौत को शहादत दिवस। कश्मीर की आज यही सच्चाई है। एक ऐसा कश्मीर जो रोता-बिलखता, अपमान-बेचैनी का शिकार होता, सरकारों की उपेक्षा और मानवाधिकार से वंचित है। एक सैलानी-दृष्टि कश्मीरी जन-जीवन के अंधेरों को नहीं देख पाती। जहाँ घाटी में रह रही अवाम अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्षरत है। कश्मीर का युवा वर्ग भटकाव का शिकार है। मिलिटेंसी, ड्रग्स, राष्ट्रीयता के प्रति आक्रोश उनके जीवन में छाए हुए हैं। मिलिट्री और मिलिटेंसी का तनाव कश्मीरियों के जीवन को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। रोजगार के अवसर न के बराबर हैं और ऐसे में कश्मीर स्वयं को पूरे देश से कटा हुआ महसूस करता है।

समसामयिक परिदृश्य में कश्मीर की असल समस्या है, परायेपन का बोध। 'कश्मीरनामा' पुस्तक में अशोक कुमार पाण्डेय इस सम्बन्ध में लिखते हैं,

---

[147] साहित्य भारती पत्रिका, जुलाई-सितम्बर अंक, 2018, पृ ०25

"ऐसा नहीं है कि परायेपन का बोध केवल कश्मीरी मानस में है। कश्मीरियों को बाक़ी भारत के लोग कितना अपना समझते हैं? उनके बारे में किस तरह सोचते हैं? एक सिरे पर वे लोग हैं जिनके लिए न मानवाधिकारों का कोई मतलब है न कानूनी प्रक्रियाओं का, वे हर तरह के दमन का समर्थन राष्ट्रवाद के नाम पर करते हैं। जिनकी समझ 'खीर देंगे- चीर देंगे' वाली वाणी में झलकती है। वे लोग भूल जाते हैं कि असंवाद का समाधान संवाद से ही हो सकता है, आक्रामकता से नहीं। दूसरी तरफ वे हैं जो बिना सोचे-समझे 'आत्मनिर्णय के अधिकार' का समर्थन करते हैं। इन्हें इससे कोई मतलब नहीं कि आत्मनिर्णय में 'आत्म' कौन होगा? कैसे निर्धारित होगा? उसका 'अन्य' कौन होगा? इस सवालों की उपेक्षा करने का नतीजा यही होना है कि घोर कट्टरपंथी, प्रतिगामी तत्त्व राजसत्ता और समाजतंत्र पर हावी हो जाएं।"[148] सामयिक परिदृश्य में कश्मीर के बिगड़े हालात और अनिश्चितता की स्थिति निश्चय ही विचारणीय है। कश्मीर में जिन मुद्दों को महत्वपूर्ण माना जा रहा है, उनके स्वरूप, कारण और उससे निजात पाने का संकल्पबद्ध प्रयास वर्तमान की न टाली जा सकने वाली मांग है। कश्मीर के शांत वातावरण में आए भूचाल और मुसीबत के इस दौर में कश्मीर समस्या और मुद्दों को नयी दृष्टि से देखे और समझे जाने की महती आवश्यकता है।

5.1 <u>आतंकवाद : स्वरूप, समस्या और समाधान</u>– वर्तमान में कश्मीर और आतंकवाद एक दूसरे का पर्याय बन चुके हैं। कश्मीर को आतंक का गढ़ बना दिया गया है। आतंक कश्मीर की नसों में यूं प्रवाहित हो रहा है कि उसे काबू कर पाना या खत्म करना अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रहा है। वैश्विक स्तर पर आतंकवाद आज एक बड़ी समस्या बन चुका है। विश्व के विकसित देश भी इस समस्या से जूझ रहे हैं। कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य में यह एक ज्वलंत मुद्दा है जिससे कश्मीरी जनमानस की जुड़ती व्यथाको चित्रित किया गया है।

आतंकवाद एक हथियार के रूप में अपनाया जा रहा है। इसका स्वरूप काफी जटिल है। "आतंकवाद पूर्वनियोजित रूप से किसी खास राजनीतिक

[148] अशोक कुमार पाण्डेय, कश्मीरनामा, पृ०8

विचारधारा या मजहबी लक्ष्य की पूर्ति के लिए की गई हिंसात्मक कार्रवाई है। आतंकवादी गतिविधियाँ लंबे काल से राजनीति का अंग रही हैं, पर आतंकवाद और हिंसा की राजनीति को पर्यायवाची नहीं कहा जा सकता। पहले जिन स्वाधीनता सेनानियों को आतंकवादी कहा जाता था उनके निशाने पर आम नागरिक नहीं होते थे। आतंकवाद युद्ध से भी भिन्न एक खुफिया चरित्र वाली कार्रवाई है।"[149] आतंकवाद मुख्यतः निर्मम तरीकों को अपनाता हुआ इसे जेहाद के पक्ष में मानता है। उनके लिए यह एक मुक्ति-संग्राम की तरह हो जाता है। कश्मीर में भी कमोबेश यही स्थिति है। एक क्षेत्र विशेष को आजाद कराने के पक्षधर कश्मीर के तथाकथित जंगजू इस नैतिकता को नहीं मानते कि उनके क्रूर हमलों का शिकार कोई राज्यतंत्र का अंग हो रहा है या जनसाधारण। यह गतिविधि किसी समूह द्वारा अपने आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं विचारात्मक लक्ष्यों की प्रतिपूर्ति के लिए गैर सैनिक अर्थात् आम नागरिकों को भी निशाना बनाते हैं। विश्व राजनीति के संदर्भ में आतंकवाद की वैचारिकता के तार नीत्शे, सात्र जैसे उत्तर साम्यवादी विचारकों की देन है जो हिंसा को समाज में परिवर्तन लाने का एक माध्यम मानते हैं। उनका कहना है कि विनाश से ही नवसंरचना की उम्मीद की जा सकती है।

भारत में आतंकवाद पर रोक लगाने के लिए वर्ष 1989 में आतंकवाद निरोधक अधिनियम भी लागू किया गया जिसके तहत ऐसे कार्यों को आतंकवाद की श्रेणी में रखा गया जो वैचारिक रूप से स्थापित सरकार को भयाक्रांत करने के उद्देश्य से या समाज के वर्ग विशेष को अलग करने की दृष्टि अथवा उन्हें आहत करने की प्रवृत्ति लिए हों। कश्मीर में यदि आतंकवाद के वर्तमान रूप को समझना है तो इसकी पृष्ठभूमि से अवगत होना अत्यन्त आवश्यक है। कश्मीर में आतंकवाद की उत्पत्ति के पीछे अनेक कारण रहे हैं। सत्तासीन सरकारों की क्रियाशीलता और अदूरदर्शिता, सुरक्षा की दृष्टि से कमजोर सैन्यबल, चुनावों में हुई भयानक धांधली के कारण आमजन में उपजा असंतोष और पड़ोसी देशों से मिलने वाला प्रशिक्षण व प्रलोभन आतंक को जन्म देने वाला रहा। आतंकवाद की

[149] हिंदी साहित्य ज्ञानकोश, पृ० 403

शुरुआत के लिए 1987 में हुए चुनावों का दौर एक अहम पड़ाव माना जाता है। ऐसा नहीं था कि इससे पहले आतंकी सक्रिय नहीं थे परंतु 1987 का चुनाव एक निर्णायक मोड़ रहा। जिसके उपरान्त आतंकवाद का ऐसा घिनौना चेहरा सामने आया जिसने पूरी मानवता को शर्मसार कर दिया।

पाकिस्तान के सैनिक तानाशाह जियाउल हक ने पाकिस्तान में राष्ट्रपति पद पर रहते पाक-प्रायोजित आतंक को बढ़ावा दिया। कश्मीरी मुस्लिम लड़कों को बहकाकर उन्हें आतंकवादी बनाया जाने लगा। इस बीच कश्मीरी आवाम के साथ हो रही शासन की ज्यादतियों ने जले पर नमक का काम किया और साम्प्रदायिक कट्टरता अपना आकार लेने लगी। 1987 के चुनाव में राजीव गांधी और फारुख अब्दुल्ला ने मिलकर भारी बेईमानी की। चुनाव में भाग लेने वाली यूनाइटेड फ्रंट पार्टी के मोहम्मद युसूफ शाह को बड़े अंतर से जीतने के बाद भी हारा घोषित कर दिया गया। मतगणना अधिकारी बीच से ही निराश होकर चले गये। कश्मीर की आवाम सड़कों पर आ गई और विरोध शुरू हो गया तो पुलिस ने युसुफ शाह को गिरफ्त में लेकर खूब प्रताड़ित किया। 'इकबाल' उपन्यास में जयश्री रॉय इस घटना का जिक्र करती हैं, "मोहम्मद यूसुफ शाह को गिरफ्तार किया गया, लॉक अप में पीटा गया। यासिन मलिक उनके पोलिंग एजेंट थे...। आप देख लीजिये मुहम्मद युसूफ शाह पाकिस्तान के टॉप मोस्ट मिलिटेंट हैं आज- ये सब उन्हीं नाइंसाफियों का नतीजा है। साथ में कश्मीरी नौजवानों के सामने अफगानिस्तान, ईरान का नज़ीर तो था ही, फिर वहाबी मूवमेंट जो सऊदी अरब में अब्दुल वहाबी ने सालों पहले शुरू किया था, ने भी हौसला अफजाई की। पाकिस्तान तो हमेशा से बैठा ही था, उसने इस मौके का फायदा उठाया। लोगों के मज़हबी जज़्बातों को भड़काया, नौजवानों के हाथों में बंदूकें थमाई, बेतरह पैसा खर्च किया, दहशतगर्दी को काफी बढ़ावा दिया... इधर घाटी में फौज की ज्यादतियां, दिल्ली सरकार की कमजोर पॉलिसी, दोगला रवैया- सबकुछ मिलकर हालात बद से बदतर होते चले गये।"[150]

---

[150] जयश्री रॉय, इकबाल, पृ॰47

कश्मीर में आतंकवाद को बढ़ावा देने में दो कारण मुख्य थे, पहला यह कि हथियारों की उपलब्धि बहुत आसान कर दी गयी और दूसरा, प्रशिक्षण की सुविधा की व्यवस्था भारत-पाक सीमा के आसपास की गयी। सीमा रेखा का बड़ा हिस्सा असुरक्षित था जिसे भेद्य कर कश्मीरी युवाओं को आजाद कश्मीर में सैन्य प्रशिक्षण दिया जा रहा था। हालांकि पाकिस्तान ने इस सम्बन्ध में अपनी सक्रियता कभी स्वीकार नहीं की। 'आतंक की दहशत' उपन्यास में लेखक लिखता है, "मुझे उस मुस्लिम के शब्द याद आए, जिसने उग्रवाद के शुरू होने के समय सुनील को बताया था, "तुम देखोगे हम लोग जल्दी ही अपनी फौज बनाएंगे। हम लोग, अपने लड़कों को सरहद पार अपने भाइयों से ट्रेनिंग दिला रहे हैं।" जब सुनील ने उसे बताया कि यह उसका सपना था, क्योंकि सरहद पार जाना आसान नहीं था तो उसने पलटकर कहा, "अरे बेटा, ऐसा क्या है, जो पैसों से खरीदा नहीं जाता? हर एक आदमी की कीमत है। आजकल सरहद को पार करवाने का एक आदमी का रेट 200 रुपए है।"[151] इसी उपन्यास में आतंक के दौर में मानसिक उतार-चढ़ावों से जूझ रहे कश्मीरी लोगों का विवरण भी है। जहाँ आतंकवाद को तत्कालीन समय में एक नये रोमांचक कारोबार की तरह देखा जाने लगा, जिसके लिए किसी विशेष निवेश की जरूरत नहीं बल्कि एक बंदूक व एक रोबदार आवाज काफी थी। ऐसे माहौल में कश्मीरी जनता बहुत तनाव में थी।

कश्मीर में वक्त के साथ बहुत से आतंकी संगठनों की गतिविधियां शुरू हुईं। इनमें से एक है, 'जम्मू एंड कश्मीर नेशनल लिबरेशन फ्रंट' जिसे जे.के.एल.एफ. के रूप में जाना जाता है। यह पार्टी 1965 में पीओके में अमातुल्ला खान, मकबूल भट्ट द्वारा 'प्लेबिसाईट फ्रंट' नाम से बनायी गयी थी। यह जनमतसंग्रह के वायदे के लिए सशस्त्र संघर्ष को महत्त्व देता है। जे.के.एल. एफ. के अलावा घाटी में जो संगठन सक्रिय हैं, उनमें लश्कर ए तैयबा (पाकिस्तान प्रेरित आतंकी संगठन), जैश-ए-मुहम्मद (पाकिस्तान में स्थित जिहादी उग्रवादी संगठन), हिजबुल मुजाहिदीन (कश्मीर का एक अलगाववादी संगठन), हरकत- मुजाहिदीन (पाकिस्तान

---

[151] तेज. एन. धर, आतंक की दहशत, पृ॰72

स्थित जिहादी समूह), टी.आर.एफ. (द रेजिस्टेंस फ्रंट, पाकिस्तान का नया आतंकी संगठन) और जमात-ए-इस्लामी (धार्मिक कट्टर संगठन) प्रमुख हैं।

निश्चय ही एक ऐसी स्थिति जिसमें किसी भी वक्त बात जान पर बन आये या कहीं की जनता लगातार लम्बे-लम्बे कर्फ्यू के कारण अपने घरों में कैद हो, मानसिक भय व दबाव की स्थिति बन ही जाती है। आतंकियों ने कश्मीर में लगातार हत्या, अपहरण, गोलीबारी के हादसों को अंजाम दिया जिससे आमजन सुरक्षा व्यवस्थाओं की असमर्थता को समझते हुए स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगे थे। 'वितस्ता का जहर' कहानी में इस मनोस्थिति का जिक्र है, "दादी आतंकवाद शब्द से अपरिचित हैं, प्रलय और रौरव नरक की बातें उसने सुनी हैं। कल्याण पढ़ती हैं न! अभी परसों खिड़की का परदा जरा-सा खिसका कर बीच राह पड़ी खून से लथपथ लाश देखकर उसे लगा कि कोई भयानक दैत्य वादी में घुस आया है, एक-एक कर उठा लेगा, लोगों को। लोगों की नीयत में फर्क जो आ गया है।"[152]

कश्मीर में आतंकवाद चरमपंथी संगठनों और इस्लामिक राज्य की स्थापना की कट्टरपंथी विचारधारा लिए हुए था जिसने कश्मीर की आबोहवा को पूरी तरह बदल दिया। हत्याओं का सिलसिला लगातार जारी रहा। कश्मीर के एक आम आदमी से लेकर सरकारी कर्मचारी, पुलिस, फौज, सद्भावी मुस्लिमों, प्रभावी व्यक्तित्वों पर आतंकवाद अपना शिकंजा कसता जा रहा था। आगजनी, गोलीबारी, हत्याएं इतनी आम हो गयी थीं कि कश्मीरी उसे अपनी रोज की जिन्दगी का हिस्सा मान बैठे थे।

'पाषाण युग' उपन्यास की लेखिका उस बर्बरतापूर्ण माहौल की तुलना आदिम युग से करती हैं और कश्मीर को इक्कीसवीं सदी का न मानते हुए वापस पाषाण युग के समय जैसा देखती हैं, "दिन के कुछ घंटों को छोड़कर दिन-रात का कर्फ्यू जारी था और शहर नए सिरे से आदिम युग में चला गया था... हर घर की खिड़की-दरवाजें चौबीस घंटे बंद रहने लगे थे और मौसम बदलता जा रहा था।

[152] चन्द्रकान्ता, कथानगर, पृ० 167

एयरफोर्स के चार अफसरों की दिनदहाड़े हुई हत्या के बाद राजू को भी डर के कीड़े ने पकड़ लिया था। उसने घर से बाहर कहीं भी जाना पूरी तरह से छोड़ दिया था... लगभग पचीस साल के मुखर जीवन के बाद रफ्तार का गला घोट देना पड़ा था और बृजमोहन जी को असामान्य रूप से नींद आने लगी थी... अखबारबंद करने से पहले वे गहरी मानसिक उथल से गुजरे थे। रफ्तार का सबसे बड़ा आकर्षण उनका तीखा संपादकीय हुआ करता था और संपादकीय लिखना उन्होंने सिरे से बंद कर दिया था। अब उन्हें तीन-तीन, चार-चार हत्याएँ कर चुके आतंकवादियों की तस्वीरें छापनी पड़ती थीं। उन्हें फैज़ अहमद फैज़ के क्रांतिकारी काव्य से सजाना पड़ता था।"[153]

धार्मिक कट्टरता सदा ही धर्म विशेष पर केन्द्रित होती है। धर्म की धुरी पर घूमने वाली यह भावना भाईचारा, स्नेह और सद्भाव जैसे मूल्यों से सदा दूर रहती है। आतंकवाद के आने से इस कट्टरपंथ का कश्मीर में प्रभाव पड़ा और इसकी वजह से शिक्षा, पहनावे, रहन-सहन का सामान्य ढंग से चला आ रहा तरीका तेजी से बदलने लगा। कश्मीर के माहौल को एक धर्म विशेष के अनुरूप बनाया जाने लगा। इसका पालन न करने पर दोनों ही समुदायों, चाहे वो मुस्लिम हों या हिन्दू के खिलाफ आतंकी कड़ा रुख अपना रहे थे। 'पाषाण युग' उपन्यास में नसीम के पति की हत्या मात्र उसके सौहार्दी स्वभाव के कारण की गयी। मकबूल शेरवानी समानधर्मा होने के बावजूद मार दिया गया। कश्मीरी पंडितों की सहायता करने वाले या उनके पक्ष में बोलने वाले न जाने कितने बेगुनाह मुस्लिम परिवारों को मार दिया गया।

कश्मीर में मुजाहिदीन, फियादीन और मिलिटेंट के बीच कश्मीर की अवाम लगातार पिस रही है। फियादीन इस्लाम के नाम पर अपने तन के इर्द-गिर्द बंदूक, आरडीएक्स आदि बांधकर शहादत देते हैं। इस्लाम को न मानने वाला उनके लिए काफिर है जिसे मार देना चाहिए। इस प्रकार धर्म की संकीर्णता पर आधारित यह

---

[153] संजना कौल, पाषाण युग, पृ०33

मवाद कश्मीर को लगातार रोगी बना रहा है। रूपकृष्ण भट्ट की अनूदित कहानी 'धत तेरे की' में मजीद गोल इसी विकृति का शिकार है, "कब हमें मिलेगी वो आजादी...! क्या तब भी इसी तरह दिनभर वहां मेहनत करनी पड़ेगी? नहीं-नहीं, मस्जिद में तो ज़ोर दे कर कहते हैं कि यह जहन्नुम है और वह जन्नत... यहाँ इबलीस है, काफिर हैं, जबकि वहाँ खुदा-दोस्त हैं। यहाँ झूठ और हराम है, वहां सचाई और हलाल है। ऐ खुदा! हमें उस दुनिया को दिखा दे जो हमको इस जहन्नुम से आज़ाद करे।"[154]

कश्मीर के भयग्रस्त माहौल की परिणति वहां की अवाम में मानसिक विक्षिप्ति का भाव पैदा करने वाली रही। आतंक का सबसे बड़ा शिकार वहाँ की स्त्रियां हुईं। कुछ जो आतंक की भेंट चढ़ गयीं और कुछ जो लगातार चढ़ती आ रही हैं। स्त्रियों के साथ आतंकवादियों द्वारा यौन हिंसा, अपहरण व हत्या के अनेकों मामले हुए। आतंकी झुंड बनाकर कश्मीरियों के घर में घुसते, उनसे अपना सेवा-सत्कार कराते और उन्हीं की स्त्रियों पर कहर बरसाते। मुताअ आम हो गया, जिसमें यौन संबंध बनाने के पहले इस्लाम के डर से वे स्त्री से कहने मात्र के लिए निकाह पढ़ लेते। ऐसे में अनगिनत भ्रूण हत्याएं भी हुईं। 'काली बर्फ' कहानी में स्त्री की दयनीय दशा का चित्रण है, "चारों ओर आँधी उठी कि सदियों पाले विश्वास चरमराकर ढह गए। माँ, बहन, बेटी महज एक लावारिस औरत रह गई, एक भोग्या। दीन धर्म की आड़ में इनसानियत का खून हो गया।"[155] इस प्रकार आतंक का दौर कश्मीर पर काली बर्फ की तरह गिरा है और जिसके आगोश में कश्मीर आज भी है।

कश्मीर की लगातार खराब होती जा रही स्थिति और बढ़ती दहशत को नियंत्रण में लाना समय की माँग है। क्लैशनकोव, हिंसा, हड़तालें और तलाशियों के चलते आ रहे इस सिलसिले से निजात पाना आवश्यक है। आतंकवाद जंगल में लगी हुयी आग की तरह बढ़ता ही चला जा रहा है। विनाश के इस अभिशाप

---

[154] रूपकृष्ण भट्ट, धत तेरे की, प्रगतिशील वसुधा, अंक-14, पृ० 49

[155] चन्द्रकांता, काली बर्फ, पृ०154

का अन्त जरूरी है। मधु कांकरिया के उपन्यास 'सूखते चिनार' में वह लिखती हैं, "लगभग 75 वर्षों से कश्मीर ये मार-काट, हिंसा, बम धमाके देख रहा है। ऋषि कश्यप की भूमि जहाँ केवल देव वार्ताएं हुआ करती थीं, जहाँ वेदों और उपनिषदों का ज्ञान हुआ। जिसे धरती का स्वर्ग कहा जाता था। बुद्ध की शांति जहाँ निवास करती थी वहाँ अहिंसा का 'अ' जैसे कहीं विलीन हो गया। उपन्यास का पात्र संदीप कश्मीर को एक बार फिर उसके पुराने रूप में देखना चाहता है। वह मानवीयता और धर्म के सत्व रूप को कश्मीर में अठखेलियाँ करते हुए देखना चाहता है।"[156] इसी उपन्यास का पात्र हमीद अपनी भूख से निजात पाने के लिए आतंकी बनने का रास्ता इख्तियार करता है।

स्पष्ट है कि कश्मीर में आतंकवाद पर तब तक लगाम नहीं लगाई जा सकेगी जब तक एक सार्थक संवाद न हो। कश्मीरी अवाम की उम्मीदों, आकांक्षाओं एवं मुश्किलों को समझना जरूरी है। उनसे ऐसा मजबूत एवं विश्वसनीय सम्बन्ध बनना आवश्यक है जहाँ वे आतंक की ओर झुकने से बचाए जा सकें। कश्मीरियों का भारतीय शासन से हुए मोहभंग से उबरना जरूरी है। उनके विश्वास को पुनः हासिल करना होगा और यह तब संभव होगा जब उन्हें उन्नति व प्रतिनिधित्व के पर्याप्त अवसर दिए जायेंगे। अपने समुदाय से होने वाला प्रतिनिधित्व उन्हें प्रेरित करेगा। कश्मीरियों को जहालत और गरीबी से बाहर लाना जरूरी है। उन्हें आर्थिक उन्नति के अवसर उपलब्ध कराये जाने चाहिए और राज्य में ही नौकरियों के होने से यह संभव हो सकेगा। प्रायः इस्लामी चाबुक या आर्थिक आवश्यकताएँ ही उन्हें आतंकी बनने को विवश करती हैं।

कश्मीरी आतंकवाद अक्सर असंतोष की भावना या शोषण से उपजा है। अतः उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार एवं आर्मी का उचित व्यवहार एक सकारात्मक कदम हो सकता है। वर्तमान में ऐसे बहुत से कश्मीरी हैं जो यह समझ चुके हैं कि आतंक कभी भी उनकी जिन्दगी में चल रही समस्याओं का

---

[156] कश्मीर पर केन्द्रित उपन्यास : कथा आलोचना, अनुसंधान पत्रिका, अप्रैल-सितम्बर अंक 2022, पृ०78

समाधान नहीं हो सकता और यह एक उम्मीद जैसा है। भारत-पाक सम्बन्धों का सुधार ही कश्मीर में आतंकवाद खत्म करने का महत्त्वपूर्ण जरिया है।

अशोक कुमार पाण्डेय इस विषय में विचार करते हैं, "कश्मीर में शान्ति के लिए सबसे जरूरी है कि वहाँ के विभिन्न पक्षों से लगातार बातचीत और धारा 370 को लेकर एक सहमति की स्थिति बनाते हुए देश के दीगर हिस्सों में इसे लेकर लोगों को सही पक्ष बताया जाए और कट्टरपंथी ताकतों को इसे नफरत फैलाने से औज़ार की तरह उपयोग करने से रोका जाए। जितनी जरूरत उसके एक स्थाई राजनैतिक हल को ढूँढे जाने की है, उतनी ही वहाँ रोजगार के नए और पर्याप्त साधन उपलब्ध कराने के लिए पारम्परिक शिल्पों के विकास से लेकर आधुनिक उद्योग धंधे लगाने की संभावना तलाशी जानी चाहिए, राष्ट्रीय हित और सुरक्षा के साथ-साथ कश्मीर को एक समृद्ध राज्य बनाये जाने की जरूरत है।"[157] यह स्पष्ट है कि वर्तमान में आतंकाकार दैत्य के अंत से ही कश्मीर में सुखद एवं समृद्ध समय को वापस लाया जा सकता है और इस हेतु संकल्पबद्धता की महती आवश्यकता है। इस परिपेक्ष्य में आतंकवादियों के समर्पण और पुनर्वास से जुड़ी नीतियों को प्रभावी बनाना भी आवश्यक है।

5.2 मानवाधिकार के प्रश्न एवं हकलाती अभिव्यक्तियां-

कश्मीर और मानवाधिकार वर्तमान में पहेली की तरह हैं जिसे सुलझा पाना मुश्किल प्रतीत होता है। कश्मीर में मानवाधिकार के हनन की खबरें वास्तविक स्थिति पर विचार करने को विवश करती हैं। जम्मू और कश्मीर में यह एक अहम मामला है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार, "मानवाधिकार, वे अधिकार जो किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के हैं, केवल मानव होने के कारण या अंतर्निहित मानवीय भेद्यता के परिणामस्वरूप, या क्योंकि वे एक न्यायपूर्ण समाज की संभावना के लिए आवश्यक हैं। मानवीय एजेंसी को बढ़ाने या मानव हितों की रक्षा करने के लिए सोचे गये मूल्यों या क्षमताओं की एक विस्तृत निरंतरता को संदर्भित करते हैं और चरित्र में सार्वभौमिक घोषित किए जाते हैं,

---

[157] अशोक कुमार पाण्डेय, कश्मीरनामा, पृ० 431

कुछ अर्थों में वर्तमान और भविष्य के सभी मनुष्यों के लिए समान रूप से दावा किया जाता है।"[158]

वर्तमान में कश्मीर इन सभी अधिकारों से वंचित है और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह समस्या भारत सरकार की जवाबदेही का विषय बन चुकी है। यह हनन सामूहिक हत्याओं, बलात अपहरण, बलात्कार, यौन हिंसा और अभिव्यक्ति की हकलाती स्थिति तक व्याप्त है। कश्मीर के नागरिकों द्वारा वहाँ तैनात भारतीय सेना, सी.आर.पी.एफ. और बी.एस.एफ. पर लगातार मानवाधिकार हनन के आरोप लगे हैं और साथ ही इस संदर्भ में कश्मीर में फैली मिलिटेंसी को भी जिम्मेदार माना गया है।

कश्मीर के लोग सैन्यबलों पर जबरन तलाशी, गिरफ्तार करने और लोगों को गायब कर देने का आरोप लगाते रहे हैं और दूसरी तरफ सेना भी अपने स्वयं के मानवाधिकारों को स्पष्ट करने की माँग करती रही है। सेना का दावा है कि मानवाधिकार संस्थाएं सैन्यबलों को कश्मीरी जनता के शत्रु के रूप में देखती हैं और अनेकों बार उनके सही होने पर भी मानवाधिकार के झूठे केस उन पर वर्षों चलाये जाते हैं। ऐसे में उनके स्वयं के मानवाधिकारों पर तनिक गौर नहीं किया जाता। कश्मीर का एक और विस्थापित समुदाय भी है जो स्वयं को कब का मानवाधिकारों से वंचित महसूस कर रहा है और कार्यवाही की उम्मीद रखता है। ऐसे में मानवाधिकारों का कश्मीर में कोई एक नियत रूप नहीं है, हर वर्ग के लिए मानवाधिकार के अपने अलग मायने है। कश्मीर क्षेत्र के लोगों की तुलना में जम्मू या लद्दाख के निवासियों के अधिकारों की बात उठने पर मानवाधिकार संगठन अक्सर चुप्पी साध लेते हैं। ऐसे में इन संगठनों का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं उभर पाता है। कमोबेश ऐसा प्रतीत होता है कि मानवाधिकार का हनन सिर्फ कश्मीर घाटी में ही हो रहा है और उक्त संगठनों का कर्तव्य सिर्फ उनके हक में आवाज उठाने तक सीमित है।

---

[158] बर्न्स एच. वेस्टन, मानव अधिकार, एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, 2 नवंबर, 2023

कश्मीर केंद्रित हिन्दी कथा साहित्य में मानवाधिकारों के हनन से उत्पन्न तनाव और प्रश्नों को बखूबी उकेरा गया है। कथाकार मानवाधिकार एवं वैचारिक उद्वेलनों को अंकित करते हैं। कश्मीर में मानवाधिकारों के हनन का इतिहास देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत-पाक विभाजन के बाद की विपरीत परिस्थितियों के दौर में 1987 के आम चुनावों में हुई धांधली ने कश्मीर में आतंकवाद को जन्म दिया। आतंकवाद और कश्मीर में तैनात सैन्यबलों के बीच बढ़ती हिंसक एवं प्रतिक्रियात्मक कार्यवाहियों ने कश्मीर का अमन छीन लिया और ऐसी स्थिति का विपरीत प्रभाव कश्मीर में मानवाधिकारों के हनन के रूप में देखा गया। मानवाधिकारों की कश्मीर में यह स्थिति अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चिंता का विषय बन चुकी है। भारत की लोकतांत्रिक छवि पर यह एक बड़े प्रश्न की तरह है कि क्या कश्मीर में इस समस्या से निजात पाया जा सकेगा? क्या स्थितियों के नियन्त्रण में आने की संभावना है? कश्मीर घाटी में साम्प्रदायिकता और सत्ता के आंकड़े सदा से घाटी के जनजीवन को प्रभावित करते रहे हैं। 'कश्मीर का भविष्य' पुस्तक में सत्येन्द्र रंजन लिखते हैं, "जन संघर्षों के दमन के लिए सुरक्षा बलों का दुरुपयोग की सीमा तक उपयोग तो एक आम बात बन ही गयी थी, आतंकवाद को आश्रय भी दिया गया तथा सांप्रदायिक एवं जातीय आधार पर जोड़-तोड़ भी होने लगी।"[159] वर्तमान में कश्मीर घाटी के निवासी नागरिक स्वतंत्रता के लिए उत्पन्न हुए खतरे से आक्रोश में हैं। मानवाधिकार संगठन इसी से कश्मीरियों के बचाव हेतु प्रयासरत हैं। राज्यतंत्र की निरंकुश प्रवृत्ति पर रोक लगाना इन संगठनों का मूल उद्देश्य है। ऐसे में प्रायः मानवाधिकार संगठनों को राष्ट्रविरोधी मान लिया जाता है।

कश्मीर में मानवाधिकार संगठनों की भूमिका एवं भारतीय राज सत्ता की प्रतिक्रिया के विषय में सत्येन्द्र रंजन लिखते हैं, "मानवाधिकार संगठनों ने कश्मीर की स्थिति के संबंध में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की हैं। उनमें वहाँ की वास्तविक

---

[159] सं. राज किशोर, कश्मीर का भविष्य, आज के प्रश्न-5, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1994, पृष्ठ 73

स्थिति का ब्यौरा रहा है। इससे भारतीय राज सत्ता के लिए संकट पैदा हुआ है। इस संकट के कारण नयी अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में छिपे हैं। इस संकट से कैसे निकलें- इस प्रश्न का भारतीय राज सत्ता के पास जवाब नहीं है। उसी कारण उसने मानवाधिकार संगठनों को अपनी उक्त प्रतिक्रिया का निशाना बनाया है। उसने भारतीय मध्यवर्गीय मानस में यह बात बैठाने में एक हद तक सफलता पा ली है कि कश्मीर में राष्ट्रीय अखंडता की रक्षा की जो लड़ाई वह लड़ रही है, उसमें मानवाधिकार संगठन उसका पक्ष कमजोर कर रहे हैं।"[160]

कश्मीर में स्थितियाँ पिछले कई दशकों से बिगड़ती ही आ रही हैं। 1987 के चुनाव में हुई धांधली के बाद आतंक ऐसा परवान चढ़ा कि सत्ता नियंत्रण बना पाने की स्थिति में नहीं रही। ऐसे में कश्मीर में तैनात सुरक्षा बलों की अनियंत्रित कार्यवाहियों की घटनाएं मानवाधिकार की कश्मीर में असली हालत पर प्रश्न चिन्ह लगाती हैं? किसी भी क्षेत्र के निवासियों को शक के आधार पर 'सामूहिक दंड' देने के मामले, नागरिकों के जुलूस पर अकारण गोलियां चलाने, घायलों को चिकित्सा मुहैया कराने में जानबूझकर देरी करने, पूछताछ के बाद संदिग्ध लोगों को गिरफ्त में लेने और बाद में उनके लापता हो जाने के ढ़ेरों केस मानवाधिकार हनन हेतु सैन्यबलों को मुख्य रूप से जिम्मेदार मानते हैं।

सुरक्षा बलों द्वारा प्रयोग की जाने वाली पैलेट गन कश्मीरियों के लिए जानलेवा बन चुकी है और पैलेट गन के प्रयोग से आंखों की रोशनी जाने के कई केस हैं। एक मुख्य विरोध आर्म्ड फोर्सेज स्पेशल पावर एक्ट को लेकर है जो सैन्य बलों को असीमित शक्ति प्रदान करने वाला माना जाता रहा है। हिरासत में लिए गए लोगों पर टॉर्चर और उनकी मौत के मामलों में लगातार बढ़ोत्तरी होती रही है। कश्मीरी महिलाओं से छेड़छाड़ एवं बलात्कार के आरोप भी पर्याप्त संख्या में लगाये गये। 'शिगाफ' उपन्यास में मनीषा कुलश्रेष्ठ सुरक्षाबलों के असंयमित रवैए के विषय में लिखती हैं, "मसलन निहत्थे जुलूसों पर गोलीबारी, दूसरे किस्म के

---

[160] वही, पृष्ठ 75

शोषण, शिनाख्त परेड़ों में पकड़कर ले जाना फिर टॉर्चर करना या थर्ड डिग्री देना। वो भी बिना किसी जवाबदेही के, मानो सारे हक उनके पास हों!"[161]

कश्मीर में तैनात सुरक्षाबल आरोपों पर प्रतिक्रिया देते हुए इसे मानवाधिकार संगठनों की अधूरी कार्यवाही मानते हैं। उनका मानना है कि ये संगठन सुरक्षाबलों को हमेशा से कश्मीरियों का शत्रु समझते हैं और उनकी तनिक कड़ाई को भी हयूमन राइट कमीशन वाले मुद्दा बना देते हैं। कश्मीर की स्थिति, देश के अन्य किसी भी राज्य की तुलना में असामान्य है। इसका एक बहुत बड़ा कारण वहां पर फैला हुआ आतंकवाद है जिससे निजात पाने के लिए सुरक्षाबलों को विवश होकर सुरक्षा हेतु कड़े कदम उठाने पड़ते हैं। ऐसे में कई बार उनकी कार्रवाइयों का शिकार अनजाने में निर्दोष व्यक्ति भी हो जाते हैं। इन स्थितियों में सैन्यबलों के मानवाधिकारों पर विचार करना भी जरूरी हो जाता है।

'शिगाफ' उपन्यास में श्रीनगर यात्रा के दौरान अमिता को मिले पदस्थ मेजर की बातचीत के माध्यम से समझा जा सकता है, "जो यहाँ हैं, उन्हें क्या मिलता है परिवार से दूरी! जगलों की खाक्... चप्पे-चप्पे पर बिछी बारूदी सुरंगों पर सैर, राइफल थामे-थामे घंटों लम्बी ड्यूटी पर चौकन्ने बने रहना... अपनी ही नहीं, दूसरे की जान की जिम्मेदारी अपने कांधों पर लिए। उनके मानव अधिकारों का क्या? क्या वे मानव नहीं है... बलि के लिए बंधे हुए बकरें हैं? डिफेन्स इज ए सेक्रेड काउ। वो तभी इज्ज़त करेंगे जब तक आप उनके लिए जान देकर उनकी जान न बचा दें। बहुत बड़ी 'फैलेसी' है यह।"[162]

कश्मीर के हालात सुरक्षा की दृष्टि से बदतर हैं। ऐसे में आर्मी, आतंकियों के निशाने पर है। 'कथा सतीसर' में चन्द्रकांता लिखती हैं, "आजकल बी.एस.एफ. और आर्मी सेंटर्स पर धड़ल्ले से हमले हो रहे हैं। जवानों का खून वादी में बह रहा

---

[161] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ. 71

[162] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ 0 81

है। हयूमन वायलेशन वाले आँखे बन्द किए बैठे हैं।"[163] कश्मीर की सुरक्षा कर रहे इन जवानों को कई बार नेता अपने स्वार्थ भुनाने के लिए मानवाधिकार आयोग और एमनेस्टी जैसी संस्थाओं के आगे खड़ा कर देते हैं। इस प्रक्रिया में सेना का मनोबल टूटता है और वे आतंकी कार्यवाहियों से बचना चाहते हैं। उनके लिए परिस्थितियाँ काफी चुनौतीपूर्ण होती हैं।

मानवाधिकार किसी भी समुदाय के बुनियादी अधिकार हैं, जो गरिमा, निष्पक्षता, समानता, सम्मान और स्वतंत्रता जैसे मूल्यों को लिए हुए हैं, परंतु यह बात ऐसे कश्मीरियों के पक्ष में आज भी नहीं है जो वहां से जबरन विस्थापित किए गए। उनके मानवाधिकारों को लेकर कोई मजबूत आवाज़ नहीं उठायी गयी। मानवाधिकार संगठनों के कान पर जूं तक नहीं रेंगी। इससे भी अधिक दुःखद यह है कि अभी भी वे इन संगठनों की चिंता का विषय नहीं बन पाये हैं।

मानवाधिकार विहीन विस्थापित कश्मीरियों के विषय में सुधाकर अदीब लिखते हैं, "बहुसंख्यक मुसलमान नागरिक जब किसी हिंसा या उत्पीड़न के अनुभव से गुज़रते हैं तो उनके मानवाधिकारों के प्रश्न पर मानवाधिकार संगठन, अखबार, टी.वी., न्यूज़ चैनल्स, नेता और अभिनेता, बुद्धिजीवी सभी जमीन-आसमान एक कर देते हैं। वहीं जब उसी कश्मीर में अल्पसंख्यक हिन्दू-सिख-बौद्ध नागरिकों पर बर्बर अत्याचार हुए, उनके नरसंहार की तमाम घटनाएं हुईं इन्हीं दोगले लोगों ने या तो चुप्पी साध ली या उसका इतना हल्का-फुल्का संज्ञान लिया मानो इन लोगों की जान की कोई विशेष कीमत ही न हो।"[164]

किसी भी देश की लोकतांत्रिक छवि वहाँ मानवाधिकारों की स्थिति के अनुरूप बनती है। सत्ता का कर्तव्य होता है कि उसकी गतिविधियों से किसी भी प्रकार नागरिक अधिकार प्रभावित न हों परंतु जब सत्तासीन राजनीतिक गतिविधियों से मानव अधिकार उपेक्षित होते हैं तो आमजन में स्वाभाविक तौर पर प्रतिरोध उत्पन्न होता है। कश्मीर में मानवाधिकार हनन का सबसे बड़ा वाकया अनुच्छेद

---

[163] चन्द्रकांता, कथा सतीसर पृ० 587

[164] सुधाकर अदीब, बर्फ और अंगारे, पृ०197

370 और 35(A) के निरस्तीकरण के दौरान हुआ। 5 अगस्त, 2019 को लिया गया यह फैसला एक गैर संवैधानिक प्रक्रिया से हुआ। एक राज्य विशेष के विशेषाधिकार को निरस्त करने से पूर्व उनकी राय जानना तो दूर, उन्हें भनक भी नहीं लगने दी गयी। उनकी स्वतंत्रता व संचार बाधित किया गया। कश्मीर में कर्फ्यू जैसे हालात बना दिए गए। फोन, इंटरनेट बंद करके उनकी किसी भी राय को न सुनना एक तरफा फैसला लेने जैसा निर्णय था। उन्हें उनके घरों में ही कैद कर दिया गया।

रवींद्र प्रभात लिखते हैं, "भारत सरकार ने ऐतिहासिक-फैसला लेते हुए जम्मू-कश्मीर से विशेष राज्य का दर्जा देने वाला अनुच्छेद 370 को खत्म कर दिया। इसके तहत राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों (जम्मू कश्मीर और लद्दाख) में बांट दिया गया। साथ ही, हजारों लोगों को डिटेंशन में रखा गया, जिनमें कई नेता और वह लोग भी थे, जो जनता को मोबिलाइज कर सकते थे।"[165]

कश्मीर में 5 अगस्त, 2019 को लिया गया यह फैसला तमाम विरोधों और प्रतिक्रियाओं से घिरा रहा। इसे संवैधानिक मूल्यों को ध्वस्त करने वाला एक निर्णय बताया गया जो राजनैतिक तानाशाही से प्रेरित था। यह तानाशाही कश्मीर में एक अदृश्य गुलामी की झलक दिखाने वाली थी। जरूरी अधिकारों से दूर इस समुदाय में यह फैसला उनकी मनोस्थिति को बुरी तरह प्रभावित कर गया। कश्मीर में एक प्रकार की नाकाबन्दी कर दी गयी। ऐसे में आरिफा एविस लिखती हैं, "हम जिस लोकतांत्रिक देश में रहते हैं, उस देश में सारे मानवाधिकारों को ताक पर रखकर जब सत्ता दमन करती है तो प्रतिरोध की लहर अपने आप उठती है। जनता में विरोध, क्षोभ, गुस्सा होना लाजिमी है। यह सिर्फ इसी देश में नहीं दुनिया के हर देश में होता है। यह गुस्सा ही इन्सानियत के जिन्दा होने की निशानी है।"[166]

कश्मीरी जनता और भारत देश के बाकी नेताओं ने जिन रिश्तों को मेहनत से बनाया था, आज उनमें दरार आ रही है। संवाद का अभाव उनमें

---

[165] रवींद्र प्रभात, कश्मीर 370 किलोमीटर पृ० 5

[166] आरिफा एविस, नाकाबन्दी, पृ०3

परायेपन का बोध लाने वाला होगा। एक नागरिक के तौर पर कश्मीरियों की आकांक्षा एवं उनके जीवन की मुश्किलों को समझ कर ही इस समस्या का हल निकाला जा सकता है। शिक्षा, संचार, कारोबार और स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में जीवन बिता रहे कश्मीरियों को सशक्त बनाने में मानवाधिकार संगठन महत्त्वपूर्ण निभा सकते हैं।

मानवाधिकार कार्यकताओं की जिम्मेदारी के विषय में आरिफा लिखती हैं, "यह सब आन्दोलन की बात है इसमें जो महत्त्वपूर्ण जो रोल है वो हम सबको जोड़ सकता है एक साथ जितने भी बड़े-बड़े एक्टिविस्ट हैं। वो ये जिम्मेदारी लें कि लोगों को एक साथ जोड़ें। अभी मुझे ऐसा लगता है कि यह होना चाहिए। मानवता के लिए सब एक साथ हों। तभी यह आन्दोलन पूरा हो सकता है। यह वक्त की पुकार है एक साथ चलें। कश्मीर बचाओ ही नहीं देश बचाओ, संविधान बचाओ का आन्दोलन एक साथ होना चाहिए।"[167]

5.3 घाटी में रह रहे कश्मीरी समुदाय की मूलभूत आवश्यकताएँ-

प्रत्येक मानव समुदाय की कुछ मूलभूत आवश्यकताएं होती हैं। ये आवश्यकताएँ बुनियादी होती हैं और इनका स्वरूप इच्छाओं से हटकर होता है। इच्छाओं की पूर्ति न होने पर भी जीवन का निर्वाह किया जा सकता है परंतु बुनियादी आवश्यकताओं के पूरा न होने पर जीवन का निर्वाह मुश्किल हो जाता है। किसी भी समाज के लिए भोजन, वायु, स्वास्थ्य, न्यूनतम आर्थिक सुरक्षा और निर्वाह का अधिकार, वस्त्र और आवास की सुविधा आवश्यक मूलभूत जरूरतें हैं। इनकी उपस्थिति में ही एक समुदाय न्यूनतम सभ्य जीवन के अधिकार वाला होता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का एक न्यूनतम स्तर जरूर होता है जिससे नीचे होने पर जीवन के संतुष्ट संचालन की कल्पना नहीं की जा सकती।

---

[167] आरिफा एविस, नाकाबन्दी, पृ॰120

कश्मीर घाटी में रहने वाला समुदाय आज भी बुनियादी जरूरतों से वंचित है या गुणवत्तापूर्ण बुनियादी सुविधाएँ उसे उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं। "जो पैलेट गन से नहीं हुआ था, वो अब कश्मीरियों के अस्तित्व पर हमला करके हासिल किया जा रहा है। एक कश्मीरी बगैर संपर्क के, बगैर पैसे के, बगैर स्वास्थ्य-शिक्षा सुविधाओं के, और बगैर मुस्तकबिल के जीने को मजबूर है।"[168]

भोजन, वायु और स्वास्थ्य, ये तीन ऐसी मूलभूत आवश्यकताएं हैं जिनकी पूर्ति किसी भी अन्य विकल्प से नहीं की जा सकती है। कारण यह है कि ये आवश्यकताएँ मानव जीवन में अनिवार्य हैं और मानव शरीर की संरचना पर निर्भर करती हैं। कश्मीर घाटी में रहने वाले लोग लगातार मूलभूत आवश्यकताओं के लिए जूझ रहे हैं। ऐसे में एक सार्थक जीवन की तलाश करना तो दूर यह समाज उसकी कल्पना भी नहीं कर पा रहा है। वे स्वयं को कमजोर और असहाय पाते हैं तथा सुधार हेतु सहायता की आशा करते हैं परंतु सरकारें प्राय: कश्मीरी नागरिकों को उचित जरूरतों विशेषकर स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराने में कम सफल रही हैं।

यह सोचना भी आवश्यक है कि बदलते समय के साथ देश के बाकी व्यक्तियों की तरह घाटी में रह रहे लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं का भी दायरा बढ़ा है। एक समय था जब लोगों की आवश्यकताएँ रोटी, कपड़ा और मकान हुआ करती थी परंतु अब शिक्षा और स्वास्थ्य भी इस दायरे में प्रवेश कर गये हैं। ऐसे में कश्मीरी घाटी में रह रहे लोगों के भोजन, आवास, वस्त्र, शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाओं पर विचार करना जरूरी प्रतीत होता है। इन आवश्यकताओं के गुणवत्तापूर्ण होने पर ही घाटी के सुखद जीवन की कल्पना की जा सकती है।

'भोजन' किसी भी व्यक्ति के शरीर के लिए अनिवार्य है। पौष्टिक तत्त्वों से भरपूर भोजन से व्यक्ति के शरीर को ऊर्जा और आवश्यक तत्त्व प्राप्त होते हैं। यह दुःखद है कि आज भी घाटी में रहने वाले अधिकांश व्यक्ति पौष्टिक भोजन

---

[168] संपादक शिप्रा किरण, सुलगता कश्मीर, सिकुड़ता लोकतंत्र, वक्त की आवाज, पृष्ठ 78

नहीं खा पाते। आर्थिक स्तर निम्न होने से घाटी के लोग कामचलाऊ भोजन से जीवन का निर्वाह करते हैं, विशेषकर वे लोग जो आर्थिक रूप से पर्यटन उद्योग पर निर्भर हैं।

कश्मीर में साल के कुछ महीनों में ही पर्यटकों का आगमन होता है और यही वह समय होता है जब ये लोग साल के बाकी मुश्किल दिनों के लिए भी आजीविका कमाते हैं। सर्दियों के दिनों में भोजन की व्यवस्था कर पाना उनके लिए बहुत मुश्किल होता है। लोग पूर्व में सुखाई गई मछलियों एवं सब्जियों से काम चलाते हैं। निश्चय ही यह धनराशि इतनी नहीं होती जो बाकी दिनों में उन्हें पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराने में सहायक हो। वो भी तब, जब भोजन के अलावा भी उस अर्जित धनराशि के व्यय के अन्य आवश्यक मद भी हों।

'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास में चन्द्रकाता दिहाड़ी-मजदूरों की बात करती हैं, "बेकार घर के मर्द तो खटने जाते हैं दिहाड़ी-मज़दूरी को या कश्तियाँ लेकर सवारियों ढोने। बाहचों में राशन का नाज बटता है, सो उनका ध्यान उधर रहता है। आखिर, रोजी-रोटी का सवाल है।"[169] इसी प्रकार हांजी परिवार भी अपनी आजीविका हेतु पूरी तरह से पर्यटकों पर निर्भर है। 'काँपता हुआ दरिया' उपन्यास में आतंक के कारण पर्यटकों की संख्या पर प्रभाव पड़ने पर उनके जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं के अभाव को चित्रित किया गया है। बेगम भोजन बनाने के लिए सामान्य तौर पर उपलब्ध होने वाले झील के शाकों और चावल का प्रयोग करती है तथा उम्मीद करती है कि अच्छी कमाई होने पर गोश्त बनाएगी। आर्थिक अभावों के चलते यह उनकी विवशता है। कश्मीर घाटी के लोगों को संतुलित आहार उपलब्ध कराने के लिए सरकार की तरफ से जारी प्रयासों पर भी लेखिका बात करती हैं।

'आवास' वह दूसरी बुनियादी आवश्यकता है जो घाटी के लोगों के जीवन को प्रभावित करती है। यह अवश्य है कि कश्मीर के उन क्षेत्रों में आवास सुविधाएँ बेहतर हैं जो नवनिर्मित हैं या धनाढ्य वर्ग के लोगों से जुड़े हैं। इसकी

---

[169] चन्द्रकांता, यहाँ वितस्ता बहती है, पृ०11

तुलना में कश्मीर के पुराने शहरों, गरीब बस्तियों यथा श्रीनगर का पुराने इलाके में आवास सुविधाएं अत्यन्त निम्न स्तर की एवं दयनीय हैं। छोटे-छोटे घरों में काफी सदस्य रहते हैं। स्नानघर, पाखाना, रसोई, नल एवं नाली की स्थिति अत्यन्त बुरी है। सीढ़ियां ही स्नानघर और तंग गलियां ही नाली के रूप में प्रयोग की जा रही हैं। चारों तरफ गन्दगी है। ऐसे में कश्मीर को स्वर्ग कहने वाले पर्यटक अगर ऐसे नारकीय जीवन के सच से वाकिफ हों तो शायद इस मिथक और यथार्थ के बीच के फर्क को समझ पाएं। प्रायः हिन्दू-मुस्लिम और आतंकवाद के विमर्शों के बीच घाटी की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को दबा दिया जाता है। 'इकबाल' उपन्यास का पात्र मुजतबा कहता है, "सैलानियों के लिए कश्मीर जन्नत है, ख्वाब है, मगर हम लोकल लोगों के लिए एक ऐसी सच्चाई जो हमेशा खूबसूरत नहीं होती।"[170]

'वस्त्र' को घाटी में रह रहे लोगों की आवश्यकता के अनुरूप देखें तो संभवतः इस संदर्भ में उनकी स्थिति बेहतर है। कश्मीर की जलवायु के अनुसार स्वयं को ढाल पाने में वे सक्षम रहे हैं। मौसम के अनुसार वहाँ के लोग अपने पहनावे में आवश्यक बदलाव कर स्वयं को सुरक्षित रखते हैं। कश्मीर के अन्य दिनों की अपेक्षा ठंड के दिन ज्यादा मुश्किलों वाले होते हैं। पूरी वादी बर्फ से ढकी रहती है और लोग अपने घरों में काँगड़ी के पास सिमटे रहते हैं। ऐसे में निर्धनता का अभिशाप झेल रहे लोग ठंड से बचने के लिए उत्तम गुणवत्ता वाले वस्त्रों के अभाव में महरूमों की तरह सर्द के कठिन समय को काटते हैं। कई बार लोगों की नसें फट जाती हैं और प्राय: उनकी मृत्यु हो जाती है। जयश्री रॉय लिखती हैं, "लाशों में तब्दील हो जाते हैं हम। नसों में ऐसा कुहरा जमता है कि... खालिश डिप्रेशन का मौसम।... आप नहीं जानतीं कि किन मुश्किलों में आम इंसान जीता

[170] जयश्री रॉय, इकबाल, पृ.59

है यहाँ। काँगड़ी के इर्द-गिर्द सिकुड़े, सिमटे हुए, छोटी-छोटी सहूलियतों से महरूम और मोहताज। जन्नत दोज़ख में बदल जाता है।"[171]

'शिक्षा' वादी में रह रहे लोगों की ऐसी महत्त्वपूर्ण मूलभूत आवश्यकता है जो एक संतुष्ट वर्तमान और उज्ज्वल भविष्य हेतु अनिवार्य है। अनिश्चितताओं से भरे घाटी के माहौल में सबसे नकारात्मक प्रभाव शिक्षा-संस्थाओं पर ही पड़ा। कश्मीर में जारी आतंकवाद और उसके कारण उपजी असामान्य परिस्थितियों के बीच शैक्षिक संस्थानों का सुचारू रूप से संचालन नहीं हो पा रहा है। कर्फ्यू, सर्च मिशन, आगजनी आदि के चलते प्राय: विद्यालय बन्द रहते हैं। ऐसे में कश्मीरी विद्यार्थियों को अनवरत शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं। कश्मीरी पंडित समुदाय की तुलना में वहाँ का बहुसंख्यक समाज कम शिक्षित है। हालांकि शिक्षा के प्रति उनमें जागरुकता बढ़ी है परंतु कश्मीर का असमंजस भरा माहौल उनकी शैक्षिक प्रगति में बाधक है। नाकाबन्दी उपन्यास की पात्र सोफिया शिक्षिका है। वह कश्मीर में शिक्षा के गिरते स्तर को लेकर चिंतित है। आरिफा एविस लिखती हैं, "पता नहीं कैसा आतंक है। बच्चे पढ़ाई के लिए नहीं जा पायेंगे। टीचर पढ़ाने नहीं जा सकेंगे। घर पर रहकर कोई कितनी पढ़ाई करेगा। कुछ दिन बाद इम्तेहान होने वाले हैं। अब तो ऐसा लगता है जैसे होंगे भी या नहीं। यहाँ की हकीकत कुछ और है, एक-एक क्लास को पूरा करने में छात्रों को दो-दो साल लग जाते हैं। सोचा है ऐसे में उन बच्चों और अध्यापकों पर क्या गुजरती होगी? जिन्दगी थम सी गयी है।"[172]

घाटी में उपलब्ध करायी जा रही स्वास्थ्य सेवाएँ पर्याप्त नहीं है। वादी के लोगों को बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। लद्दाख की स्थिति पर 'कथा सतीसर' का पात्र प्रेम पत्र में लिखता है, "ताता! मुझे यहां सभी सुविधाएं हैं। यहां के लोग बेहद परिश्रमी, सीधे-साधे और धर्मनिष्ठ हैं। अपनी संस्कृति से प्यार करते हैं। लामाओं के अंधभक्त समझिए। लेकिन

---

[171] वही, पृष्ठ 61

[172] आरिफा एविस, नाकाबन्दी, पृ043

समय से बहुत पीछे हैं। जम्मू कश्मीर में जिस गति से शिक्षा का प्रसार हुआ है, उस हिसाब से लद्दाखी बहुत पीछे हैं। मेडिकल सुविधाएं भी पर्याप्त नहीं। सरकार इनसे सौतेला व्यवहार क्यों करती है?"[173] पहाड़ी इलाकों में रहने वाली गुर्जर और बकरवाल जनजातियों की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच नहीं है। प्रसव से जुड़े स्वास्थ्य केंद्रों तक पहुंचने के लिए उन्हें लंबी दूरी तय करनी पड़ती है। ऐसे में कई बार माँएं रास्ते में ही बच्चे को जन्म दे देती हैं और कई बार उचित समय पर इलाज न मिल पाने से माँ या बच्चे को इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है। एम्बुलेंस सेवाएं भी सुचारू रूप से संचालित नहीं हैं। यह समुदाय प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की सुविधाओं का फायदा उठाने में असमर्थ है। इन केंद्रों में अक्सर डॉक्टर या नर्सों के उपलब्ध न होने या बहुत अधिक व्यस्त होने की शिकायतें भी होती हैं। अस्पतालों में लगायी गई मशीनों के प्रयोग, तकनीशियनों के अभाव में बाधित हैं। सर्दी के मौसम में यहाँ के लोगों को स्वास्थ्य संबंधी अनेक समस्याएँ हो जाती हैं और स्वास्थ्य केंद्रों में कुछ सामान्य दवाओं को ही इस्तेमाल किया जाता है। अन्य आवश्यक दवाएँ लोगों को स्वयं खरीदनी पड़ती हैं। 'बर्फ और अंगारे' उपन्यास में शारदा इमरजेंसी वार्ड की सेवाओं के विषय में बताती है, "फिर उन्हें इमरजेंसी वार्ड में ले जाया गया। वहाँ भीतर दशा और भी खराब थी। कई मरीज बेड पर थे तो कई मरीज जमीन पर भी बेड बिछाकर लिटाए हुए थे। एक बेड मुश्किल से अरेंज हुआ। उस पर राधाकिशन को लिटाया गया। ग्लूकोज चढ़ने लगा। शारदा जी से कल सुबह ब्लड बैंक से ब्लड लाने को कहा गया। शेष तीन मरीजों को जमीन पर बराबर में बिछे एक बेड पर लेटने-बैठने को कहा गया।"[174] इसी उपन्यास में शारदा सीनियर डॉक्टरों द्वारा एवं मेडिकल डायरेक्टर के स्वास्थ्य सुविधाओं को बेहतर करने में किए जा रहे प्रयासों की सराहना करती है। साथ ही आर्मी अस्पतालों में मुहैया करायी जा रही उत्तम स्वास्थ्य सुविधाओं का भी जिक्र करती है।

---

173 चंद्रकांता, कथा सतीसर, पृष्ठ 343

174 सुधाकर अदीब, बर्फ और अंगारे, पृ० 64

आवश्यक है कि घाटी में रहने वाले लोगों की रोजमर्रा की रोटी, कपड़ा, मकान और स्वास्थ्य की सेवाओं पर विचार किया जाए और उनमें बेहतरी के प्रयास किए जाएं क्योंकि इन्हीं के बीच जीते हुए वादी के लोग संघर्ष करते-करते इसी में मर जाते हैं। कश्मीर का यह अभावग्रस्त चेहरा निश्चय ही वहाँ की वास्तविकता से वाकिफ कराता है।

5.4 युवा वर्ग का भटकाव एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व का अभाव-

युवा किसी भी राष्ट्र के भविष्य को आकार देने वाले महत्त्वपूर्ण कारक हैं। युवा पीढ़ी राष्ट्र के आगामी भविष्य की आशा है। राष्ट्र में होने वाले सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों की बागडोर थामने वाली यह पीढ़ी अपनी नवोन्मेषी सोच और सहभागिता के बल पर राष्ट्र के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ऐसे में कश्मीर के युवाओं की भूमिका भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी भारत के किसी अन्य राज्य के युवाओं की। चिंतनीय है कि देश के अन्य राज्यों की तुलना में यहाँ के युवाओं की स्थिति काफी अलग है। उनके सामने ढ़ेरों चुनौतियाँ हैं जिनसे पार पाना आसान नहीं है। यह पीढ़ी अनिश्चितता के दौर से गुजर रही है जो सत्ता, आतंक और राष्ट्रीयता के बीच संघर्ष करते हुए अपनी भूमिका को लेकर आश्वस्त नहीं है। वे भटकाव की स्थिति में हैं और अपनी प्रतिभाओं को राष्ट्रीय पटल पर प्रस्तुत करने के अवसरों की कमी का अनुभव करते हैं। स्वाभाविक तौर पर प्रतिनिधित्व की यह कमी उनके अंतर्मन में द्वंद्व पैदा कर रही है। अपने संशयग्रस्त वर्तमान और अनिश्चित भविष्य के मानीखेज हकीकत से गुजरती यह पीढ़ी तनाव की स्थिति में है। अपने समय की निर्मम सच्चाइयों से जूझते कश्मीरी युवा विवश और व्याकुल हैं।

एक कश्मीरी और भारतीय के रूप में भोगे गये अनुभव को यह पीढ़ी विकलता और विश्वसनीयता के बीच कहीं पाती है जिसके लिए तार्किक होकर सोचने की क्षमता आक्रोश से भरे उनके जेहन में नहीं है। ऐसे में वे भटके हैं और यह भटकाव आतंकवाद के प्रति बढ़ते आकर्षण, ड्रग्स की बढ़ती आदत और सत्ता के प्रति नफरत के रूप में देखा जा सकता है। वे कट्टरपंथी गतिविधियों का

हिस्सा बन रहे हैं और ऐसे में राष्ट्रीय एकता और अखंडता की बातें उन्हें व्यर्थ प्रतीत हो रही हैं। एक भारतीय के रूप में अपनी राष्ट्रीयता की स्थिति को लेकर वे भ्रम की स्थिति में हैं और भारत की मुख्यधारा से कोई जुड़ाव महसूस नहीं करते। अवसाद की शिकार यह पीढ़ी मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रभावित हो रही है। हुमरा कुरैशी लिखती हैं, "एक मानव-रचित आपदा में, जहाँ कोई भी नुकसान जान-बूझ कर पहुंचाया जा रहा है, सामाजिक ताने-बाने को अस्त-व्यस्त कर सकता है। जब कोई जाने वाले को रो रहा हो तो गुस्से की भावना बढ़ जाती है, और बदला लेना अपना हक़ लगने लगता है। ऐसा भी हो सकता है कि असहायपन और शोषण के जज़्बात में परिवर्तन आ जाए। ऐसी स्थिति में, एक वयस्क के विकसित दिमाग के काम करने की दिशा भी बदल जाती है। आमतौर पर यथार्थ को ध्यान में रखते हुए काम करने वाले लोग, जज़्बाती हो कर प्रतिक्रियाएं देते हैं।"[175]

कश्मीर के इन अनिश्चित और भयग्रस्त हालातों का शिकार, युवा वर्ग तेजी से ड्रग्स के इस्तेमाल का आदी हुआ है। मानसिक तनाव को झेल पाने में असमर्थ यह पीढ़ी थोड़े समय की राहत के लिए ड्रग्स का सेवन कर रही है। पिछले दो दशकों से ड्रग्स की सप्लाई में भी तेजी आयी है और इस कारण कश्मीर दुनिया की उन सबसे खराब स्थिति वाली जगहों की श्रृंखला में जुड़ गया है जहाँ औषधिक अफीम प्रयोग में लायी जा रही है। कश्मीरी युवाओं में बढ़ती नशे की लत उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाल रही है। मरगूब के अनुसार, "आबादी का 3.8 प्रतिशत हिस्सा आज अफीम का इस्तेमाल करती है। अफीम का इस्तेमाल ज्यादातर इसलिए होता था ताकि लोगों को नींद आ सके एवं अपने मानसिक दर्द से थोड़ी देर के लिए राहत मिल सके।"[176] इस प्रकार कश्मीर की युवा आबादी लगातार प्रभावित हो रही है।

---

[175] सं० शिप्रा किरण, सुलगता कश्मीर-सिकुड़ता लोकतंत्र, पृ०79

[176] सं० शिप्रा किरण, सुलगता कश्मीर-सिकुड़ता लोकतंत्र, पृ० 79

कश्मीर की वर्तमान युवा पीढ़ी के पास अपार संभावनाएं हैं परंतु वह आक्रोश की स्थिति में है। ऐसे में उनके द्वारा लिया गया कोई निर्णय सकारात्मक परिणति तक कैसे पहुंच सकता है?, यह चिंता का विषय है। आतंकवाद की ओर कश्मीरी युवाओं का बढ़ता रूझान इसका संकेत है। यह रुझान मुख्यतः जिन कारणों से बढ़ रहा है उनमें कश्मीरी युवाओं का निम्न आर्थिक स्तर, आतंकी गिरोहों द्वारा आर्थिक मदद और जबरन की जा रही भर्तियाँ तथा अलगाववादी नेताओं द्वारा की जा रही मेंटल कंडीशनिंग महत्त्वपूर्ण है। सत्ता की दमनकारी प्रवृत्ति एवं सैन्यबलों द्वारा की जाने वाली हिंसक कार्यवाहियाँ भी उन्हें आतंक की ओर जाने देने के लिए जिम्मेदार हैं।

कश्मीरी युवा अभावों से ग्रस्त जीवन में अपनी बुनियादी आवश्यकताओं को भी नहीं पूरा कर पा रहा है। ऐसे में आतंकी गिरोह उनके परिवार को आर्थिक मदद देकर उन्हें आतंकी बनने को प्रेरित करते हैं। प्रलोभन देकर उनके घरों में अपने आवास हेतु तहखाने बनवाने को भी बाध्य करते हैं। अपने हालातों का मारा कश्मीरी युवा कई बार न चाहने पर भी आतंकी गतिविधियों में शामिल हो जाता है। 'सूखते चिनार' उपन्यास में हमीद ऐसा ही पात्र है, "घर पर अब मैं और हमीद थे और थी भूख, बेकारी, और हताशा। ऐसे में एक मैली सुबह अब्दुल रशीद हमारे घर आया, उसने हमीद की हथेली पर ढेर सारे नोट रखे, और उसे सुझाव दिया कि यदि हमीद अपने घर के अन्दर जेहादियों के लिए तहखाना बनवा ले तो इतने पैसे उसे नियमित रूप से मिल सकेंगे। मैं पूरी ताकत से अपने अस्तित्व के अंश-अंश से चिल्लाई कि हमें पाप की कमाई नहीं खानी... पर भूख के पास न धैर्य होता है न विवेक। मैंने देखा भूख आदमी से बड़ी थी।"[177]

वादी में युवाओं को लगातार गुमराह किया जा रहा है। ब्रेनवॉश कर उनके अपरिपक्व दिमागों में जहर बोया जा रहा है। यह काम अनेक स्तरों पर हो रहा है। बुद्धिजीवी और शैक्षिक संस्थाएं इस्लाम की कट्टर तालीमें दे उनके मस्तिष्क में राष्ट्र एवं सैन्यबलों के विरुद्ध शत्रुता का भाव पैदा कर रही हैं। इस्लाम को

---

[177] मधु कांकरिया, सूखते चिनार, पृ०132

विश्वव्यापी धर्म बनाना ही उनका एकमात्र उद्देश्य है, ऐसा युवाओं के जेहन में डालने के अथक प्रयास जारी हैं। अपने स्वार्थों को भुनाने के लिए वे कश्मीरी युवाओं को फौज से चेतावनी मिलने के बावजूद पत्थरबाजी, एसिड की बोतलें फेंकने और हिंसा हेतु प्रेरित करते हैं। 'जवाब-तलब' कहानी में सुधाकर अदीब नेताओं के इन प्रयासों की पोल खोलते हैं, "अलगाववादी नेता सुबह का नाश्ता चाय, ब्रेड और अण्डों का पत्थरबाज लड़कों को अपने घर कराते। उन्हें एक-एक पत्थर मारने पर पाँच-पाँच सौ रुपया देते। एक जेब में रुपये ठूंस देते और कहते- 'जाओ, बुरखुरदार, पूरी ताकत से हमला करो, नापाक फौजियों पर। साथ में 'पाकिस्तान जिंदाबाद', 'नाराये तकबीर अल्लाहो अकबर', 'आज़ादी-आज़ादी' के नारे बुलन्द करते जाना।"[178]

भारतीय सुरक्षाबलों द्वारा कश्मीरी युवाओं के प्रति बलों का असंयमित प्रयोग घातक सिद्ध हुआ है। प्रायः शक के आधार पर उन पर किया जाने वाला थर्ड डिग्री टॉर्चर या हिरासत में लेकर उनको गायब कर दिये जाने के कई आरोपों ने युवाओं के मन में बदले की भावना को जन्म दिया है। सत्ता भी स्वार्थवश सैन्यबलों के माध्यम से उनका दमन करती है। ऐसे में कई बार कश्मीरी युवा आतंकी बनने का रास्ता चुन लेते हैं। 'बर्फ और अंगारे' उपन्यास में बुरहान वानी के आतंकी संगठन हिजबुल मुजाहिदीन से प्रशिक्षण प्राप्त करने के पूर्व की घटना पर प्रकाश डालते हैं। सुधाकर अदीब लिखते हैं, "बुरहान वानी कश्मीरी नौजवानों के पाकिस्तानी झांसे में पढ़ाई-लिखाई छोड़कर दहशतगर्दी की राह पर घसीटे जाने और दूसरे गुमराह लड़कों की प्रेरणा बनने का एक सुस्पष्ट उदाहरण था। कहते हैं कि जब उसका एक बड़ा भाई कश्मीर में सुरक्षाबलों की गोली से मारा गया तब वह 15 साल की उम्र में देशद्रोही बना और घर छोड़कर सीमा पार चला गया।"[179] 'कहूं किस्से मैं' कहानी में संजना कौल शौकत नामक युवा के सीमा पार जाकर

---

178 साहित्य भारती पत्रिका, जुलाई-सितम्बर अंक, 2018, पृष्ठ97

179 सुधाकर अदीब, बर्फ और अंगारे, पृ०193

आतंकी बनने और वापस आने पर उसके रिश्तेदारों के जश्न मनाने की घटना का चित्रण करती हैं।

कश्मीरी युवा वर्तमान में रोजगार की समस्या को सबसे बड़ी समस्या मान रहे हैं। कश्मीर में रोजगार के पर्याप्त अवसर नहीं है और ऐसे में बाहरी राज्यों को न जाने के इच्छुक युवा वर्ग में कुछ आतंकी बनकर सरेंडर करने को रोजगार पाने का जरिया मानते हैं। 'दर्दपुर' उपन्यास का नूर मुहम्मद कहता है, "मैं भी सोचता था कि नौकरी पाने के लिए यही ठीक है। मिलिटेण्ट बनो। सरेंडर करो। और नौकरी पाओ।"[180] ऐसे ही विस्थापित कश्मीरी युवा एक ऐसी पीढ़ी हैं, जिसने निर्वासन के दुःख को एक लम्बे समय से भोगा है और आज भी अपनी अस्मिता और अस्तित्व को लेकर संघर्षरत हैं। कश्मीर में बाहर शिक्षा व रोजगार दोनों ही क्षेत्रों में सराहनीय सफलता प्राप्त करने पर भी उनका मन बोझिल है। विवशता और व्याकुलता उनके दिलो-दिमाग पर हावी है।

'शिगाफ' उपन्यास की पात्र अमिता का जीवन भी निर्वासन की पीड़ा से अशांत है। 'इकबाल' उपन्यास में इस नयी युवा पीढ़ी के प्रति चिन्ता व्यक्त की गयी है, "एक पीढ़ी आधी से अधिक मर-खप गई, दूसरी पीढ़ी मिटने की तैयारी में है और नई पीढ़ी- उसका न तो आज है न कल है... अंधकार की विरासत लेकर पैदा हुए हैं और अंधकार के क्षितिज में ही विलीन होने जा रहे हैं। इनके पास कोई विकल्प न पहले था न आज है।"[181]

घाटी में रह रही युवा पीढ़ी सत्ता की दमनकारी नीतियों से आक्रोश में है। कश्मीर में अधिकांशतः कर्फ्यू सा माहौल बना रहने से युवा वर्ग की शिक्षा, उद्योग, शान्ति एवं भविष्य के प्रति विचारों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। वादी के बाहर भी कश्मीरी युवाओं के साथ अपमानजनक घटनाएं घटती हैं तथा उन्हें शक की निगाहों से देखा जाता है। ऐसे में वे असंतुष्ट हैं और मायूस भी। 'नाकाबन्दी' उपन्यास में सोफिया की माँ कहती है, "कश्मीर का तनाव नयी पीढ़ी के दिलो-

---

[180] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 29

[181] जयश्री रॉय, इकबाल, पृ० 81

दिमाग पर गहरा असर डाल रहा है। गुजरे हुए सालों में उन्होंने ऐसे दमन वाले हालात नहीं देखे हैं। मुझे तो लगता है कि अब एक बार फिर यह पीढ़ी वादी के बिगड़ते हालात में खौफ, अनिश्चितता और मायूसी की फिजा में साँस लेगी।"[182]

कश्मीर के युवाओं को इस अंतर्द्वंद्व से बाहर निकालना आवश्यक है और संभवतः यह संवाद से ही संभव है। उन्हें कश्मीरियत, नेतृत्व, राष्ट्रवाद और मानवता जैसे मूल्यों से जोड़ना आवश्यक है। रोजगार के पर्याप्त अवसर एवं राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व एक महत्त्वपूर्ण कदम हो सकता है। कश्मीरी युवा जागरुक हो रहे हैं और अमन चैन वापस लाने को प्रयासरत भी हैं। 'शिगाफ' उपन्यास में मनीषा कुलश्रेष्ठ युवा पीढ़ी की इस नयी सोच की प्रशंसा करती हैं, "सच में अब वक्त बदल रहा है। आज का कश्मीरी लड़का किसी अनपढ़ मिलिटेंट को हीरो नहीं मानता, अमिता जी। अब वह 'फेम गुरुकुल' और 'इंडियन आइडल' देखता है। इन्फोसिस के नारायण मूर्ति उसके असली सक्सेस आइकन है। वह सॉफ्टवेयर रिवोल्यूशन का हिस्सा बनना चाहता है। आजकल का कश्मीरी यूथ क्रिकेट खेलता है... इंटरनेट सर्फ करता है... डेटिंग पर जाने लगा है।"[183]

5.5 <u>सुरक्षा बलों की चुनौतियाँ एवं मानसिक स्थिति-</u>

वर्तमान में कश्मीर की जैसी परिस्थितियाँ हैं, सुरक्षाबलों की गैरमौजूदगी में वहाँ हालात कैसे हो सकते हैं?, इसका आकलन कर पाना भी कठिन है। पिछले कई दशकों से कश्मीर में तैनात सुरक्षाकर्मी एवं खुफिया विभाग के बलों की उपस्थिति से कश्मीर में स्थितियाँ कमोबेश नियंत्रण में हैं। ऐसे में निश्चित रूप से कश्मीर में सैन्यबलों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। कश्मीर के भयग्रस्त माहौल में नागरिकों की सुरक्षा हेतु तैनात कर्मी हथेली पर प्राण रखे सेवा में रत हैं। इन सुरक्षाबलों को कश्मीर में काफी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और वे मानसिक रूप से भी प्रभावित होते हैं। कश्मीर के सौहार्दपूर्ण वातावरण में आतंक, मृत्यु, डर, अपमान, सत्ता, सैनिक और धर्म की कथा 1947 में भारत की स्वाधीनता

---

[182] आरिफा एविस, नाकाबन्दी, पृ० 53

[183] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ, पृ० 131

के साथ शुरू होती है। कश्मीर के भारत में विलय के पूर्व कबायली आक्रमणकारियों का सामना करते हुए भारतीय सैन्यबलों ने पहली बार कश्मीर में अपना लोहा मनवाया। विलय के पश्चात् पाकिस्तान की ओर से छुटपुट गतिविधियां जारी रहीं जिसके काउंटर के तौर पर भारतीय सेना तैनात रही। 1987 में हुए चुनाव के पश्चात कश्मीर की स्थितियां काफी नाजुक हो गईं और आतंक के उग्र रूप पर काबू पाने के लिए भारी संख्या में सुरक्षाबलों को कश्मीर भेजा गया।

1990 के दौरान कश्मीरी पंडितों के महानिर्वासन के दौर में यह संख्या और भी बढ़ा दी गयी। उसके पश्चात् लगातार इस संख्या में बढ़ोत्तरी होती रही है। पिछले कई दशकों से कश्मीरी नागरिकों की सुरक्षा और आतंकवाद पर शिकंजा कसने के लिए भारतीय सेना मुस्तैदी से तैनात है। 'यह तो मेरा कश्मीर नहीं' कहानी में चंद्रकांता लिखती हैं, "पूरी वादी में सीमा सुरक्षा बल के सिपाही तैनात हैं। जम्मू-कश्मीर पुलिस भी। हाईवे पर कदम-कदम पर पुलिस चौकियाँ बनी हैं। बिजबिहारा, खनबल, बादामी बाग। सीमेंट की बोरियों के बीच तैनात सशस्त्र पुलिसबल वादी की गली-गली में छिपे आतंकवादियों की तलाश में मुस्तैद हैं। पर ऑपरेशन टोपेक के जासूसी जाल में घुस पाना किसी के लिए आसान काम नहीं है। यह पांद्रेठन है। यह पांद्रेठन है 'ब्रॉड-वे' के पास। यह किसी जमाने में कश्मीर की राजधानी हुआ करती थी, आज पूरा युद्ध क्षेत्र बन गया है।"[184] कश्मीर में सुरक्षाबलों की यह तैनाती उसे विश्व के एक अलर्ट एरिया के रूप में चिन्हित करती है।

कश्मीर में सुरक्षाबलों की भारी मौजूदगी प्राय: प्रश्नों में रही है। भारत के अनेक बुद्धिजीवियों और कश्मीर घाटी की जनता द्वारा इसका लगातार विरोध होता रहा है। इसके पीछे कई कारण हैं, जहाँ कुछ इसे कश्मीर को एक आर्मी केनटॉन्मेंट में बदल देने पर क्षोभ व्यक्त करते हैं वहीं दूसरी तरफ कुछ इसे भारत सरकार द्वारा कश्मीर पर जबरन अधिकार बनाये रखने की एक कड़ी मानते हैं। अवश्य ही कश्मीर में इतनी भारी संख्या में फौज के होने से वहाँ स्थितियों

---

[184] चन्द्रकान्ता, कथा नगर : वादी ए कश्मीर, पृ० 109

के सामान्य होने की चर्चाओं पर प्रश्न उठता है। एक संतोषजनक माहौल शायद ही वहां की जनता को मिल पाया हो जब वे अपने जीवन में द्वन्द्वों से परे शांति का अनुभव करते हों। नकारात्मकता पूरे परिवेश को बदल देती है। आर्मी की उपस्थिति को अधिकांश कश्मीरी नागरिक एक बंदिश और तानाशाही के रूप में देखते हैं। 'नाकाबन्दी' उपन्यास में कश्मीर की इस स्थिति पर सोफिया कहती है, "ये मिलिट्री सातों दिन चौबीस घंटे इसी तरह दिखती है। हाँ, कभी कम कभी ज्यादा! तुम भूल गये कि तुम कश्मीर आये हो कन्याकुमारी नहीं। पंद्रह अगस्त और अमरनाथ यात्रा की वजह से ऐसा है। अब कश्मीर की पहचान कश्मीरियत की वजह से नहीं फौज और आतंक से है।[185]

कश्मीर में सुरक्षा बलों ने काफी हद तक एक सकारात्मक दिशा में कार्य किया है। अपने उद्देश्यों और नागरिक सुरक्षा की अहमियत समझते हुए वे संकल्परत हैं। आतंकवाद और अलगाववाद पर नियंत्रण इनकी प्रतिबद्धता का सबूत है और इसके साथ-साथ राष्ट्रविरोधी गतिविधियों और भ्रष्टाचार की नकेल कसने में भी सैन्यबल सफल रहे हैं। आर्मी की उपस्थिति से कश्मीर में एक जमीनी बदलाव की आधारभूमि तैयार हुई है और बीता समय एक निर्णायक समय रहा है। आतंकवाद और हिंसक घटनाओं में कमी देखी गयी है। हिंसा और दहशतगर्दी करके अलगाववादियों द्वारा आए दिन कश्मीर में माहौल को बिगाड़ने की कोशिश की जाती है। ऐसे में शान्ति बनाए रखने की जिम्मेदारी सैन्यबलों के कंधों पर होती है। जम्मू-कश्मीर में नव-निर्माण और नवजागरण की बेला के तहत सैन्यबल सराहनीय कार्य कर रहे हैं। रसाल सिंह का मानना है, "सैन्यबल जहाँ आतंकवादियों की अच्छी आवभगत कर रहे हैं, वहीं, पुलिस प्रशासन द्वारा तथाकथित पत्रकारों, बुद्धिजीवियों, स्वयंसेवी संगठनों के झोलाछापों और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं की भारत-विरोधी गतिविधियों और आय के अवैध स्रोतों पर शिकंजा कसा जा रहा है।"[186]

---

[185] आरिफा एविस, नाकाबन्दी, पृ०26

[186] बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, पृ०446

कश्मीर में चुनौतियों को देखते हुए आर्म्ड फोर्सेज को बहुत सारे अधिकार दिए गए हैं जिससे वे इनका प्रयोग करते हुए बेकाबू हो रही स्थितियों पर नियंत्रण रख पायें। इनमें 'आर्म्ड फोर्सेज एक्ट 1958' के तहत आर्मी को इम्यूनिटी एवं पावर मिलती है और 1990 में कश्मीर घाटी में आतंक व चरमपंथ से उपजी मिलिटेंसी पर रोक एवं कानून व्यवस्था को ठीक करने की जिम्मेदारी की दृष्टि से 'अफसपा (आर्म्ड फोर्सेज स्पेशल पावर एक्ट)' महत्त्वपूर्ण है। अधिकांश कश्मीरी नागरिक इन एक्ट्स को हैवानी ताकत के रूप में देखते हैं, जहाँ सुरक्षा बलों को मनमानी करने की छूट मिल जाती है। ऐसे में आर्मी बेलगाम हो जाती है तथा जांच, पूछताछ के नाम पर किसी को भी उठा लेना, टार्चर करना, लॉक अप डेथ्स, फर्जी एन्काउंटर, प्रोटेस्ट करने वाले लोगों पर गोलीबारी जैसे केसों में उन पर पुख्ता कार्यवाही नहीं हो पाती।

'इकबाल' उपन्यास के पात्र इकबाल का भी यही मानना है कि दे कैन नॉट बी प्रोसक्यूटेड फॉर देयर एट्रोसिटीज़। इस पर जिया स्थिति पर प्रकाश डालती है, “मगर गोलियां चलाना, लाठीचार्ज आदि कभी-कभी निहायत जरूरी भी हो जाता है, सेल्फ डिफेस में भी। यहां की भीड़ कितनी हिंसक हो उठती है। छोटे-छोटे बच्चों तक इस तरह से पत्थर फेंकते हैं! शिकायत होती है- बच्चों को मारा, मगर कोई ये नहीं कहता कि ये मासूम बच्चे हाथ में पत्थर लेकर बाहर क्यों निकलते हैं। उन्हें कौन निकलने देते हैं। दरअसल उन्हें ह्यूमन शील्ड की तरह इस्तेमाल किया जाता है। खुद अपने बच्चों को खतरे में डालते हैं और फिर आर्मी एटरोसिटीज की बात करते हैं। कई बार भीड़ ने जवानों को घेरकर बेरहमी से मार डाला। शांतिपूर्ण प्रदर्शनों पर कभी लाठी, गोली चलाने की जरूरत नहीं पड़ती।"[187] वर्तमान में सैन्यबल, सत्ता एवं प्रशासन का एक बेरहम चेहरा बन चुके हैं। हाथों में बंदूक और जुबान पर चेतावनी से अलग उन्हें एक इन्सान के तौर पर नहीं देखा जाता। जनमानस में अपने प्रति खौफ देखकर उनका भी हृदय शर्मिंदगी महसूस करता

[187] जयश्री रॉय, इक़बाल, पृ०31

है। वे भी प्रेम और सौहार्दपूर्ण वातावरण की जरूरत महसूस करते हैं, परंतु विवश हैं।

आतंकवादियों की खबर मिलने पर फौज जब नाकाबन्दी कर क्रास फायरिंग करती है तो कई बार कार्यवाही की गंभीरता के चलते कुछ बेगुनाह नागरिक अपनी जान गंवा देते हैं, जिसे ह्यूमन राइट कमीशन वाले बड़ा मुद्दा बना लेते हैं। आतंकी अब इसे एक रणनीति के रूप में इस्तेमाल करने लगे हैं और भारतीय सैन्यबलों का ध्यान बंटाने के लिए पत्थरबाजी, पेट्रोल बम आदि उनकी रणनीति हो गयी है। कश्मीर में आतंकी अब प्रत्यक्ष की अपेक्षा परोक्ष रूप से अपने मंसूबों को अंजाम देना बेहतर समझते हैं और ऐसे में सैन्यबलों ने भी अपनी प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही के तौर-तरीके बदले हैं।

'जवाब-तलब' कहानी में सुधाकर अदीब लिखते हैं, "परंतु बदली परिस्थितियों में सुरक्षाबलों ने अपने को जल्द ही ढाल लिया। देश की रक्षा सर्वोपरि है। देशद्रोहियों और आतंकवादियों का जो साथ दे वह भी देश का दुश्मन। फलत: एन्काउंटर्स के दौरान बीच में आने वाले और चेतावनी के बावजूद भी पत्थरबाजी और हिंसा पर उतारू कई लड़के अर्धसैनिक बलों की गोलियों का शिकार बन गए।"[188]

कश्मीर में भारतीय सेना की सुरक्षात्मक कार्यवाही हमेशा ही विवादों में रही है। सैनिक होना आसान नहीं है। एक ऐसे माहौल में जहाँ हर कोई आपसे भयभीत है, क्रैकडाउन और अफसपा के लिए नफरत करता है, वहाँ एक संवेदनशील मनुष्य के रूप में उन पर कितना प्रभाव पड़ता होगा, यह सोचना आसान नहीं। अमूमन सैनिकों के प्रति नकारात्मक रवैया ही देखने को मिलता है। देश के अलग-अलग क्षेत्रों से आकर अपने घरों से दूर वे स्वयं को पराया और असुरक्षित महसूस करते हैं। वे भी शान्ति से जीवन जीना चाहते हैं परंतु नौकरी उन्हें बारूदी सुरंगों

---

[188] सुधाकर अदीब, जवाब-तलब कहानी, साहित्य -भारती पत्रिका, जुलाई-सितम्बर, 2018, पृ0 98

में लेकर आयी है। कश्मीर शायद उन्हें स्वर्ग नहीं नर्क लगता हो। उनकी अन्तरात्मा पर भी घाव होते हैं। वे शारीरिक ही नहीं मानसिक रूप से भी प्रभावित होते हैं।

'सूखते चिनार' उपन्यास का पात्र संदीप अपने परिवार से बगावत कर फौज में भर्ती हो जाता है क्योंकि उसने 'नेशन नीड्स यू' का भावुक विज्ञापन पढ़ लिया था। कश्मीर में पोस्टिंग के दौरान जब वह फ़ौजी जीवन की तमाम त्रासदियों से जमीनी स्तर पर रू-ब-रू होता है, तो मानसिक तनाव का अनुभव करता है। वह पत्र में लिखता है, "अब मेरी, इन्द्रियों में सौन्दर्य नहीं वरन् कुरूपता भर गयी है। मेरी श्रवणेन्द्रियां अब पत्तों और हवा की सरसराहट, बादलों की गड़गड़ाहट और मेरी अन्तरात्मा की आवाज नहीं सुनतीं, वे सुनती हैं गोलियों की, गालियों की, चीखों की, बमों की, विस्फोटों की, दिलों के टूटने की, भरोसों के मरने की और माँओं की कोख उजड़ने की आवाजें।"[189]

'सूखते चिनार' उपन्यास में कश्मीर में तैनात 'राष्ट्रीय राइफल्स' की कार्यविधि के विषय में जानकारी दी गयी है। इस सैन्यबल का ध्येय वाक्य है- 'वीरता और दृढ़ता'। इसकी स्थापना होम मिनिस्ट्री के अंतर्गत आतंकवाद से निपटने के लिए वर्ष 1990 में हुई। इस उपन्यास में राष्ट्रीय राइफल्स के बेस कैम्प बूशन का चित्रण किया गया है। यहां पर सैन्यबलों के लिए दिशा-निर्देशों का पालन अनिवार्य होता है। जैसे- मौसम और खेती का फायदा उठाकर क्रास कंट्री मूव करें जिससे मिलिटेंट आपके आने वाले रास्ते को न जान पायें, हर रास्ते की जानकारी रखें, अपने औज़ारों और शस्त्रों के बारे में लोकल लोगों से बात न करें, लड़की इस इलाके में सिर्फ मौत और बदनामी दे सकती है, गाँव के प्रत्येक घर के सदस्यों की जानकारी रखें, एक्टिव/किल्ड /सरेंडर्ड/मिसिंग मिलिटेंट और उनके करीबियों पर नजर रखें आदि।

आर्मी चार तरह की खबरों पर नजर रखती है। पहली एक्शनेबल इनफॉर्मेशन, जिस पर त्वरित एक्शन है। दूसरी रिसेंट इन्फॉर्मेशन, यानी हाल-फिलहाल में जो हुआ है। तीसरी बैकग्राउंड इन्फॉर्मेशन अर्थात् जब से आतंकवाद शुरू हुआ है, किन-

---

[189] मधु कांकरिया, सूखते चिनार, पृ० 112

किन लोगों ने उन्हें मदद की है और चौथी जनरल इनफॉर्मेशन अर्थात् गाँव में कहाँ क्या बन रहा है। इसके साथ ही उन्हें मिलिटेंट से मुकाबला करने के लिए एच.एच.टी आई, सर्च लाइट, पी.एन.वी.डी., एन.आई. साइट आदि के प्रयोग की हिदायत दी जाती है।

कश्मीर में सैन्यबल सिर्फ आतंकवाद से सामना नहीं कर रहे बल्कि आम जनजीवन से इसे जड़ से उखाड़कर फेंकने हेतु प्रयासरत हैं। इन बलों ने आम कश्मीरियों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाने को अहमियत दी है तथा लोकल लोगों के लिए सुविधाओं को मुहैया कराने में हर संभव कोशिश की है। सन्दीप कश्मीर में गरीबी और अशिक्षा के खिलाफ सैन्यबलों के द्वारा की गयी सकारात्मक पहल के विषय में बताता है, "इसलिए तो हमने सुदूर इलाकों में स्कूल खुलवाए, कॉलेज खुलवाये, मुफ्त चिकित्सा केन्द्र खुलवाये, मोबाइल एम्बुलेंस चलवायीं, और एक वातावरण तैयार किया इससे इतना तो हुआ कि लोकल मिलिटेंसी का हमने बहुत कुछ सफाया कर डाला। आधे से अधिक मिलिटेंट तो मारे जा चुके हैं। कुछ पाकिस्तान भाग गए और वहीं शरण ले ली। कुछ ने तो आत्मसमर्पण कर डाला। अब यहाँ जो हैं वह फॉरेन मिलिटेंसी है।"[190]

मधु कांकरिया बताती हैं कि भारतीय फौज आतंकवाद से निपटने के लिए कई तरीकों से काम करती है। आतंकियों द्वारा सताए गए व्यक्तियों को थोड़ी बहुत ट्रेनिंग देकर आर्मी की निगरानी में आतंकी गिरोहों से जोड़ दिया जाता है जिससे उनके आगामी प्लानों की सूचना मिल सके। इसके साथ-साथ 'कॉल ट्रैकिंग' और 'सिम क्लोनिंग' अर्थात् डुप्लीकेट सिम बनवाकर आतंकी हमलों के बारे में पता करने की कोशिश की जाती है। इन सबमें सबसे प्रभावी खुफिया तंत्र पहले तरीके से जुड़ता है।

कश्मीर में सैन्यबलों ने बेहतरी के लिए लगातार काम किया है। वे अवाम की आवश्यकताओं को देखते हुए उसे पूरा करने का हर संभव प्रयास करते हैं। ऐसे में जहाँ एकतरफ सुरक्षा की दृष्टि से इन प्रहरियों की जरूरत है वहीं

---

[190] मधु कांकरिया, सूखते चिनार, पृ० 46

बर्फबारी और मुश्किल दिनों में कश्मीरियों की सहायता करने के उनके कृत्य की भी उतनी ही महत्ता है। 'कथा सतीसर' उपन्यास का पीटर, इम्तियाज नामक आतंकी को सेना के जवान द्वारा बचाए जाने पर समझाता है कि जिसे तुम मारने वाले थे उसी ने तुम्हें बचाया है। इसी उपन्यास में प्रेम लद्दाख में तैनात सेना की मुश्किलों को लेकर कहता है, "ताता! लद्दाख में सेना के जवान बड़ी बीहड़ जिन्दगी जीते हैं। इनका नमन करने को मन करता है। मैदानी इलाकों से आकर, घर-परिवारों से दूर, मीलों मील फैले पठारों, पहाड़ों और दर्रों से गुज़रते, सीमाओं की रक्षा में मुस्तैद इन जवानों के भरोसे हम निश्चिन्त तो रहते हैं, पर इनकी सुविधाओं का कितना ख्याल रखा जाता है?"[191]

निश्चय ही बर्फानी तूफानों से घिरी सीमा की चौकियों पर तैनात सच्चे योद्धा सम्मान और परवाह के हकदार हैं। वे भी यदा-कदा उदासियों के कोहरे से घिर जाते हैं जो कि स्वाभाविक है। उनके जीवन के कठोर अनुशासन में मानसिक झंझावात आते रहते हैं। 'सरहदों के नाम' कहानी की नंदी सीमा पर तैनात इन सैनिकों को अपना बेटा कहकर पुकारती है, "तुम कितनी भोली हो दी, जानती नहीं, वह मेरा बेटा है। रोज रात को आकाशदीप की तरह उधर खड़ा रहता है और दिन के सूरज के माथे पर बैठ बेलौस बर्फानी चट्टानों को अपने इरादों की छुवन से झरनों में बहा देता है।"[192]

निःसंदेह वे सुरक्षाबल ही हैं जिनके कारण आज कश्मीर कमोबेश सामान्य हालत में आ सका है। देश को शत्रुओं से बचा पाना अत्यन्त मुश्किल है, विशेष तौर पर जब अवाम ही विश्वास न करती हो। सेना में कोई अपनी मर्जी से कश्मीर के इन हालातों को देखता हुआ यहाँ तैनाती नहीं चाहता। मुआवजे और सम्मानों के दम पर उनके प्राणों की कीमत नहीं लगायी जा सकती। ऐसा नहीं है कि सीमा बल अपनी हर कार्यवाही में खरे उतरे हैं, उनसे गलतियां और उल्लंघन भी हुए हैं परंतु सिर्फ इनके आधार पर उनकी भूमिका को नकार देना उचित नहीं है। वे

---

191 चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृ०343

192 चन्द्रकान्ता, काली बर्फ कथा संग्रह, पृ० 114

सरकारी व्यवस्था के तहत यहाँ तैनात हैं और उनके मानवाधिकारों की रक्षा भी जरूरी है।

प्रायः कश्मीर में सैन्यबलों की मौजूदगी का एक विकल्प ढूंढने की कोशिश की जाती है और अहिंसा से जुड़ा मार्ग अपनाने की बात होती है। ऐसा करते वक्त व्यावहारिक पहलुओं को आदर्शवाद के काफी पीछे छोड़ दिया जाता है। कश्मीर में जनता अमन की नींद तभी तक सो रही है जब तक भारतीय फौज सीमा पर तैनात है। सैन्यबलों का फिलहाल तो कोई दूसरा विकल्प नहीं है। कश्मीर में बुद्ध की स्थापना के लिए युद्ध जरूरी है। "बुद्ध और युद्ध में अंततः युद्ध की विजय होती है। यदि आपको अपने तिरंगे की हिफाजत करनी है तो युद्ध का जवाब युद्ध ही होगा। यदि देश में एक वर्ग बुद्ध की अहिंसा चाहता है और दूसरा हिंसा तो हिंसा का जवाब हिंसा से देना भी बुद्ध की शांति की प्रतिष्ठा करना है।[193]

5.6 <u>मीडिया की भूमिका</u>

मीडिया किसी भी समाज में लोगों के लिए संचार का एक मुख्य माध्यम है। इसकी महत्ता इस आधार पर समझी जा सकती है कि मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहकर पुकारा जाता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को आवश्यक माना गया है। वर्तमान में जहाँ एक ओर मीडिया विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों के विषय में जागरूक कर रही है वहीं दूसरी ओर विश्व की सच्चाई और वास्तविकताओं पर प्रकाश डालकर एक अहम रोल निभा रही है। भारत पत्रकारिता की दुनिया में बड़ा बाजार है और वर्तमान में पत्रकारिता की गुणवत्ता व ईमानदारी प्रश्नों के घेरे में है।

मीडिया के अनेकों ऑनलाइन व ऑफलाइन रूप आकार ले रहे हैं। ऐसे में मीडिया के दो रूप मुखर हो रहे हैं- जवाबदेह मीडिया और गैर जवाबदेह मीडिया।

---

[193] अनुसंधान पत्रिका, सं. शगुफ्ता नियाज़, अप्रैल 2022- सितम्बर 2022 (संयुक्तांक), पृ०79

जहाँ पहला रूप भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत बना रहा है वहीं दूसरा राष्ट्र के हित में नहीं है। जनता सबसे अधिक मीडिया से प्रभावित हो रही है। ऐसे में कश्मीर जैसे विवादग्रस्त क्षेत्र में मीडिया की भूमिका हमेशा से महत्त्वपूर्ण रही है।

जम्मू और कश्मीर में मीडिया का प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और सोशल मीडिया स्वरूप सक्रिय है। इनमें सोशल मीडिया प्रायः बाधित संचार माध्यम के रूप में रहा है जिस पर आए दिन प्रतिबंध लगा दिया जाता है। कश्मीर सम्बन्धी खबरों में तथ्यों को हमेशा तोड़-मरोड़कर पेश करने के आरोपों की वजह से ये प्रतिबंध लगाए जाते हैं। एक ऐसा स्थान जहाँ मीडिया सकारात्मक भूमिका निभा सकती है, वहां टीआरपी की दौड़, विचारधाराओं के मतभेद और क्षेत्रवाद-राष्ट्रवाद की प्रवृत्तियों ने उसे खोखला बना डाला है।

कश्मीर में तीन स्तरों पर मीडिया कार्य कर रही है- स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय। स्थानीय मीडिया जहाँ कमोबेश वादी के लोगों की समस्याओं, शोषण और मानवाधिकार हनन को केन्द्र में रखकर सक्रिय है वहीं राष्ट्रीय मीडिया कश्मीर को भारत के अंग के रूप में दिखाने के उद्देश्य को लिए प्रायः वास्तविकता को छुपाती पायी जाती है। इस मीडिया के माध्यम से कश्मीर को लेकर हमारी समझ अक्सर निरुद्देश्य बहसों और सतही रिपोर्टिंग से बनती है। कश्मीर की बात उठते ही राष्ट्रीय मीडिया अपनी भूमिका भूल देशभक्ति को वरीयता देने लगता है। 'कश्मीरनामा' के लेखक अशोक कुमार पाण्डेय का मानना है, "हमारे अख़बार पत्र-पत्रिकाएं, समाचार माध्यम इन्हीं मुद्दों, बहस, मुबाहिसे में मसरूफ दीखते हैं। जिसमें कुछ कश्मीर विशेषज्ञ पत्रकार और अक्सर सैन्य अधिकारी जो बहस करते हैं उनका लुब्बे-लुबाब सिर्फ वे तरीके होते हैं जिनसे कश्मीर को नियंत्रण में रखा जा सके।"[194]

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मीडिया ने अवश्य निर्णायक भूमिका निभायी है परंतु उनकी खबरों के स्रोत एवं उनसे पड़ने वाला प्रभाव प्रायः चिंता का विषय रहे हैं।

---

[194] अशोक कुमार पाण्डेय, कश्मीरनामा, पृ०12

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मीडिया में कश्मीर को लेकर प्राय: विरोधी विचार प्रस्तुत किए गए हैं। जहाँ कश्मीर को लेकर राष्ट्रीय मीडिया की कवरिंग राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से की जाती है वहीं अन्तर्राष्ट्रीय मीडिया इसे एक संघर्ष क्षेत्र के रूप में देखती है। स्थानीय मीडिया भारत की मुख्यधारा की प्रेस के विकल्प के रूप में 1990 के दशक में आकार लेती है। स्थानीय मीडिया में राष्ट्रीय मीडिया के प्रति एक आक्रोश का भाव है।

'कश्मीर 370 किलोमीटर' उपन्यास में रवींद्र प्रभात लिखते है, "सब कुछ ठीक है, बताने वाली भारतीय मीडिया को लोग 'झूठ का पुलिंदा' बता रहे थे और कह रहे थे कि 'यह सच नहीं दिखाता'।"[195] एक पोषित धारणा को कश्मीर से बाहर फैलाने में राष्ट्रीय मीडिया ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। ऐसे में कश्मीर प्रकरण पर राष्ट्रीय मीडिया की सार्थकता पर हमेशा सवाल किया जाता है। पेड मीडिया ने अर्थवत्ता को नष्ट किया है। मीडिया का कश्मीर से जुड़ा कोई भी रूप संतुलित खबर या तटस्थ नजरिये को लेकर काम नहीं कर रहा। हर स्तर की मीडिया अतिरेक का शिकार है।

कश्मीर की स्थानीय मीडिया पर भारत विरोधी प्रायोजित खबरें एंव मनगढ़ंत नैरेटिव गढ़ने का आरोप लगाया जाता है। यह भी पाक समर्थित गतिविधियों में से एक महत्त्वपूर्ण रणनीति है, "पाकिस्तानी सेना और आई.एस.आई. की ओर से जम्मू-कश्मीर में छद्म-युद्ध (प्रॉक्सी-वार) लड़ रहे आतंकवादी संगठनों ने यह सुनिश्चित किया था कि कोई भी राष्ट्रवादी या भारतीयतावादी पत्रकार कश्मीर घाटी में न टिक पाए ताकि उनके द्वारा 'मैन्यूफैक्चर्ड एंड मैन्यूपुलेटेड' खबरें ही प्रचारित और प्रसारित हों। इन प्रायोजित पत्रकारों और उनकी झूठी-सच्ची खबरों ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत विरोधी नैरेटिव गढ़ा।"[196] ऐसे में कश्मीर से जुड़ी खबरों को लेकर बेखबरी का आलम है।

---

[195] रवीन्द्र प्रभात, कश्मीर 370 किलोमीटर, पृ० 11

[196] बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, पृ०445

अखबारों में खबरें अवश्य छपती हैं पर कश्मीर की समस्याओं को लेकर उनमें गंभीरता कम ही दिखाई देती है। पत्रकारों की गलतबयानियों एवं फतवेबाजियों का प्रभाव कश्मीरियों पर पड़ता है और ऊपरी तौर पर या निष्पक्ष होकर समस्याओं को बिना समझे किसी भी प्रकार का एकपक्षीय निर्णय घातक सिद्ध हो सकता है। इस संदर्भ में 'नाकाबंदी' उपन्यास में सोफिया की मां कश्मीरियों का पक्ष रखते हुए कहती है, "बेटा, अखबार और टीवी चैनलों की खबर कश्मीर की खबर नहीं सरकारी खबर होती है। सरकार वो खबर दिखाती है जो उसे दिखाना है। कश्मीर की अवाम क्या कहती है उस आवाज को किसी तरह से दबा दें। खबरों में पढ़ लेने से कुछ नहीं होगा। हर सरकार अपनी नाकामी का ठीकरा पाकिस्तान पर फोड़ती है। बेटा, नेताओं की बात मत सुनो। यहाँ के लोगों की बात सुनकर देखो। हमारी जिन्दगी को महसूस करो, हमारे संघर्ष को देखो।"[197]

कश्मीर में मीडिया तभी अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकती है जब उसके स्त्रोत और नजरिया दोनों तटस्थ व बहुआयामी हों। एकपक्षीय चिंतन कभी मीडिया को सूचना की गहराई तक नहीं पहुंचा सकता। ऐसे में खबरों को मसालेदार बनाने की प्रवृत्ति घाटी की ओर ही मीडिया का ध्यान आकर्षित किए रहती है। सच्चाई से और निष्पक्ष होकर की गई पत्रकारिता कम ही देखने को मिलती है।

मीडिया अपनी गुणात्मकता और भिन्न संदर्भों के बहुकोणीय परीक्षण से ही लोकतंत्र को मजबूत बना सकती है और शासक व जनता के बीच एक सेतु का काम कर सकती है। वर्तमान में कश्मीर से जुड़े जिस वर्ग के साथ मीडिया समझौतापरस्त एवं उपेक्षित व्यवहार कर रही है, वह है कश्मीरी पंडितों का समुदाय। 'कथा सतीसर' उपन्यास में प्रेमजी कहता है, "वे लोग दिल्ली से आकर यहाँ कुछ नेताओं और कुछ दहशतगर्दों से बातचीत करते हैं। सैर-सपाटे होते हैं,

---

197 आरिफा एविस, नाकाबन्दी, पृ० 44

और अपने अखबारों के लिए सुनी-सुनाई, या एकतरफा रिपोर्ट तैयार कर छापते हैं। अल्पसंख्यकों से मिलने, उनकी तकलीफें सुनने की ज़हमत कौन उठाता है?"[198]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक नए भारत का सपना देखा गया था। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र को सशक्त और प्रासंगिक बनाने के लिए मीडिया एक महत्त्वपूर्ण कारक था परंतु वर्तमान में परिवर्तन का चक्र तेजी से चला है। मीडिया में अवसरवादिता व चाटुकारिता का प्रवेश हुआ है। एक ईमान वाला पत्रकार शायद ही पत्रकारिता के क्षेत्र में अपने कदम बढ़ा पाए। पत्रकारिता जोखिम का काम बन चुकी है। किसी भी पक्ष के व्यक्तिगत हितों पर प्रभाव पड़ते ही, विशेषकर सत्ता या उच्च वर्ग स्थितियां ख़तरनाक होने लगती हैं।

कई पत्रकारों को सच्चाई सामने रखने के प्रयासों में अपने प्राण भी त्याग देने पड़े हैं। दूरदर्शन के कश्मीर चीफ लासा कौल ऐसे ही पत्रकारों का एक उदाहरण हैं, जिन्हें मनगढ़ंत खबरों के न छापने पर जे.के.एल.एफ. आतंकियों ने भून डाला था। 'नाकाबन्दी' उपन्यास की सोफिया, 'बर्फ और अंगारे' उपन्यास के कमल बाबू, 'पाषाण युग' के बृजमोहन और 'शिगाफ़' उपन्यास का जमान प्रतिबद्ध पत्रकारों के रूप में कश्मीर में आयी दरारों को भरने हेतु प्रयासरत हैं। सोफिया पत्रकारिता के जोखिमों से सामना करती हुई कश्मीर की ग्राउंड रिपोर्टिंग करती है। बृजमोहन आतंक के दौर में पत्रकारिता के गिरते स्तर को लेकर परेशान होते हैं तो कमल बाबू आर्मी और मिलिटेंसी के साथ मानवाधिकार की जमीनी हकीकत को जानने के लिए विपरीत हालातों में कश्मीर जाने का मन बना लेते हैं।

कश्मीर में स्थानीय मीडिया के प्रतिनिधि के तौर पर 'शिगाफ़' उपन्यास के पात्र जमान को देखा जा सकता है। वह एक पत्रकार है और कश्मीर में चल रहे सत्ता दमन, सैन्यबलों के शोषण, युवा वर्ग, स्त्री एवं आम कश्मीरियों की रोजमर्रा की समस्याओं को प्रकाश में लाकर कश्मीर में अमन का रास्ता ढूंढने को संकल्पबद्ध है। ऐसे में जमान का व्यक्तित्व मीडिया की संशयग्रस्त स्थिति के

---

[198] चन्द्रकान्ता, कथासतीसर, पृ० 487

बीच पत्रकारिता के प्रति आश्वस्त करता प्रतीत होता है। वह तटस्थता का अभाव भारतीय मीडिया की कमजोरी के रूप में देखता है। उसका मानना है, "सच पूछो तो रिपोर्टर की अपनी राय तो कुछ नहीं होती। रही बात मेरी पर्सनल लॉयल्टी और सिंपैथी की, तो हां, एक आम कश्मीरी की तरह मैं भी दोतरफा मुश्किल में हूँ। मैं दहशतगर्दी या दरन्दाजी के पूरी तरह खिलाफ हूँ। कभी मैं फौज के जमावड़े के विरोध में हूँ तो कभी इनका अहसानमन्द भी होता हूँ। 'आज़ाद इस्लामिक मुल्क कश्मीर' के नारे में मेरा जरा भी यकीन नहीं है। झूठ नहीं कहूँगा- अमनपसन्द, खुशहाल, टूरिज्म से भरा-पूरा ऑटोनोमस कश्मीर मेरा भी ख़्वाब है। वही कश्मीरियत, जो सूफीज़्म, शैविज्म और इस्लाम तीनों के मिलने से पूरी होती है।"[199]

स्पष्ट है कि एक तटस्थ और सूचना केंद्रित मीडिया ही कश्मीर की स्थिति को लेकर निर्णायक भूमिका निभा सकती है न की भिन्न-भिन्न विचारधाराओं को केन्द्र में रखने वाली मीडिया। मीडिया को कश्मीर से जुड़े हर पहलू पर गहन जाँचकर किसी भी रिर्पोट को प्रस्तुत करने से वस्तुस्थिति ज्यादा स्पष्ट होगी। इसमें स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मीडिया का सामंजस्य हितकर सिद्ध हो सकता है।

5.7 पर्यावरणीय अस्थिरता एवं संरक्षण-प्रयास

कश्मीर को लेकर प्रायः जिन विषयों पर बातचीत की जाती है, उनसे हटकर वर्तमान में कुछ नवीन समस्याएं भी उभर कर आईं हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक है। पर्यावरणीय अस्थिरता कश्मीर से जुड़ा एक ऐसा ही मसला है जो आज चिंता का विषय बन चुका है। कश्मीर में पिछले दशकों में पर्यावरण का क्षय हुआ है जिसका विपरीत प्रभाव वहां की प्रकृति पर पड़ा है। प्राकृतिक संसाधनों का निरन्तर दोहन और संरक्षण के अभाव में समस्या बढ़ती ही जा रही है। असंतुलित पर्यावरण से बड़ी आपदा की आशंका है। बाढ़ और भूकंप के भी खतरे पैदा हो रहे हैं। प्राकृतिक जलस्त्रोतों का सूखना चिंता का विषय है जो

---

[199] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ० 183

हिमालयन रेंज में असंतुलन का कारण हो सकता है। वनों एवं जंगलों में वृक्षों का अवैध कटाव, पशु भूमि पर अतिक्रमण के मुद्दों को गंभीरता से लिए जाने की आवश्यकता है।

कश्मीर में लंबे समय से चल रहे संघर्ष की कीमत पर्यावरण को भी चुकानी पड़ रही है। सशस्त्र संघर्ष पर्यावरण को घोर क्षति पहुंचाते हैं। पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन के जानकार डॉ. इरफ़ान रशीद का मानना है, "जहाँ भी मानवजनित गतिविधि होती है, निश्चित रूप से इसकी कीमत पर्यावरण को चुकानी पड़ती है, विशेष रूप से इको नाजुक क्षेत्रों में।"[200] कश्मीर में भारत-पाक की सैन्य कार्यवाहियों ने हिमालय क्षेत्र को काफी प्रभावित किया है। इसके कारण अवैध शिकार में भी वृद्धि हुयी है। पक्षियों की अनेक प्रजातियां लुप्त हो चुकी हैं। शोधों के आधार पर कश्मीर में तैनात सैनिकों को अवैध कटाव व शिकार में लिप्त पाया गया है। 'शिगाफ़' उपन्यास में डॉ. जुबैर कहते हैं, "सच कड़वा होता है मगर सिक्योरिटी एजेंसी की तैनातगी के नाम पर आर्मी और सी.आर.पी.एफ. और बी.एस.एफ. ने पेड़ और लकड़ियाँ कटवाकर पैसा बनाया है। शाहतूश और लोमडी की खालें बेचनेवाले सौदागरों को शह दी है।"[201] ऐसे में रक्षकों की भी भक्षक प्रवृत्ति पर रोक लगनी जरूरी है।

कश्मीर एक नाजुक क्षेत्र है जहाँ विकास की रेल एक निश्चित रूपरेखा के बिना नहीं चलायी जा सकती। कश्मीर में पर्यटन के बढ़ते कारोबार को देखते हुए वहां लगातार किया जा रहा कंस्ट्रक्शन भविष्य के लिए अहितकर है। इसके साथ ही नई बस्तियों का भी निर्माण किया जा रहा है। ऐसे में वृक्षों को भारी मात्रा में काटा गया है जो निश्चित रूप से पर्यावरण में असंतुलन का एक बड़ा कारण है। 'आतंक की दहशत' उपन्यास में वृक्षों के इस कटाव पर चिंता व्यक्त की गयी है, "एक समय यह पूरा इलाका एक काफी बड़ा फलों का बगीचा था। जमींदार ने

---

[200] नुसरत सिद्दीक, कश्मीर में संघर्ष की कीमत चुका रहा पर्यावरण, 06/11/2021 = अनादोलु

[201] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ, पृ. 171

फलों के पेड़ काट डाले, जमीन को छोटे-छोटे प्लॉटों में बांटा और उन्हें लोगों को बेच दिए। शहर के इस भाग में इसी तरह छोटे-छोटे मोहल्ले बना दिए गए हैं। नई बस्तियाँ बनाने के लिए पेड़ गायब हो रहे हैं।"[202]

कश्मीर हमेशा से ही अपने स्वच्छ एवं निर्मल जल वाले जलस्त्रोतों हेतु प्रसिद्ध रहा है। यहाँ की झीलें, बल एवं नदियां मुख्य आकर्षण हैं। इसमें वितस्ता का नाम प्रमुख है जिसे कश्मीर की पहचान के तौर पर देखा जाता है। वर्तमान में वितस्ता की स्थिति चिंतनीय हैं। वितस्ता का जलस्तर लगातार कम हो रहा है एवं वह प्रदूषित हो रही है। कहीं-कहीं वह लुप्त भी हो चुकी है। ऐसे में कश्मीर में माँ कही जाने वाली वितस्ता के संरक्षण को लेकर 'कथा सतीसर' की कात्या चिंतित है। वितस्ता की स्थिति पर कात्या दुःख व्यक्त करती है, "लेकिन वितस्ता सूखने लगी है। मल-मूत्र, विष्ठा को अपने साथ बहाकर ले जाती माँ, कृशकाय और पीली पड़ती जा रही है।"[203] 'यहां वितस्ता बहती है' उपन्यास में भी नदी में बढ़ती गंदगी का जिक्र है। किनारे पर रहने वाले परिवार घरों-नालियों का मल इत्यादि नदी में बहा देते हैं। शहर भर के कूड़े-कचरे से नदी अटी पड़ी है।

डल झील कश्मीर में सैलानियों के लिए मुख्य आकर्षण है। इस वृहद आकार की झील में हाउसबोटों की काफी संख्या आवास की सुविधा भी उपलब्ध कराती है। हाउसबोटों से निकलने वाला कूड़ा एवं मल सीधे डल में डाल दिया जाता है जिसके कारण यह झील प्रदूषित हो रही है। झील के चारों ओर बस्तियों के बनने से यह काफी संकुचित हो गयी है। कई बार डल की सफाई के अभियान भी चलाए गए पर थोड़े समय बाद फिर वही स्थिति हो गयी। जगमोहन के समय भी सराहनीय प्रयास किये गये। तब डल काफी साफ हो गई थी पर वर्तमान में प्रदूषण से पानी बदबू मारने लगा है। 'कथा सतीसर' में चन्द्रकांता लिखती हैं, "डल किनारे उगी कुकुरमुत्तों- सी बस्ती पर उन्हें चिन्ता भी हुई कि झील डल में हिल-काई मंगोल के साथ टनों फासफोरस और नाइट्रोजन बहती रहती है। अशरफ को

---

[202] तेज एन. धर. आतंक की दहशत, पृ. 78

[203] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृ. 427

अबुल फजल याद आ गए, "यारो! आज अबुल फजल हमारे साथ होते, तो इस 24 वर्ग किलोमीटर से सिकुड़कर दस वर्ग किलोमीटर रह गई झील को देखकर गश खा जाते। तब तो इसे धरती का स्वर्ग कहा था। आज भला क्या कहकर पुकारते?"[204]

कश्मीर के पर्यावरण असंतुलन का एक प्रमुख कारण वहाँ सरकार द्वारा विकास के बनाए जाने वाले नए प्लान और प्रोग्राम हैं। इन प्रोजेक्ट्स पर काम करते हुए अक्सर कश्मीर के पर्यावरणीय हितों को अनदेखा कर दिया जाता है। ऐसे में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो रहा है। विकास के एक पहलू को ही महत्त्व देने पर स्थितियां और भी बिगड़ सकती हैं। रोजगार के अवसर और पर्यटन उद्योग अवश्य समृद्ध हो रहे हैं परंतु पर्यावरण के क्षरण की बड़ी कीमत भी वहाँ के निवासियों को चुकानी पड़ेगी। अशरफ के गोल्फ कोर्स बनाने की बात का जिक्र करने पर 'कथा सतीसर' उपन्यास का पात्र विकी चौंक जाता है। वह कहता है, "छोड़ो यार, सैलानी गोल्फ खेलने इधर नहीं आते। जो आते हैं, वे गुलमर्ग जाना पसन्द करते हैं। आकर्षण तो और भी हो सकते थे। मुट्ठीभर ताजा हवा भी लोगों से छीन लो, ऐसा क्या आकर्षण? ऐसे ही जंगल गायब होते जा रहे हैं। चिनार कितने कम हो गए हैं हमारे देखते-देखते? पता नहीं, क्या चाहती है हमारी सरकार?"[205]

कश्मीर के आस-पास के राष्ट्रों के युद्धों का भी प्रभाव कश्मीर के पर्यावरण पर पड़ता है विशेषकर वहाँ की जलवायु पर। कई बार विशेषज्ञों के द्वारा वहां पर्यावरणीय स्थिति की जाँच में प्रदूषण को ही मुख्य कारण माना गया। ऐसी ही एक घटना का जिक्र 'काली बर्फ' कहानी में भी है, "बाद में विशेषज्ञ आए। प्रयोगशालाओं में बर्फ की जांच हुई। निष्कर्ष निकला- दूषित वातावरण। उधर युद्ध के दौरान कुवैत में सद्दाम हुसैन ने तेल के कुओं में आग लगा दी थी। दमघोंट

---

[204] वही, पृ. 476

[205] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृ. 476

धुआं दूर-दूर तक फैलकर शफ्फाक बर्फ पर भी कालिख पोत गया था।"[206] अतः बहुत आवश्यक है कि कश्मीर में पर्यावरण की गिरती स्थिति को गंभीरता से लिया जाए तथा संरक्षण के लिए सजगतापूर्वक स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर पहल की जाये। पर्यावरणीय स्थिति में सुधार ही वर्तमान की मांग है।

5.8 <u>आर्थिक विकास के अवसरों की माँग</u>

कश्मीर में आर्थिक विकास को लेकर हिन्दी कथा साहित्य में काफी कुछ लिखा गया है। कश्मीर की स्थिति एवं वहां के जनजीवन की बेहतरी के लिए आर्थिक विकास को एक न टाली जा सकने वाली आवश्यकता के रूप में चित्रित किया गया है। कश्मीर के एक संवेदनशील क्षेत्र होने के कारण वहां घटने वाली कोई भी गतिविधि आर्थिक रूप से कश्मीरियों को प्रभावित करती है। कश्मीर की अर्थव्यवस्था इस दृष्टि से विशेष है कि इसमें कई क्षेत्रों का योगदान है। ये सभी क्षेत्र पिछले दशकों के हिंसक संघर्ष से नकारात्मक रूप से प्रभावित हुए हैं। भौगोलिक दृष्टि से भी स्थितियाँ प्रतिकूल रही हैं। यहां की अर्थव्यवस्था आयात पर अधिक निर्भर है।

क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का एक मुख्य अंश यहाँ की कृषि से संबद्ध गतिविधियों से आता है। इसके अतिरिक्त अर्थव्यवस्था में योगदान देने वाले मुख्य क्षेत्र पर्यटन, हस्तशिल्प, उद्योग एवं सरकारी नौकरियां हैं। कश्मीर की अधिकांश आबादी कृषि और बागवानी पर निर्भर है। कश्मीर घाटी देश की सबसे बड़ी सेब उत्पादक है। सेब के उत्पादन से लेकर इसके विक्रय तक रोजगार सृजन के अलग-अलग क्षेत्र विकसित हुए हैं। इनमें बागवानी, पैकिंग उद्योग, कोल्ड स्टोरेज एवं परिवहन प्रमुख उद्योग हैं। केसर का उत्पादन कश्मीर के तीन जिलों पुलवामा, बड़गाम और श्रीनगर में होता है। इसमें विशेष महत्त्व पुलवामा के पंपोर क्षेत्र की केसर को दिया जाता है। यहाँ के केसर को सर्वोत्तम गुणवत्ता वाला माना जाता है। इस क्षेत्र में महिलाएं अधिक हैं। पिछले कुछ वर्षों में कश्मीर के इस मुख्य आर्थिक क्षेत्र पर लॉकडाउन एवं अन्य हिंसक संघर्षों के चलते काफी प्रभाव

---

[206] चंद्रकांता काली बर्फ कथा संग्रह, पृ० 150

पड़ता रहा है। 'नाकाबन्दी' उपन्यास में अकबर कहती है, "यह नहीं सुनना तो यह बताऊं कि फसलें बर्बाद हो रही हैं। या यह कहूँ कि हमारे काम धंधे ठप्प हैं।"[207]

पर्यटन कश्मीर की अर्थव्यवस्था का एक और महत्त्वपूर्ण स्तंभ है। यह क्षेत्र वहाँ की एक बड़ी आबादी को रोजगार उपलब्ध कराता है परंतु हिंसक गतिविधियों के चलते समय दर समय गिरावट भी आती है। कश्मीर में पर्यटन क्षेत्र पर आश्रित समुदायों में हाउसबोट, होटल, स्थानीय पिट्ठू वाले, गाइड आदि भी प्रभावित होते हैं। परिवहन में कार्यरत कश्मीरी इसी उद्योग से अपनी जीविका का अधिकांश भाग कमाते हैं और वर्ष में पर्यटन का समय अपेक्षाकृत कम होने की वजह से रोजगार भी प्रभावित होता है। बुनियादी ढांचे की स्थिति लगभग खस्ताहाल है जिसके कारण इस क्षेत्र में प्रगति हेतु जरूरी ढांचे और अन्य सहायक सुविधाओं के विकास की कोशिश की भी बात की गयी है। वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए जवाहरलाल कौल लिखते हैं, "शुद्ध आर्थिक नफे-नुकसान का गणित। इसी गणित पर कश्मीर का प्रशासन चलता रहा है और आज भी चल रहा है। वरना केंद्र से कश्मीर को जितना पैसा मिला है, उससे तो उस राज्य का आर्थिक कायाकल्प हो जाना चाहिए था।"[208]

यह अवश्य है कि आतंकी गतिविधियों के होने से पर्यटकों की संख्या में भारी कमी आती है। 'कथा सतीसर' उपन्यास में चंद्रकांता लिखती हैं, "इधर एकाध साल सैर-सपाटे भले बन्द हो गए, पर रोजगार बन्द कहाँ होते हैं? बल्कि अब तो इतवारों को उसका गुलिस्तान शिकारा कभी-कभार अंग्रेजी सैलानियों को लेकर झील डल पर भी थिरकता है।"[209] इसके अलावा निशात बाग, पारी मैल, शंकराचार्य मंदिर, हजरतबल, हारी पर्वत, गुलमर्ग, सोनमर्ग आदि स्थानों पर भी पर्यटन के आकर्षण का जिक्र लेखिका करती हैं।

---

[207] आरिफा एविस, नाकाबन्दी, पृ. 103

[208] सं. राजकिशोर, कश्मीर का भविष्य, पृ. 106

[209] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृ. 60

हस्तशिल्प कश्मीर की अर्थव्यवस्था का वह सुदृढ़ क्षेत्र है जो इस क्षेत्र को दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता प्रदान कर सकता है। यहाँ की उच्च गुणवत्तायुक्त शिल्प कौशल, आकर्षक डिजाइनें और उपयोगिता ने कश्मीर की हस्तशिल्प सामग्रियों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति दिलाई है। प्रौद्योगिकी और नवाचार के इस्तेमाल से इस क्षेत्र को और मजबूत बनाया जा सकता है। कश्मीर की कला और शिल्प यहाँ की सांस्कृतिक पहचान लिए हुए हैं। हथकरघा उद्योग यहाँ का सबसे पुराना और बड़े स्तर पर प्रचलित उद्योग है। इसके अंतर्गत पश्मीना शॉल, रफल शाल, शहतूश शॉल, साड़ियां, कश्मीरी सूट बुनने में माहिर कारीगरों को रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं। कश्मीरी शॉल की गुणवत्ता के विषय में चन्द्रकांता लिखती हैं,"सुलतान जू के पास बीसेक हुनरमन्द शालसाज हैं जिन्हें वे बेटों की तरह प्यार भी देते हैं और गलतियों के लिए डांट-फटकार भी सुनाते हैं। बेलबूटों के रंगों के मिलान में जरा भी गलती हो तो सुलतान जू को तकलीफ होती है। कारीगरों को वे समझाते हैं कि अपनी सदियों पुरानी शाल इंडस्ट्री अपनी बेजोड़ खूबियों की वजह से ही दुनियाभर में मशहूर है।"[210]

किसी भी क्षेत्र के सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग उस राज्य के औद्योगिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यही बात कश्मीर पर भी लागू होती है। कश्मीर में अर्थव्यवस्था का यह क्षेत्र कम विकसित है। विनिर्माण और सेवा क्षेत्र कश्मीरियों को अधिक रोजगार उपलब्ध करा सकते हैं। इंटरनेट सेवाओं के सुचारू रूप से न चलने के कारण आईटी क्षेत्र में हमेशा जोखिम रहता है। एक महत्त्वपूर्ण रणनीतिक स्थान पर स्थित होने के बावजूद, जम्मू और कश्मीर अपनी भौगोलिक विशिष्टता का लाभ नहीं उठा पा रहा है।

इस क्षेत्र में विद्युत उत्पादन, पर्यटन, औद्योगिक क्षेत्र में निवेश की अपार संभावनाएं हैं परन्तु स्थिरता एवं सटीक रणनीति के अभाव में कश्मीर में आर्थिक विकास अपनी गति नहीं पकड़ पा रहा है। आर्थिक विकास के लिए किसी भी क्षेत्र में पहला चर स्थिरता है और दूसरा शांति। वर्तमान में कश्मीर इन दोनों चरों के

---

[210] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृ. 179

अभाव में है और ऐसे में इस क्षेत्र के लोग एवं सरकार निर्णायक भूमिका अदा कर सकते हैं क्योंकि समृद्धि शांति के रास्ते से ही प्रवेश करती है।

आर्थिक विकास के बीच एक सबसे बड़ी बाधा कश्मीर में फैला भ्रष्टाचार है जिसके चलते कश्मीर की मौजूदा आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हो पा रहा है। केंद्र की ओर से आने वाली धनराशि का बहुत कम हिस्सा प्रगति हेतु इस्तेमाल किया जा रहा है। इस पर जवाहरलाल कौल लिखते हैं, "लेकिन उद्योग लगाने, रोजगार पैदा करने, कृषि, पानी, बिजली का विकास करने, व्यापार बढ़ाने और क्षेत्रीय संतुलन पैदा करने के लिए और, सबसे बड़ी बात, सही लोकतांत्रिक प्रशासन चलाने के दुर्गम मार्ग को कोई क्यों अपनाये, अगर प्रभु वर्ग को पैसा उसके बिना ही मिल जाता हो।"[211] इस प्रकार एक सकारात्मक पहल, जहाँ कश्मीर के आर्थिक क्षेत्रों को सुदृढ़ एवं प्रोत्साहन देने की आवश्यकता को समझा जाएगा वहाँ कश्मीर की आर्थिक उन्नति के द्वार अवश्य खुलेंगे।

5.9 <u>अनुच्छेद 370 और 35 (A)</u>

गत वर्षों में कश्मीर सम्बन्धी सबसे ज्वलंत मुद्दा बनकर उभरा है, वहाँ से अनुच्छेद 370 और अनुच्छेद 35 ए का निरस्तीकरण। जहाँ कथा साहित्य में स्वायत्तता का विशेष दर्जा देने वाले, अनुच्छेद 370 और 35 ए के विषय में लिखा गया है वहीं इन अनुच्छेदों के निरस्त होने के बाद कश्मीर में बदले हालातों पर केन्द्रित कई उपन्यास व कहानियां भी लिखी गईं। संवेदना, विरोध, अनिश्चितता, अधिकार जैसे अनेक प्रश्नों से घिरा यह निर्णय साहित्यकारों के वैचारिक उद्वेलन का कारण बना और दो महत्त्वपूर्ण उपन्यास इस समस्या पर लिखे गये, प्रथम 'नाकाबन्दी' (आरिफा एविस) और दूसरा 'कश्मीर 370 किलोमीटर' (रवींद्र प्रभात)। दोनों ही उपन्यासों में कश्मीर से अलोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत इन अनुच्छेदों को निरस्त किए जाने के निर्णय की निंदा की गयी है तथा कश्मीरियों के मनोभावों को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

---

[211] सं. राजकिशोर, कश्मीर का भविष्य, पृ. 106

कश्मीर में अनुच्छेद 370 को लेकर हमेशा से ही बुद्धिजीवियों में एक संवाद, एक हल ढूंढने की प्रवृत्ति रही है। कश्मीर और भारतीय संविधान के बीच यह एक संवाद सेतु जैसा माना गया। भारत विभाजन के बाद कश्मीर को एक विशेष संवैधानिक दर्जा दिया गया जो उनके राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक हितों के संरक्षण की दृष्टि से सुरक्षा कवच जैसा था। इस अनुच्छेद को संविधान के 21 वें भाग में रखा गया था। इसका शीर्षक था, 'अस्थायी, संक्रमणकालीन और विशेष प्रावधान।' इसे केंद्रीय मंत्री एन. गोपालस्वामी अय्यंगार ने 17 अक्टूबर 1947 को अनुच्छेद 306-ए के रूप में प्रस्तुत किया जो बाद में भारतीय संविधान में अनुच्छेद 370 के रूप में दर्ज किया गया। इस अनुच्छेद के शामिल किए जाने पर काफी विरोध भी हुआ था। साथ ही इसे बाकी राज्यों के साथ भेदभाव के तौर पर भी देखा गया।

अनुच्छेद 370 भारतीय संविधान के कश्मीर में पूर्णतः लागू होने पर प्रतिबंध लगाने वाला रहा। इससे होकर कुछ ही अनुच्छेद कश्मीर पर लागू हो सकते थे। इस अनुच्छेद के विषय में अरुण कुमार त्रिपाठी विवरण देते हैं, "अनुच्छेद 370 में चार उपखंड, तीन उपबंध और एक स्पष्टीकरण है। अनुच्छेद 370 की शुरुआत इस वाक्य से होती है, इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी... फिर खंड (1) का उपखंड (क) कहता है कि अनुच्छेद 238 के प्रावधान जम्मू और कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होंगे। अनुच्छेद 238 में राज्यों के 'ब' समूह के बारे में प्रावधान थे, जिन्हें 1956 में सातवें संविधान संशोधन के तहत खत्म कर दिया गया। इसके बाद उपखंड (ख) है, जिसके अनुसार राज्य के अधिनियमों के निर्माण के लिए संसद की शक्ति जिन विषयों तक सीमित होगी, वे वर्णित हैं।"[212] इसके माध्यम से कश्मीर को स्वायत्तता का दर्जा प्रदान किया गया।

इस अनुच्छेद का गठन और शर्तें कुछ इस प्रकार रखी गयीं थी कि इसे खत्म करना लगभग असम्भव था और ऐसे में यह एक स्थायी स्थिति ग्रहण कर चुका था। इसके खंड (3) में यह कहा गया था कि राष्ट्रपति ही इस प्रावधान को

---

[212] सं. राजकिशोर, कश्मीर का भविष्य, पृ. 65

खत्म कर सकते हैं परंतु इसके लिए संविधान सभा की सिफारिश आवश्यक है। ध्यातव्य है कि वहाँ की संविधान सभा तो 1956 में ही भंग की जा चुकी थी और ऐसी स्थिति में इस अनुच्छेद को हटाने का रास्ता लगभग बन्द हो जाता है।

अनुच्छेद 35-ए कश्मीर राज्य के स्थायी निवासी की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। इसके अंतर्गत मुख्य रूप से यह प्रावधान बनाया गया कि राज्य के बाहर का व्यक्ति वहाँ संपत्ति नहीं खरीद सकता और न ही वहाँ का स्थायी नागरिक बन सकता है। इसके साथ यह भी प्रावधान था कि यदि इस क्षेत्र की कोई महिला राज्य के बाहर किसी व्यक्ति से शादी कर ले तो वह कश्मीर में मिलने वाली स्थायी निवासी से जुड़ी सुविधाओं से भी वंचित हो जाएगी। इस अनुच्छेद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर अशोक कुमार पाण्डेय लिखते हैं, "इस रिपोर्ट के आधार पर पैतृक आधार पर राज्य की नागरिकता का एक क़ानून 31 जनवरी, 1927 को नया नागरिकता कानून पास हुआ, जिसके अनुसार-महाराजा गुलाब सिंह के सत्तारोहण अर्थात् विक्रमी संवत 1942 के पहले से राज्य में रह रहे और उसके बाद से लगातार राज्य में निवास कर रहे लोगों को राज्य का नागरिक घोषित किया गया। बाहरी लोगों को कश्मीर में जमीन (कृषि और गैर कृषि दोनों ही) खरीदने पर रोक लगा दी गई, उनका नौकरियाँ पाना, वजीफा पाना और कुछ मामलों में सरकारी ठेके पाना भी प्रतिबंधित कर दिया गया।"[213]

5 अगस्त 2019 को गृहमंत्री अमित शाह ने अनुच्छेद 370 एवं 35-ए को हटाने तथा राज्य को दो केंद्र शासित प्रदेशों में विभाजित करने की घोषणा की। इससे पहले कश्मीर में भारी तादाद में सेना और सुरक्षाबलों को तैनात कर दिया गया। कश्मीर के प्रमुख अलगाववादी नेताओं सहित पत्रकारों, मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को नजरबन्द करने के साथ ही इंटरनेट, फ़ोन सहित संचार के अन्य माध्यमों पर भी रोक लगा दी गयी। इसे रद्द करने की असंवैधानिक प्रक्रिया पर वजाहत हबीबुल्लाह टिप्पणी करते हैं, "तवज्जोह देने वाली बात यह है कि राष्ट्रपति के आदेश में संविधान के अनुच्छेद 367 को संशोधित किया गया, जहाँ संविधान

[213] अशोक कुमार पाण्डेय, कश्मीरनामा, पृ० 219

सभा को राज्य की विधान सभा के तौर पर पढ़ा गया और राज्य सरकार का अर्थ राज्यपाल माना गया। ऐसा कर राष्ट्रपति अनुच्छेद 370 को रद्द कर पाए क्योंकि राज्यपाल की सहमति को ही राज्य की सहमति के तौर पर पेश कर दिया गया।"[214]

एक लोकतांत्रिक देश में जनता के मतों की इस प्रकार उपेक्षा निश्चय ही कई प्रश्न खड़े करती है। इस फैसले का कश्मीर से बाहर अन्य राज्यों में हर्षोल्लास के साथ समर्थन हुआ और इसे राष्ट्रभाव से जोड़कर देखा जाने लगा। कश्मीरी जनता के लिए यह विश्वासघात जैसा था और भावनात्मक जुड़ाव के तारों को कमजोर करने वाले निर्णय के रूप में रहा।

एक आम कश्मीरी नागरिक के मन पर भयावह असर पड़ा। जहाँ एक ओर अनुच्छेद 370 को जम्मू-कश्मीर के आंतरिक एकीकरण की बाधा और भारतीय संघ में पूर्ण एकात्मता की अड़चन के तौर पर देखा गया वहीं इसके निरस्त होने को लेकर भारतीय संघ के मजबूत होने, कश्मीरी महिलाओं के अधिकार, बाहरी प्रतिबंध पर नकेल कसने, लद्दाख और जम्मू के प्रति भेदभाव कम होने एवं उद्योग व व्यावसायिक हित को लेकर समर्थन किया गया। इसके साथ ही इस निर्णय से शासन-प्रशासन में संवेदनशीलता, जवाबदेही और पारदर्शिता बढ़ने की बात की गयी। अद्यतन के अंतर्गत डॉ. रसाल सिंह लिखते हैं, "जिस प्रकार सन 1991 के बजट के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए थे, ठीक उसी प्रकार के परिवर्तन के मुहाने पर अभी जम्मू-कश्मीर है। पूंजी-निवेश और आर्थिक-पुनर्नियोजन के लिए उसके द्वार खुल चुके हैं।"[215]

इतिहास में कुछ ऐसी घटनाएं होती हैं जो दुःस्वप्न की तरह टाँक दी जाती हैं, कश्मीरियों के लिए उनका विशेष दर्जा छिनना कुछ ऐसा ही था। आम आदमी गमजदा है और असमंजस की स्थिति में कि ऐसा कैसे हो गया? कश्मीरियों में गम, गुस्सा, दुविधा और अनिश्चितता की स्थिति बनी हुई है। इस निर्णय को

---

[214] सं. शिप्रा किरण, सुलगता कश्मीर, सिकुड़ता लोकतंत्र, पृ. 40

[215] बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, पृ० 447

भारतीय संघ के ढाँचे को हमेशा के लिए कमजोर कर देने वाले फैसले के रूप में देखा गया। एक ऐसा फैसला जो कश्मीरियों को विश्वास में लेकर ही किया जाना चाहिए था, लगभग उनका दमन करके किया गया। वे स्वायत्तता को खोकर अपने शोषण एवं अनिश्चित भविष्य के प्रति चिंतित हैं।

आरिफा एविस लिखती हैं, "धारा 370 को हटाकर सरकार ने हमें अपाहिज बना दिया। सरकार हमारे जल, जंगल, जमीन को पूंजीपतियों को देना चाहती है। इस सियासत से न तो विकास होगा और न ही कश्मीर की समस्या खत्म होगी।"[216] इसी उपन्यास की पात्र सोफिया इस निर्णय के दिवस को कश्मीर के लिए काला दिन मानती है। सत्ता के क्रूर दमन एवं कश्मीरियों की विचलित हो रही मनोस्थिति को उपन्यास में मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है।

'कश्मीर 370 किलोमीटर' उपन्यास में अनुच्छेद 370 के आकार लेने की पृष्ठभूमि के साथ ही निरस्तीकरण के बाद लगाए जाने वाले विभिन्न अंदेशों का भी जिक्र है। इस अनुच्छेद के हटने को जहाँ एक ओर लद्दाख क्षेत्र एवं जम्मू के प्रति भेदभाव को खत्म करने के तौर पर देखा गया वहीं दूसरी ओर निर्वासित कश्मीरी पंडितों के पुनर्स्थापन हेतु एक निर्णायक मोड़ के रूप में। हालांकि घाटी में रह रहे पंडित समुदाय ने इसे उनके लिए घातक माना और समस्या को उलझा देने की बात कही। इस निर्णय को लेकर असमंजस की स्थिति थी। किसी के लिए यह कश्मीर राज्य में आर्थिक समृद्धि, निजी निवेश बढ़ोत्तरी और रोजगार के नए द्वार खुलने जैसा था तो किसी के लिए मानवाधिकारों को ताक पर रखकर किया गया एक राजनीतिक फैसला। रवींद्र प्रभात लिखते हैं, "भारत सरकार ने वहां के लोगों से कुछ नहीं पूछा। सरकार ने यहाँ के लोगों और नेताओं को बंद कर दिया, जो कि ठीक नहीं है। अगर सरकार यह कह रही है कि कश्मीर के लोग इस फैसले से खुश हैं तो ऐसे में सवाल यह कि जब धारा 370 हटाए जाने का फैसला लिया गया तो यहाँ के लोगों से क्यों नहीं पूछा गया? सरकार इतनी डरी हुई क्यों थी?

[216] आरिफा एविस, नाकाबन्दी, पृ० 112

वहाँ के लोगों की आवाज सुनी जानी चाहिए और यही हमारा संविधान भी कहता है।"[217]

अनुच्छेद 35-ए को लेकर एक मुख्य विरोध इस बात पर भी रहा कि यह वहाँ के स्त्री और पुरुष दोनों पर समान रूप से लागू नहीं होता। यदि एक स्त्री राज्य से बाहर विवाह कर ले तो उसकी नागरिकता छिन जाएगी परंतु एक कश्मीरी पुरुष बाहरी राज्य की स्त्री से विवाह कर ले तो उसके अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। पद्मा सचदेव ने अपने उपन्यास 'जम्मू जो कभी शहर था' में इस दुहरेपन पर विरोध दर्ज किया है। वह लिखती हैं, "जो लड़की बाहर शादी करे वो यहाँ की शहरी नहीं है पर लड़कों को रियायत दी गयी, वो चाहे फारुख अब्दुल्ला हों या कोई और। उनकी पत्नियां बिना रियासत में पैदा हुए, बिना भाषा जाने यहाँ की शहरी हो गयीं। पर पद्मा सचदेव की तरह और कितनी ही लड़कियां यहाँ दो गज़ ज़मीन भी नहीं ले सकती।"[218]

कश्मीर भारत का एक आकर्षक पर्यटन स्थल है। यहाँ छोटे-छोटे गृह उद्योग और कलाकार अपनी आजीविका कमाते हैं तथा सैलानियों की मेहमान नवाजी कर जीविका का निर्वहन कर रहे हैं। धारा 370 हटने से, इनके जीवन पर दुष्प्रभाव की आशंका है। वैश्वीकरण और बाजारीकरण के कारण यहाँ के बुनकर, कलाकार और स्थानीय कारोबारी प्रभावित हो सकते हैं। 370 सिर्फ एक अनुच्छेद नहीं था बल्कि वह सुरक्षा कवच भी था जो अब टूट चुका है। इसके टूटने के बाद होने वाले बदलाव आगामी भविष्य में कश्मीर की दशा और दिशा दोनों का निर्णय लेंगे।

---

[217] रवींद्र प्रभात, कश्मीर 370 किलोमीटर, पृष्ठ 18

[218] पद्मा सचदेव, जम्मू जो कभी शहर था, पृ. 8

षष्ठ अध्याय

कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य में स्त्री

समकालीन कथा साहित्य में कश्मीरी स्त्री के जीवन की विकट स्थितियों, संघर्षों एवं विवशता का मार्मिक चित्रण किया गया है। मोतीलाल 'साकी' की पंक्तियाँ हैं, "कब न किया विषपान हमने / जीते रहे तो भी हम,/ आँसू रहे भाग्य अपने / हंसते रहे तो भी हम।"[219] इन पंक्तियों के माध्यम से कश्मीरी स्त्री की सदा से व्यथित मनःस्थिति को समझा जा सकता है। कश्मीर के कुछ ज्वलंत मुद्दों की चमक ने प्रायः वहाँ की स्त्रियों से जुड़े चिंतन को धुंधला कर दिया। 'कश्मीरी स्त्री' शब्द हमारे मानस में एक आकर्षक स्त्री की छवि उभारता है जिसके सौंदर्य से परे हटकर जीवन की वास्तविक स्थितियों को जानने का प्रयास अपेक्षाकृत न के बराबर है। उनके शारीरिक कष्टों एवं मानसिक उतार-चढ़ावों को समझने का प्रयास कम ही किया जाता है। ऐसे में कश्मीरी स्त्री का जीवन-यथार्थ जानना बेहद जरूरी प्रतीत होता है। वर्तमान में इस संदर्भ में हिंदी साहित्य में काफी कुछ लिखा गया है। कश्मीरी स्त्रियों की समस्याओं एवं अनुभवों के आधार पर ही इनके जीवन को निकट से जाना जा सकता है।

6.1 कश्मीरी समाज में स्त्री की स्थिति

कश्मीर एक ऐसा क्षेत्र रहा है जो अपने सौंदर्य के साथ ही अनेक सशक्त स्त्रियों से भी अलंकृत है। इनमें रानी यशोमती, ईशान देवी, रानी सुगंधा देवी, योद्धा रानी दिद्दा, सूर्यमती, कोटा देवी आदि हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा व पराक्रम के बल पर इतिहास में अपनी छाप छोड़ी। लोक वितरण विभाग, नहर व्यवस्था, कर-संरचना सुधार, भवन निर्माण तकनीक, मुक्तसंवाद संस्कृति हो या कमांडो फोर्स का निर्माण, प्रत्येक क्षेत्र में कश्मीरी स्त्रियों की एक प्रभावशाली श्रृंखला रही है। प्राचीन काल की स्त्री-शासिकाओं में दिद्दा एवं कोटा रानी को मिसाल के तौर पर पेश किया जाता है।

---

219 बहुवचन पत्रिका, अंक 64-65-66, पृ० 289

संस्कृत कवि कल्हण ने रानी दिद्दा का उल्लेख कश्मीर की सबसे शक्तिशाली शासिका के रूप में किया है। एक उपेक्षित दिव्यांग कन्या किस प्रकार कश्मीर की रानी बनकर राज्य की बागडोर थामती है और अपनी दूरदर्शिता के बल पर कुशल रणनीतिक प्रबंध करती है। शारीरिक दुर्बलता कभी नेतृत्व के आड़े न आ सकी। परंतु यह भी विचारणीय है कि एक शासिका के जीवन के आधार पर तत्कालीन स्त्रियों के जीवन का आकलन कर पाना मुश्किल है। प्रायः यह इंगित किया गया है कि कश्मीर में महिलाओं की स्थिति भारत के अन्य भागों की स्त्रियों से बेहतर थी। अशोक कुमार पाण्डेय लिखते हैं, "कश्मीर की रानियों का अलग कोष होता था, अपने सलाहकार तथा कोषपाल होते थे और राज्य के मामलों में उनकी राय ली जाती थी। कुछ महिलाएं स्वतंत्र शासक से लेकर सेना के महत्त्वपूर्ण पदों तक भी पहुंची।"[220]

कश्मीर के प्रारंभिक इतिहास को लेकर जो भी हिस्सा उपलब्ध है वह प्रायः राजाओं से ही जुड़ा हुआ है। इस स्थिति में आम समाज की स्त्रियों की जानकारी के लिए स्त्रोत न के बराबर हैं। कश्मीरी साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में भी स्त्रियों का नामोल्लेख नहीं है। सती परम्परा के कश्मीर में प्रचलित होने के भी प्रमाण हैं। तत्कालीन स्त्री शासिकाओं को भी शासन में बने रहने हेतु देह को हथियार के रूप में प्रयोग करना पड़ा। 'कश्मीरनामा' में इतिहासकार अशोक लिखते हैं, "जिस राज्य में मंत्री राजा को अपनी पत्नियाँ प्रस्तुत करते हो, राजाओं के हरम भरे पड़े हों, भोग-विलास चरम पर हो, वहाँ कुछेक स्त्रियों के सफल हो जाने को समाज में स्त्रियों की दशा का प्रतिबिम्ब मानना भ्रामक होगा।"[221]

दिद्दा के पश्चात् सूर्यमती एक महत्वाकांक्षी रानी के रूप में जर्जर हो चुके साम्राज्य को संभालती हैं। वर्ष 1320 में बौद्ध रिंचन के कश्मीर की सत्ता पर कब्जा कर लेने के पश्चात् कोटा रानी उसकी महारानी बनीं। अपने पिता की हत्या करने वाले रिंचन को कश्मीर की गद्दी पर बैठा देख महारानी के पद को

---

[220] अशोक कुमार पाण्डेय, कश्मीरनामा, पृ. 33

[221] वही, पृ. 33

महत्त्व दिया और उसके बगल में बैठी। इस प्रकार समाज की कुत्सित मानसिकता के बीच कुछेक स्त्रियाँ अपनी छाप छोड़ने में सफल रहीं जिसका मुख्य कारण उनकी महत्वाकांक्षा एवं एक स्त्री के रूप में बेहिचक स्वहित को महत्त्व देने की प्रवृत्ति थी।

रिंचन ने इस्लाम धर्म अपना लिया और कश्मीर में इसी के साथ इस्लाम का आगमन होता है। 1323 में रिंचन की मृत्यु के बाद कोटा रानी राज्यारोहण के पश्चात् उदयनदेव से विवाह कर लेती है। तत्पश्चात् कोटा रानी और शाहमीर के मध्य सत्ता संघर्ष होता है और वह आत्मसमर्पण कर देती है। नारी चेतना से अनुप्राणित उपन्यास 'कश्मीर की बेटी' में राजकुमारी कोटा देवी एवं दासी पुत्री चांदनी की कथा कही गयी है। स्त्री-उत्पीड़न को शत्रुघ्न प्रसाद ने उपन्यास का केन्द्र बनाया है। दरया शाह द्वारा चाँदनी का अपहरण करके दस वर्षों तक शोषण किया जाता है। समाज में स्त्री मात्र एक वस्तु बनकर रह गयी। इस उपन्यास में नागा, भीखन और सर्वदेव नामक पात्र चाँदनी की दयनीय स्थिति पर विचार करते हैं, "यह तो ठीक है भीखन ! पर जब कोई एक लड़की को रख लेता है तो वह उसकी मान ली जाती है, इच्छा या अनिच्छा से। स्त्री विवश है। स्त्री क्या भू संपत्ति या सोने का निर्जीव ढेला? कोई दुष्ट किसी स्त्री पर अधिकार कर सकता है। राजा और सामंत के ऊँचे भवन में पत्नी और उपपत्नी केवल भोग-विलास के लिए... ओह! धर्म, ब्याह, परिवार सब यह मान देने के लिए हैं। जब-तब धर्म और परिवार भी नहीं बचा पाते। पशु के समान पुरुष नारी का आखेट करते हैं।"[222] 'कश्मीर की बेटी' उपन्यास के माध्यम से मध्यकालीन परिवेश में नारी की विकट व दयनीय स्थिति को उजागर किया गया है।

कश्मीर के मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति को शैवयोगिनी ललद्यद के जीवन का आधार लेकर बेहतर समझा जा सकता है। काफी कम उम्र में उनका विवाह कर दिया गया। उनकी सास क्रूर थी और जुल्म करती थी। कहा जाता है कि चरित्र पर भी लांछन लगाये गये। ऐसे में ललद्यद के कठोर जीवन पर

---

[222] शत्रुघ्न प्रसाद, कश्मीर की बेटी, पृ०78

आधारित लोकगीत तत्कालीन समाज में स्त्री जीवन पर प्रकाश डालते हैं। उनके वाख व उनसे जुड़ी कथाएँ उस समय के समाज की विकृतियों और उनसे जुड़ी विसंगतियों का परिचय देती हैं। बाल विवाह का शिकार वह अकेली नहीं रही होंगी। उन जैसी कई स्त्रियाँ उत्पीड़न और अपमान की नियति के लिए अभिशप्त होंगी। "वह सन्यासिनी हुई, एक राह चुनी, निःसंग हुई और सड़कों पर फिरती रहीं। देवी स्त्री-सा सम्मान मिला उन्हें, पर उस दौर की हजारों दूसरी औरतें तो उत्पीड़न और अपमान की उसी नियति के लिए अभिशप्त होंगी। जब वह लिखती हैं, 'न जायस त न प्यायास, न खेयम हंद त न शोठ' (न गर्भिणी हुई, न प्रसूता और न प्रसूता का आहार ही किया। तो यह सिर्फ विरक्ति नहीं, एक टीस भी है जिसे देखने के लिए उनके दैवी रूप से पार जाना होगा और अगर यह लोकोक्ति बन गई कश्मीर में तो वहाँ की महिलाओं का एक सामूहिक दुःख ही होगा जिसने इसे बनाया।"[223] आज भी कश्मीर में स्त्रियों को सहनशक्ति के रूप में ललद्यद का उदाहरण देकर समझाया जाता है। मध्यकाल में बेमेल विवाह एवं वैवाहिक बलात्कार के अनेकों स्तर देखे जा सकते हैं।

मध्यकाल में ललद्यद के बाद हब्बा खातून का जिक्र प्रेम की देवी के रूप में किया जाता है। वह कश्मीर की लोककथाओं और दर्द भरे गीतों के रूप में सदा महिलाओं की ज़ुबान पर रहीं। उन्होंने कुरान के साथ-साथ फ़ारसी के कई शायरों को पढ़ा। एक अशिक्षित पुरुष से हब्बा का विवाह हुआ जिसके लिए अपनी पत्नी द्वारा गीतों का लिखना और गाया जाना एक शर्म की बात थी। पति ने उनका त्याग कर दिया और विपरीत स्थितियों में श्रमरत हब्बा दर्द भरे गीत लिखती रहीं। इसके बाद उनकी आवाज के जादू में बंध शहज़ादा युसूफ खान हब्बा से विवाह कर उन्हें श्रीनगर ले आये। कालान्तर में संगीतप्रेमी युसूफ को अकबर के राज में बन्दी बना लिया गया और बिहार भेज दिया गया। वहीं तमाम दुश्वारियों के बीच युसूफ शाह की मृत्यु हो गयी और अपने प्रेमी के विरह में हब्बा गीत लिखती दीवानी सी भटकती रही। क्षमा कौल लिखती हैं, "हब्बा ने स्त्री के उत्पीड़न

---

[223] अशोक कुमार पाण्डेय, कश्मीरनामा, पृ० 47

को सुन्दर काव्य में साफ-साफ बयान किया। बेबाकी के साथ और निर्भीक होकर...बस... हब्बा का प्रेम और सौन्दर्य कुछ भी अज़ीज़ लोन की समझ में नहीं आया और वह मूल्य नहीं कर पाया उसका। पीड़ा ने हब्बा खातून के विरह और ससुराल के उत्पीड़न काव्य की तीव्रता में चार चाँद लगाये। 'वारि व्यन सअत्य वारअ दस छस नो चारअ कर मयोन मालिन्यो हो।"[224]

ललद्यद और हब्बा के बाद इतिहास में सत्रहवीं शताब्दी की रूपा भवानी और अठारहवीं सदी की अरणिमाल का जिक्र आता है। इन दो स्त्रियों का जीवन भी पूर्व की ही तरह पारिवारिक जलालतों को बर्दाश्त करते हुए बीता। अरणिमाल अपने पति भवानीदास काचरू की घनघोर उपेक्षा को सहन करती है और विलास में डूबा भवानीदास उसे पिता के घर वापस सौंप आता है। "अरनिमाल पिता के पास विरह, उपेक्षा और तिरस्कार की पीड़ाओं से जलती काव्य लिखती... काव्य में पूरा दुःख न ढलता तो आधे से तपेदिक शुरू हुई और बढ़ती गयी। बढ़ती गयी। पर अरणी भी आत्म प्रकाश सम्पन्न थी। उसे पता था कि तमाम उपेक्षाओं के और तिरस्कारों के बाद भी अरणिमाल अरणिमाल ही है। अपने होने के बारे में वह आश्वस्त थी।"[225]

स्पष्ट है कि मध्यकाल में भी स्त्रियों की स्थिति में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं आया। कश्मीरी स्त्रियां राजनीति के क्षेत्र से लगभग बेदखल हो चुकी थीं। निम्न वर्ग की महिलाओं के खेतों तथा फलों के बागीचे में श्रम करने का भी जिक्र है। शिक्षा प्राप्त करने हेतु काफी कम महिलाओं को अवसर प्राप्त था। बहुविवाह, सतीप्रथा, बाल विवाह आदि कुरीतियों से तत्कालीन कश्मीरी स्त्रियों का जीवन प्रभावित था। जहाँगीर और शाहजहां दोनों ही शासकों द्वारा सती प्रथा का विरोध किया गया। कश्मीरी औरतों की खरीद फरोख्त का जो सिलसिला मध्यकाल में शुरू हुआ वह सिख और डोगरा शासकों के दौर में परवान चढ़ा और स्त्रियों की स्थिति बद से बदतर होती गयी। मध्यकाल में कश्मीरी स्त्री की स्थिति पर प्रकाश

---

[224] दर्दपुर, क्षमा कौल, पृ० 109

[225] दर्दपुर, क्षमा कौल, पृ० 110

डालने पर यह स्पष्ट हो पाता है कि उत्पीड़न का शिकार रहीं इन स्त्रियों के स्वतंत्र और निरपेक्ष व्यक्तित्व निर्मित नहीं हो पाए। रतनलाल शान्त लिखते हैं, "यह हम मान सकते हैं कि व्यक्तित्व निर्माण में स्वतंत्रता और निरपेक्षता की, आंशिक ही सही ज़रूरत होती है। मध्ययुग के चरित्र साहित्य में वह निरपेक्षता नहीं। लोक परम्परा में स्त्री की इस श्रृंगारी भूमिका का भी अवमूल्यन हो गया। लोक साहित्य का एक बड़ा हिस्सा स्त्री के विरहगीतों का है। भले ही स्त्रियां सरजती और सुरक्षित रखती गईं पर स्वयं स्त्री मानस में इनका विषयगत मूल्यांकन नहीं किया। यह कैसी विडम्बना है कि पुरुष तो पुरुष, खुद स्त्रियाँ भी, अंसुआते विरह गीतों में कलपती स्त्रियों का मज़ा लेती रहीं।"[226]

कश्मीरी स्त्रियों के जीवन में 'नया कश्मीर' के आकार लेने के साथ एक निर्णायक मोड़ आया। वर्ष 1930 से ही कश्मीर में जन-विद्रोह एवं समाज-सुधार प्रारम्भ हो गया था। इसका प्रतिनिधित्व कुछ शिक्षित बेरोजगार युवकों ने श्रीनगर के फ़तेह कदल में स्थित रीडिंग रूम पार्टी के साथ शुरू किया। ये युवा एक साथ बैठकर देश-दुनिया और कश्मीरी समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं समस्याओं पर बहस किया करते थे। इसी दौरान कश्मीरी पंडितों के बीच जारी समाज-सुधार आन्दोलन के माध्यम से कश्मीरी महिलाओं के साथ हो रहे शोषण के विरुद्ध भी आवाज उठायी जाने लगी। कश्यप बन्धु इस आंदोलन में एक मुख्य नेता के रूप में उभरे। उन्होंने कश्मीर के महाराजा से विधवा विवाह की अनुमति की माँग की। कश्मीरी स्त्रियों की शिक्षा एवं उन्हें जागरूक करने के क्षेत्र में कश्यप बंधु ने काफी प्रयास किए। इस महान अभियान के लिए उन्होंने कश्मीरी युवाओं को प्रेरित किया तथा समाज में स्त्री के उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाने की मांग की।

'एक कोई था कहीं नहीं सा' उपन्यास में कश्यप बंधु के स्त्री सशक्तीकरण से जुड़े क्रान्तिकारी विचारों के तत्कालीन समाज में पड़ने वाले प्रभाव

[226] रतनलाल शान्त, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कश्मीरी कवयित्री की व्यथा कथा, प्रगतिशील वसुधा, अंक-14, पृ० 39

को चित्रित किया गया है। कश्मीर में अनमेल विवाह, बाल विवाह के विरुद्ध एवं विधवा विवाह के समर्थन में उन्होंने एक मुहिम चलायी। सोशल रिफॉर्म के उद्देश्य से वे अम्बरनाथ, नित्यानंद, सादिक जैसे न जाने कितने युवाओं को जोड़कर समाज में स्त्रियों के जीवन को एक नयी दिशा देना चाहते थे। मीरा कांत इस अभियान को अंकित करती हैं, "जब से बन्धु जी ने लड़कियों की शिक्षा, विधवाओं के पुनर्विवाह, दहेज निषेध, उत्सवों पर, कम से कम खर्च करने की मुहिम चलाई थी, कश्मीर में यहाँ-वहाँ घर-चौराहों पर उनकी या उनके कामों की ही चर्चा थी। रीझकर या खीझकर बस उन्हीं का जिक्र करने को मजबूर थे लोग।"[227] इसी उपन्यास में शबरी का भाई अम्बरनाथ अट्ठावन साल के समसार चंद से बहन के अनमेल विवाह का भरसक विरोध करता है और कम उम्र में बहन के विधवा हो जाने पर उसका विवाह अपने मित्र नित्यानंद से कराने की इच्छा जाहिर करता है। कश्यप बन्धु के विचारों से प्रेरित शबरी यद्यपि विवाह का प्रस्ताव अस्वीकार कर देती है परंतु कश्मीर की स्त्रियों को सबल एवं साक्षर बनाने में लग जाती है। शबरी कश्यप बंधु द्वारा अम्बरनाथ को बताये जा रहे रास्ते पर अग्रसर होती है। वह अनुभव करती है कि उसके प्रयासों से सैकड़ों बच्चियों की जिन्दगियां संवर सकती हैं।

समाज को बेहतर बनाने का यह काम आसान नहीं था क्योंकि सदियों से रूढ़िवादी सोच ने समाज को जकड़ रखा था। स्त्री-सशक्तीकरण के अभियान में शीरी नामक पात्र भी उसका साथ देती है। शबरी कश्यप बंधु के वचनों को हमेशा दोहराती है, "हमारे समाज की बच्चियों को ऐसी साहसी और जुझारू औरतों की जरूरत है। यह चाहे तो उन्हें पढ़ा सकती है। कायदा न पढ़ा सके तो कायदे की बातें बताये। सिलाई-कढ़ाई सिखाये। इसी तरह एक-एक औरत घर की चौखट से निकलकर समाज के लिए काम करेगी तभी हम नयी दुनिया की नींव रख सकेंगे।"[228] इस प्रकार कश्मीर के इस दौर में स्त्री-जीवन को बेहतर बनाने के लिए

---

[227] मीराकांत, एक कोई था कहीं नहीं-सा, पृ०38

[228] मीराकांत, एक कोई था कहीं नहीं-सा, पृ० 104

सुधारकों एवं जागरूक चरित्रों द्वारा काफी प्रयास किए गए और काफी हद तक उन्हें इन प्रयासों में सफलता भी मिली।

'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास में भी तत्कालीन स्त्री की स्थिति पर विशद विवरण है। राजनाथ जैसे शिक्षित और सामाजिक कुरीतियों के प्रबल विरोधी पात्र कश्मीरी स्त्रियों को शिक्षित और मजबूत बनाने का प्रयास करते हुए रूढ़िवादी विचारों का प्रतिकार करने की मांग करते हैं। समय की गति और उसके परिवर्तन को पहचानने व स्वीकारने की क्षमता राजनाथ जैसे पात्रों में है। उपन्यास में चित्रित है कि उस समय के सम्भ्रान्त परिवारों में भी स्त्री शिक्षा को विशेष महत्त्व नहीं दिया जा रहा था। समाज की जड़ मान्यताओं को लड़कियों पर लादने की प्रथा का विरोध करते हुए राजनाथ स्त्रियों को समुचित मान और अधिकार देने की बात करते हैं। वे दहेज प्रथा के कट्टर विरोधी थे। राजनाथ कहते हैं, "बहुएं घर की लक्ष्मी होती हैं, बाज़ार में बिकने वाली गाजर मूलियाँ नहीं।"[229] अपनी संतानों का विवाह दहेज लिए और दिए बिना करते हैं परंतु दुःखद कि उनकी बेटी मिन्ना को इसी के कारण जला दिया जाता है। राजनाथ शिक्षा के समुचित प्रसार को महत्त्व देते हैं इसीलिए विभा बेटी के घर जाकर उसे बी.ए. पास करने की सलाह भी देते हैं।

'नए कश्मीर' में प्रत्येक स्त्री और पुरुष को व्यक्तित्व निर्मिति के समान अवसर उपलब्ध कराने की प्रेरणा रही। एक बड़ी विशेषता यह थी कि महिलाओं को वोट देने, चुनाव लड़ने और शिक्षा की व्यवस्था भी मुहैया करायी गयी। स्त्री-जीवन को सबल बनाने के ये प्रयास भारत-पाक विभाजन तक जारी रहे परंतु कालांतर में होने वाले कबायली हमले ने पुनः कश्मीरी स्त्रियों को अभिशप्त जीवन जीने हेतु विवश कर दिया। इसके बाद से स्थितियां लगातार बिगड़ती रहीं और इसका काफी कुछ खामियाजा कश्मीरी स्त्री समुदाय को भोगना पड़ा। वे एक बार पुन: अबला व भोग्या के रूप में देखी जाने लगीं। हिंसा व शोषण का जो सिलसिला शुरू हुआ वह बदस्तूर जारी रहा।।

---

[229] चन्द्रकांता, यहां वितस्ता बहती है, पृ० 89

रूढ़ नैतिकता और स्त्री के लिए निर्धारित संहिताओं के बीच पिसती कश्मीरी स्त्री को पारिवारिक व सामाजिक संदर्भों में भी देखे जाने की आवश्यकता है। पारिवारिक और सामाजिक स्थिति के साथ ही कश्मीरी महिलाओं की अस्मिता और आकांक्षाओं के प्रश्नों पर भी विचार किया जाना जरूरी हो जाता है। एक पुरुष वर्चस्व वाले समाज में अपने लिए बनाये गये दायरों के बीच संघर्षरत कश्मीरी स्त्री की झलक हिन्दी कथा साहित्य में देखी जा सकती है। स्त्री के व्यक्तित्व के अनेक आयाम कश्मीर केंद्रित उपन्यासों व कहानियों में चित्रित हैं। ममत्व, त्याग, जिजीविषा और संघर्ष की क्षमता रखने वाली इन स्त्रियों के रोजमर्रा के जीवन से जुड़े पीड़ादायक अनुभव भी हैं।

किसी भी समाज में नारी हमेशा से ही घर, परिवार और समाज की धुरी रही है। देवी, सहधर्मिणी जैसे संबोधनों से नवाज कर भी पुरुष वर्चस्व प्रधान समाज ने स्त्री को हमेशा से ही हाशिये पर धकेला है। अपवादों को यदि छोड़ दिया जाय तो घर-परिवार में आज भी उनकी स्थिति दोयम दर्जे से ऊपर नहीं उठी है। मानवीय अधिकारों और संवेदनाओं के परिप्रेक्ष्य में आज भी उनकी योग्यता का आकलन नहीं किया जा रहा है। कश्मीरी स्त्री भी कमोबेश इसी मानसिकता से जूझ रही है। 'कथा सतीसर' में चन्द्रकांता लिखती हैं, "मनु महाराज ने तमाम आदर के साथ स्त्री को हर उम्र और हर हाल में पुरुष पर निर्भर रहने की जो सोच प्रदान थी, उसका उत्तम नमूना अजोध्यानाथ के परिवार की लक्ष्मियां थीं। पुरुष जो सोचे वह सही, जो करे वह उत्तम, जो आदेश दे, उसका पालन धर्म। उसके बाद यदि कुछ बचता हो, उसे वे अन्नपूर्णाएं जीवन को तमाम करनेवाले दैनंदिन खटराग में झोंक देतीं। सांग छांटते, चावल बीनते-फटकते, कढ़ाई-बिनाई करते वे अपनी गोलबन्द दुनिया में घूमने को आज़ाद थीं।"[230]

कश्मीरी स्त्री के शारीरिक शोषण को लेकर 'यहां वितस्ता बहती है' उपन्यास में चिंतन व्यक्त किया गया है। संतान उत्पत्ति की चाह में प्रायः परिवार स्वास्थ्य को दांव पर लगा देते हैं। गौरी के माध्यम से उपन्यास की लेखिका ने

[230] चन्द्रकाता, कथा सतीसर, पृ०29

स्त्री जीवन की इस त्रासदी को व्यक्त करने का प्रयास किया है। स्त्री की अंतर्मन व्यथा का चित्रण करते हुए लेखिका लिखती हैं, "नन्हें फूलों को जन्म देकर गौरी ने कभी शिकायत न की बल्कि वह राजनाथ के सुख और अपने संतुष्टि में ही वृद्धि करती रही। पर दसेक वर्षों में पांचेक बच्चों को जन्म देने में गौरी की देह साथ न दे पायी और एक बार शरीर ने साथ छोड़ दिया तो मन भी कुंभलाने लगा।"[231] प्रायः स्त्रियाँ परिस्थितियों के कारण या संकोचवश अपनी शारीरिक समस्याओं को साझा करने से हिचकिचाती है। 'आतंक की दहशत' उपन्यास में लेखक की मां प्रसव पीड़ा पर घंटों नियंत्रण करती है मात्र इसलिए कि दावत खत्म होने के पहले बच्चा होने पर दादाजी का अपमान होता। 'कथा सतीसर' उपन्यास में दिद्दा कात्या की माहवारी होने पर उसे इस स्थिति को नितान्त निजी बताते हुए परिवार के लोगों से छिपाकर रखने की सलाह देती हैं।

प्रायः समाज में नारी, नारी का शोषण करती है, वाली प्रवृत्ति देखी जाती है। यह सही भी है कि घरेलू हिंसा के मामलों में कभी-कभी स्त्री ही स्त्री के विरोध में हो जाती है। इसके पीछे पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री सोच को अनुकूलित करने की प्रथा रही है। एक स्त्री की मानसिक संरचना की बुनावट ही कुछ इस प्रकार कर दी जाती है कि वह अपनी विशिष्ट गति के बारे में सोच भी नहीं सकती। अधिकार चेतना और अस्तित्व स्त्री के संस्कारों में भी संपन्नता से कोसों दूर हैं। कश्मीरी स्त्री के संस्कारों में भी यह परिकल्पना व्याप्त है। रतनलाल शान्त लिखते हैं, "स्त्रियों की गति विशिष्ट हो सकती है- इस तथ्य पर नहीं के बराबर कोई मत प्रकट किया गया। इसकी प्रमुख वजह यह थी कि इस तथ्य से चेतना ही नहीं थी कि मनुष्य मात्र होने के बाद भी स्त्री की एक अलग सत्ता, पुरुषों से स्वतंत्र सत्ता हो सकती है। पुरुषों में यह चेतना इसलिए नहीं थी क्योंकि स्त्री उनके लिए अंगीभूत थी। खुद स्त्रियों में इसलिए नहीं थी, क्योंकि जीवनपर्यंत अनुषंगी

[231] चन्द्रकांता, यहां वितस्ता बहती है, पृ० 100

होने की उनके संस्कारों में बिठाई गई परिकल्पना ने उन्हें जड़ कर दिया था। पुरुषों के चिंतन में एक आधारभूत दंभ मौजूद रहा।"[232]

'कथा सतीसर' में स्त्री-जीवन से जुड़े सभी पहलुओं को बखूबी उकेरा गया है। कन्या के जन्म पर मातम का माहौल कात्या के पैदा होने की सूचना के दौरान देखा जा सकता है। एक औरत जो अपनी कोख में जीव धारे तो ब्रह्म के सिंहासन पर बैठा दी जाती है और न धारे तो बाँझ, अपशकुनी कहकर बटनी की तरह दरकिनार कर दी जाती है। इसी समाज में 'दोदु मोज्य' कहलाने वाली स्त्रियाँ भी हैं जो हिन्दू बच्चों को अपना स्तनपान कराती थीं। उपन्यास में स्त्री-पुरुष दाम्पत्य सम्बन्धों में स्त्री की स्थिति को भी अंकित किया गया है। अली अपनी बीवी को बात-बात पर फटकारने में मर्दानगी समझता है। शिवनाथ आजीवन जानकीमाल का मन न भांप सके। दूसरी ओर केशवनाथ, कामेश्वरनाथ, डॉ. कार्तिकेय जैसे पति भी हैं जो अपनी पत्नी के साथ मजबूती से खड़े रहते हैं। वास्तव में नारी मुक्ति शोषण से मुक्ति है न कि पुरुष से क्योंकि दोनों की विवेकपूर्ण हिस्सेदारी ही जीवन को सुखद बना सकती है। ऐसे पतियों को समाज जोरू का गुलाम कहना ज्यादा पसंद करता है बजाय एक योग्य साथी के। केशवनाथ के विषय में शिव भैया कहते हैं, "स्त्रियों को मां, बेटी, बहन, बहू, सास के खानों में बाँटने के बाद जो स्त्री 'पत्नी' बचती है, वह पति को रिझाने, लुभाने वाली, अंकशायिनी, जो भी हो। असल में होती है एक बर्तन भर! शिव भैया का अखंड विश्वास है कि यही रोल पति को पत्नी से बाँधता है। बाकी सब चोंचले हैं। केशव का क्या कहें वह तो 'हेन पेक्ड हसबेंड' है, पत्नी के आगे-पीछे लट्टू की तरह घूमता है।"[233]

तमाम बदलावों और संवैधानिक अधिकारों के चलते आज समाज में नारी के अधिकारों की बात की जाने लगी है और निश्चय ही स्त्री संबंधी विचारों और मानसिकता में काफी फर्क आया है। उनकी स्थिति में बदलाव आया है। वह घर

---

[232] प्रगतिशील वसुधा, अंक-14, पृ० 38

[233] चंद्रकांता, कथा सतीसर, पृ० 40

और बाहर दोनों क्षेत्रों में सक्रिय साझेदारी निभा रही है। शोषण, बलात्कार, घरेलू हिंसा, दहेज, शिक्षा पर रोक जैसे मुद्दों के विरोध में आवाजें उठी हैं। वह पुरुष की अहंकारग्रस्त मानसिकता के विरुद्ध स्वयं को खड़ी करने लगी है। शिक्षा के प्रसार ने नारी चेतना के नये आयाम उपलब्ध कराये हैं और ऐसे में कश्मीरी स्त्रियाँ भी सशक्त और जागरुक हुयी हैं। कश्मीरी स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता का उद्घोष भी है। कश्मीर की महिलाओं ने भी अनावश्यक बंधनों और रूढ़ मान्यताओं को आगे बढ़कर नकारा है। यातना और संघर्ष से उठकर अब उनका जीवन चेतना, अधिकार व अस्मिता के प्रश्नों से जुड़ गया है। अंतर आया है, पर गुणात्मक परिवर्तन में अभी भी सुधार की आवश्यकता है।

कश्मीर केन्द्रित हिन्दी कथा साहित्य में ऐसी अनेक स्त्रियों की चर्चा है जो अन्याय के विरुद्ध खड़ी हो अपने हक के लिए आवाज उठाने में विश्वास करती हैं। 'कथा सतीसर' की कात्या और मल्लाहों की लड़कियां परिवार में अपनी शिक्षा के लिए आवाज उठाती हैं। नन्दन स्थिति में आए सुधार के विषय में कहता है, "अब मल्लाहों की बेटियां शाम ढले नदी किनारे रोव नहीं करती हैं?" नहीं करती, फिर भी पूछता है। रोव अब स्टेज और टीवी पर चले गए हैं। कभी कभार शादी-ब्याह में होते हैं। लड़कियों को अब फुरसतें कहां, एम.ए., बी.एड. तक मुफ्त शिक्षा के फायदे उठाती लड़कियाँ, अब दफ्तरों-स्कूलों, सेंटरों, अस्पतालों में नौकरियाँ करती हैं।"[234] इसी उपन्यास की विजया पारिवारिक विरोध और धर्म के बंधनों को तोड़ अपनी इच्छानुसार प्रेमी अफ़ज़ल से कोर्ट मैरिज कर करती है तथा कात्या कश्मीरी महिलाओं को स्वास्थ्य के लिए जागरूक करती है। नसीम निडरतापूर्वक बुर्का पहनने से मना कर देती है।

दर्दपुर उपन्यास की हुर्रत अपने वजूद को बिना किसी पुरुष के अधूरा नहीं मानती। 'जम्मू जो कभी शहर था' की सुग्गी, 'एक कोई था कहीं नहीं सा' की शबरी, 'शिगाफ़' की अमिता और नसीम, 'बर्फ और अंगारे' की शारदा, 'नाकाबंदी' की सोफिया आदि स्त्रियाँ अपने सशक्त किरदारों में प्रभावी हैं। 'काँपता हुआ

---

[234] चंद्रकांता, कथा सतीसर, पृ० 451

दरिया' उपन्यास की बेगम खूबसूरत, जिंदादिल एवं अपने परिवार को संभालने वाली कर्मठ स्त्री के रूप में देखी जा सकती है। बेगम के माध्यम से स्त्री के साहस और दृढ़ता की दास्तान कही गयी है। खालका अपनी पत्नी बेगम की इस जिंदादिली के सामने खुद को कमजोर महसूस करता है, "बेगम को अपने साथ देखते, उसके साथ वहाँ रहते, सोते एक अजब खला खालका को घेरे रहता। बेगम की खुली हंसी, खुली बातचीत और खुले व्यवहार के सामने अपना घर और अपना आप उसे बहुत छोटा लगता।"[235]

कश्मीरी महिलाओं के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने को समर्पित कई पुरुष पात्र भी हिन्दी उपन्यासों व कहानियों में वर्णित हैं। ये पात्र पुरुष वर्चस्ववादी विचारधारा का लबादा उतार अपने समाज की स्त्रियों के जीवन को बेहतर बनाने हेतु प्रयासरत नजर आते हैं। 'कथा सतीसर' उपन्यास का पीटर, 'यहां वितस्ता बहती है' के राजनाथ कौल, 'दर्दपुर' के स्त्री विमर्श समर्थक इम्तियाज, 'एक कोई था कहीं नहीं सा' के अम्बरनाथ एवं 'शिगाफ़' का जमान आदि ऐसे ही पात्र हैं। पीटर स्त्रियों के साथ हो रही हिंसा का विरोध करता है तो जमान कश्मीरी स्त्रियां के शोषण, वेश्यावृत्ति एवं खरीद फरोख्त करने वाले कारोबारों की पोल खोलता है। अम्बरनाथ स्त्री शिक्षा एवं सशक्तीकरण का समर्थक है तो 'इकबाल' उपन्यास का पात्र इकबाल कश्मीरी महिलाओं के मनोविकारों की बात करता है। 'दर्दपुर' उपन्यास में इम्तयाज़ को लेकर विश्वस्त लेखिका लिखती हैं, "इम्तयाज़ मानवाधिकारों का हामी और स्त्री का पक्षधर है। अरे यह दुनिया जीने लायक है, अभी लोगों... मेरे मुहल्ले की स्त्रियों। चिन्ता न करो। एक ईश्वर... एक कलाकार तुम्हारे वहाँ विद्यमान है... जिसकी किरणों से मैं अभिभूत और आनन्दपूरित हूँ... यह दुनिया जीने लायक है... मेरे लोगों। मेरी बहनों! यहां इम्तयाज़ है।"[236]

6.2 आतंकवाद और कश्मीरी स्त्री

---

[235] मोहन राकेश, काँपता हुआ दरिया, पृ० 40

[236] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 147

आतंकवाद कश्मीरी स्त्री के जीवन में एक दोहरी मार जैसा है। एक तरफ जहाँ इन स्त्रियों ने परिवार के सदस्यों को खोया है वहीं दूसरी तरफ आतंकी हिंसा व यौन शोषण का शिकार भी हुयी हैं। धार्मिक कट्टरता सदा ही घातक रही है। यह भावना व्यक्ति को मानवीय मूल्यों और सौहार्द जैसे भावों से दूर रखती है। इसका सर्वाधिक प्रभाव स्त्रियों पर हिंसा के रूप में देखा जाता है। धार्मिक कट्टरता की धुरी में सदा पिसती स्त्री ही है। धर्म स्त्री के बनाए संसार में दखल बनाए रखता है। कभी सामाजिक ताने-बाने और रीति-रिवाजों की गिरफ्त में तो कभी धर्म विशेष के कहर होने पर आतंकवाद के दौर में यह विचारधारा महिलाओं पर शिक्षा, पहनावे और रहन-सहन को लेकर थोपी गयी। कश्मीरी स्त्रियों को एक धर्म विशेष के नियमानुरूप आचरण करने की हिदायतें दी गयीं। 'पाषाण युग' उपन्यास में यह मंजर रेखांकित है, "फैशनेबल और बेपर्दा लड़कियों को फिर धमकी दी गई थी। सिर के बालों को ठीक तरह से ढंकने मेकअप न करने और टखनों से ऊपर वाली फैशनेबल सलवारें न पहनने की कड़ी हिदायत दी गई थी।"[237] धार्मिक जिहाद के उद्घोषों और आतंक ने सबसे पहला प्रतिबन्ध शिक्षा और महिलाओं की स्वतंत्रता पर लगाया।

कश्मीर में धर्म केंद्रित सत्ता स्वतंत्र राज्य की आकांक्षा में अलगाववाद को बढ़ावा दे रही थी। इस कट्टरता का शिकार अधिकांशतः एक धर्म विशेष के लोग ही नहीं बल्कि महिलाएं भी हुईं। कश्मीरी महिलाओं के साथ यौन शोषण, बलात्कार और धार्मिक प्रतिबंध के साथ अधिक क्रूरता दिखायी गयी। कश्मीर में जिहादियों द्वारा स्त्रियों का बलात्कार, विरोध करने पर उनके टुकड़े-टुकड़े कर देना, घर के सदस्यों के सामने अपहरण कर लेना एवं निर्मम हत्याएं आम हो गई थीं। यह हिंसा कबाइली आक्रमण के दौरान भी देखी गयी। सांप्रदायिक दंगों में सबसे अधिक शोषण स्त्री का होता है। पुरुष स्त्री की उस दोहरी पीड़ा को समझने में असमर्थ है जो कि युद्ध की विध्वंसता से स्त्री को सहनी पड़ती है। 'दर्दपुर' उपन्यास की पात्र

[237] संजना कौल, पाषाण युग, पृष्ठ 99

सुधा स्वयं से कहती है, "हर युद्ध, हर गृह युद्ध, हर जिहाद स्त्री की देह पर लड़ा जाता है। वास्तविक शिकार स्त्री होती है।"[238]

स्त्री की देह पर हमेशा से ही बर्बरता की जाती रही है। युद्धपूर्ण स्थिति में उपजी अमानवीय परिस्थितियों ने कश्मीरी महिलाओं को मानसिक और शारीरिक दोनों रूपों से प्रभावित किया। जो स्त्री सृष्टि की सृजनकर्ता है, विध्वंस में सबसे अधिक पीड़ा उसी के हिस्से आती है। अलगाव और कट्टरता के हिमायती पुरुष स्त्री पर इस बर्बरता को कभी नहीं समझ पाते। यहाँ विधवा हुई औरतें, अकेली छूटी औरतें, युवा और अनाथ लड़कियां इस बर्बरता का प्रमाण हैं। एक सौहार्दपूर्ण वातावरण में धर्मांधता के प्रवेश का यह परिणाम है। ऐसे परिवेश में एक स्त्री यह कभी नहीं समझ पायी कि वह जिन लोगों के साथ रह रही है वे ही कभी इतनी बुरी तरह बर्ताव करेंगे। 'काली बर्फ' कहानी की परमी ऐसी ही पात्र है। अपने संबंधियों पर विश्वास कर वह विस्थापित नहीं होती। एक नर्स के रूप में कश्मीरी नागरिकों और यहाँ तक कि आतंकियों की भी सेवा टहल करती है परंतु अंत में उनकी रक्षा करने वाली परमी के ही वे भक्षक बन जाते हैं। चन्द्रकांता लिखती हैं, "लेकिन उसने बाघ देखे थे। उनके लंबे-लंबे नख और तीखे दाँत अपने जिस्म में खुभते महसूस किए थे। उसने भी कम नोच खसोट नहीं की उनकी।... जब तक उसके हाथ लटककर बेजान न हो गए और सिर पत्थर से टकराकर बेहोशी न छा गई, उसने अपने सभी हथियारों का इस्तेमाल किया। वह हारना सीखी ही कहाँ थी? लेकिन वह अकेली थी और बाघ झुंड में आ गए थे।"[239]

हिंसा और शोषण का शिकार सिर्फ हिन्दू स्त्रियाँ ही नहीं हुईं अपितु मुस्लिम महिलाओं का भी भरसक शोषण हुआ। आतंकी उनके घरों में आकर रुकते थे। जबरन तहखाने बनवाते थे और उन्हीं के परिवार की स्त्रियों का यौन शोषण करते थे। इस्लाम की पाक रवायतों की फिक्र करके 'मुताअ' जैसी प्रथाओं का सहारा लेकर उन लड़कियों से मात्र शारीरिक संबंधों को स्थापित करने के लिए निकाह

---

[238] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ. 107

[239] चन्द्रकांता, काली बर्फ, पृ० 152

कर लेते थे। इस्लाम के अनुसार आचरण न करने पर एसिड फेंकने और हत्या करने जैसी घटनाओं को आतंकी अंजाम देते थे। कश्मीरी महिलाएं भारतीय सैन्यबल और आतंकवाद के पाटों के बीच पिसती रही हैं। एक तरफ जहाँ जिहादी उनका शोषण कर रहे हैं वहीं वे सेनाकर्मियों से भी सुरक्षित नहीं है। ऐसी स्थिति में वे एक शरीर मात्र नजर आती हैं जिनका अस्तित्व सिर्फ भोग किए जाने तक सीमित है। कश्मीर में ऐसे कई केस हुए जहाँ सुरक्षाबलों पर यौन हिंसा के आरोप लगे। ऐसी ही एक घटना का जिक्र 'इक़बाल' उपन्यास में हैं जहाँ कुनान पाशपोरा नामक गांव में 23 फरवरी 1991 को राजपूताना राइफल्स के जवानों ने औरतों के साथ गैंग रेप किया था और बच्चियों, बूढ़ी स्त्रियों तक के साथ हैवानियत की हद पार कर दी थी। इस पर जिया की प्रतिक्रिया विचारणीय है, "औरत का जिस्म कभी किसी के लिए हिन्दू या मुसलमान नहीं होता। इस स्तर पर वह बस मांस है, बोटी है और हर मर्द यहां आकर मांसाहारी, आदमखोर बन जाता है- ब्राहमण से लेकर यवन तक।"[240] इसी प्रकार 'आवाज़' कहानी में भी विनी सैन्यबलों से सुरक्षा की आस नहीं करती। जिहादी विनी का अपहरण कर उसे महीनों प्रताड़ित करते हैं। उसे अपने साथ सेवा के लिए रख लेते हैं और वह गर्भवती हो जाती है। वहाँ से अपने बच्चे के साथ भागकर आते हुए उसे सुरक्षा बलों का ख्याल आता है परंतु वह सोचती है, "सेना तो रक्षक है पर अकेली औरत को देखकर रक्षक का मन न डोल जाए इसकी गारण्टी तो इतिहास पुराण भी नहीं देते।"[241]

हमारे समाज की संरचना स्त्रियों के लिए हमेशा से जटिल रही है। एक स्त्री के श्रेष्ठ चरित्र के आकलन का आधार यौन शुचिता है। यह मानदंड ही उसे समाज में सम्मान से जीने का हक देता है। भारतीय परिवार और समाज में उन महिलाओं को हेय दृष्टि से देखा जाता है जिनकी यौन शुचिता भंग हो गयी हो। यह बात समाज में तनिक महत्त्व की नहीं रहती कि इसमें स्त्री की सहमति थी या नहीं। कश्मीरी महिलाएं समाज की इस कुंठित मानसिकता से भयग्रस्त हैं और

[240] जयश्री रॉय, इक़बाल, पृ० 32

[241] प्रगतिशील वसुधा, अंक 74, पृ0 236

आज भी इसे दरकिनार कर आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं रखतीं। कश्मीर में आतंकवाद के कारण जैसी परिस्थितियाँ बन गयी हैं, वहां पर ऐसे मानदंडों में हिंसा का शिकार हुई स्त्रियों के भीतर एक डर बना रहता है कि अब उनका समाज और परिवार उन्हें स्वीकारेगा या नहीं। क्षमा कौल स्त्रियों की इस मनोदशा का मार्मिक चित्रण 'दर्दपुर' उपन्यास में बारामूला कैंप से वापस आयी स्त्रियों के संदर्भ में करती हैं। वह लिखती हैं, "स्त्रियां ही समाज और पतियों से भयभीत थी। सब की सब अपने मन से कर रही थीं विश्वसनीयता के संवाद मानो उन पर उनका अपना ही दूसरा मन संदेह कर रहा हो और वे जोरदार शब्दशक्ति का प्रयोग कर समझा रही हो, बंधु मैं पवित्र हूँ। अग्निपरीक्षा लो चाहो तो। देखो सीता की तरह बेदाग ना निकली तो।"[242]

आतंकवाद ने न केवल स्त्रियों के सम्मान और अस्तित्व को झकझोरा है बल्कि उनमें एक मानसिक तनाव पैदा करने का भी जरिया बना है। अनिश्चय, भय और संदेह के बीच वे मनोविकारों का शिकार हो रही हैं। आतंक की निर्ममता उनके भय को बढ़ाती रही है। तनावों से बचने के लिए वे दवाओं की जद में आ रही हैं। यह मानसिक दबाव उन्हें एक अप्रतिक्रियात्मक एवं चुप्पा जीवन जीने को मजबूर बना रहा है। वे डिप्रेशन का शिकार हो रही हैं। शिक्षा और मनोरंजन से दूर ये महिलाएं कश्मीर की बदली स्थितियों में एक दर्शक मात्र बनकर रह गयी हैं। संजना कौल की कहानी 'कहूँ किससे मैं' में स्त्री की मनोदशा पर खुलकर चर्चा की गयी है। सारिका की मां को लेकर चिकित्सक परामर्श देता है, "इससे ज्यादा मैं नहीं दे सकता। आप इन्हें अकेला मत रहने दीजिए। टीवी चलाएँ तो इन्हें न्यूज चैनल मत दिखाइए। एन्टरटेन्मेंट से इनकी हालत में सुधार होगा। इनसे बातचीत करवाइए। अड़ोस-पड़ोस में घुमाने ले जाइए।"[243] 'शिगाफ' उपन्यास की जुलेखा, यास्मीन आदि किरदार भी इसी खामोशी से ग्रस्त हैं।

---

[242] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ० 263

[243] साहित्य-भारती, जुलाई-सितम्बर अंक, 2018, पृ० 100

मनीषा कुलश्रेष्ठ भी कश्मीरी स्त्रियों की मनोदशा पर 'शिगाफ' में निर्भीकता से लिखती हैं। 'कश्मीरी स्त्री और मानवाधिकार' विषय पर कश्मीर यूनिवर्सिटी की प्रो. आयशा का वक्तव्य सुनकर वे प्रभावित होती हैं। वह लेखिका को बताती हैं, "हमारा हर दिन नई समस्याओं को जन्म देते हुए उगता है कश्मीर में। हर दिन विधवाओं की नई फसल तैयार हो जाती है। फौज और उग्रवादियों ने मिल जुलकर ग्यारह हजार जवान विधवाओं की फसल तैयार की है, जिसे न समाज से कोई आसरा है न सरकार से। वे अपने होंठ सिये घातक मानसिक रोगों तथा हताशाओं का शिकार होती जा रही हैं।"[244]

कश्मीरी महिलाओं की खरीद-फरोख्त और सेक्स स्कैंडल की घटनाओं में आतंक के दौर में काफी इजाफा हुआ है। कश्मीर की लड़कियों को बहला फुसलाकर एवं अपहरण कर विदेशों में भेज ट्रैफिकिंग की जा रही है। इसमें आतंकी और सैन्यबल दोनों ही अपने स्तरों से शामिल हैं। स्त्रियों को प्रेमजाल में फांस फियादीन बनाया जा रहा है। 'शिगाफ' उपन्यास का पात्र जमान अपनी रिर्पोटिंग के दौरान कश्मीरी औरतों के जीवन की जमीनी हकीकत से रूबरू होता है। जमान अमिता को बताता है, "सेना या पुलिस के जवानों और कश्मीरी और पाकिस्तानी मिलिटेंट्स के हाथों भी सबसे करीब जाएं तो हाल का ही कुख्यात सेक्स स्कैंडल देखें, जिसमें बहुत सी कमसिन लड़कियों और जवान औरतों को ब्लैकमेल किया गया। उन मजलूम औरतों को नौकरी दिलाने के बहाने राजनेताओं, ब्यूरोक्रेट्स और पुलिस अधिकारियों के सामने कम्फर्ट वुमन बनाकर पेश किया। बहुत से बड़े नामचीन लोग बेनकाब हुए।"[245] इस प्रकार आतंकवाद के कारण कश्मीरी स्त्री की स्थिति बद से बदतर हो गयी है।

---

[244] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ० 87

[245] वही, पृ० 198

कश्मीर केन्द्रित हिन्दी कथा साहित्य के माध्यम से कश्मीरी महिलाओं की दयनीय स्थिति का वर्णन किया गया है जो मृत्युसम कष्ट झेलते हुए भी चुनौतियों का सामना कर रही हैं। उग्रवाद का विरोध कर रही हैं और यौन शुचिता के नाम पर खुद को खत्म करने से बचाव भी। आतंकवाद से आहत दशा की मार्मिक अभिव्यक्ति की गयी है।

6.3 <u>विस्थापन का दंश और कश्मीरी स्त्री</u>

विस्थापन बीसवीं शताब्दी की एक कारुणिक घटना है जब युद्ध, अलगाव और राजनीतिक कारणों से एक पूरी कौम कश्मीर से विस्थापित हो गयी। विस्थापन से उपजी त्रासदी ने महिलाओं में एक भय व असुरक्षा की भावना को जन्म दिया है। विस्थापन के दौर में कश्मीरी महिलाएं जबरन धर्मान्तरण, यौन शोषण, हिंसा और हैवानियत का शिकार हुईं। विस्थापन से उपजा दर्द यहीं नहीं समाप्त हुआ। वक्त के साथ यह जख्म और भी गहराता चला गया। विस्थापित हुई स्त्रियों के मन में शंकाओं और भय के बादल घिरे रहे।

कश्मीर से विस्थापित होने वाली महिलाओं को भी न्यूनतम सुविधाओं वाले कैंपों में रहना पड़ा। यहाँ वे समझौतापरस्त स्थितियों में तो रह ही रही थीं, साथ ही कुदृष्टियों से भी दो-चार होना पड़ता था। 'शिगाफ' उपन्यास की विस्थापित अमिता के साथ जम्मू के मकान का मालिक छेड़खानी करता है। कैंपों में युवा लड़कियों के अभिभावकों को राशन लेने के लिए लड़कियों को राहत केन्द्र पर भेजने को विवश किया जाता है। 'कथा सतीसर' उपन्यास में वर्षों कैंपों में जीवन गुजारने वाली शारदा कहती हैं, "जानती हूँ, कैसे होते होंगे मिलिटेंट! वैसे ही होंगे, जो 'बच्ची-बच्ची' कहकर गलियों-बाजारों में दबोचते हैं। सामान लेने जाओ तो पिछवाड़े आओ, शाम को आओ, सस्ती सब्जी मिलेगी। क्या-क्या बहाने गढ़ इधर-उधर चिकोटियों काटते हैं। एक मुस्टंडे ने पीछे से झप्पी मार शारदा को कैसे बुरी

तरह से जकड़ लिया था कि उसकी कमीज गन्दी कर दी। उसने भी कलाई चबा डाली। त्रटि लद। मिलिटेंट।"[246]

कश्मीर से विस्थापन के दौरान जो महिलाएं आतंक का शिकार हुईं और जो अपहरण के बाद बचकर कैंपों में वापस आयीं, उनका जीवन और नारकीय हो गया। उनके सुरक्षित होने की खुशी से ज्यादा वापस आने का दुःख किया जाने लगा। वहाँ से आयी स्त्रियों के चरित्र पर प्रश्न उठाये जाने लगे और यह मान लिया गया कि अब इन स्त्रियों में कोई पाक दामन की नहीं रहीं। यौन शुचिता विस्थापित स्त्रियों के जीवन का भी मानदंड बनी रही। वैवाहिक रिश्तों के लिए कश्मीर से आयी स्त्रियों को दरकिनार किया जाने लगा। इन कश्मीरी महिलाओं की पीड़ा कितनी ही बड़ी क्यूं न रही हो, पुरुष-प्रधान समाज अपनी ही नाक कटने की बात को महत्त्व देता रहा। 'शरणागत दीनार्त' कहानी में आतंकियों से बचाव करके वापस आयी जया को लसपंडित स्वीकारना चाहते हैं पर समाज उन्हें अपनी बेटी को वापस भेजने के लिए विवश करता है। "यह तुम कहते हो, लसपंडित! उम्र भर धर्म की भाषा बोले और आज विपत्ति में इस पाप की गठरी को सीने से लगाओगे? नहीं, हमें अपनी बहू-बेटियों की आबरू बचानी है। तुम चाहो तो इसे लेकर कहीं और आश्रय ढूंढो।"[247]

विस्थापन के वर्षों बाद भी स्त्रियां वहाँ की भूमि से लगाव को खत्म नहीं कर पायीं। उनका मन वापस उन्हीं वादियों में लौट जाने को मचलता रहा। एक यात्री के रूप में बन गयी पहचान इस टीस को और बढ़ा देती है कि उनका सब कुछ छिन चुका है। यह भाव इन स्त्रियों में तनाव, क्रोध और व्याकुलता पैदा करता है। 'शिगाफ़' उपन्यास की अमिता मानसिक तनाव का अनुभव करती है और अपने अंतर्मन की ऊहापोह को ब्लॉग के माध्यम से व्यक्त करती है। "मेरी देह की धमनियों और शिराओं के जाल में तमाम बोझिलता के बावजूद खून बह रहा था। जीवन, पीड़ा और बेचैनी भी साथ बह रहे थे खून के। सन्नाटा धक-धक

---

[246] चंद्रकांता, कथा सतीसर, पृ॰ 589

[247] चन्द्रकांता, काली बर्फ, पृ. 21

कर रहा था मेरी नसों में। स्ट्रीटलाइट की धारियां अब बाईं ओर की दीवार को सहला रही थीं। मेरा बिस्तर दीवार से सटा था। मैं लगातार महसूस कर रही थी कि अब सहन नहीं हो रहा यह खयाल कि मैं यहां क्या कर रही हूँ। मैं जिन्दगी से क्या चाहती हूँ? हताशा और उदासी के मारे मेरी सहनशक्ति जवाब दे गई है।"[248] इसी उपन्यास की नसीम एक अलग तरह का निर्वासन भोगती है जो अपने अस्तित्व की तलाश में तलाक लेकर दिल्ली आती है।

स्पष्ट है कि कश्मीर से विस्थापित ये महिलाएं आज भी भय और असुरक्षा में जी रही हैं। आतंकवाद के कारण वे अपनी भूमि से निष्कासित हुईं और सरकारों की उपेक्षा से आज भी इस दंश से निजात नहीं पा सकी हैं। एक प्रभावी पहल ही इसका हल हो सकता है जिससे स्त्रियों के मान एवं अस्मिता की रक्षा की जा सके।

6.4 कश्मीर में स्त्री सशक्तीकरण से जुड़े प्रश्न एवं संभावनाएं

वर्तमान में विश्व के अन्य देशों की महिलाओं के समान कश्मीरी स्त्रियां भी अपने हक को लेकर खड़ी हुई हैं। कश्मीरी औरतें भी अपने अनुभवों के परिप्रेक्ष्य साझा करते हुए सशक्त होकर खुद से जुड़े मुद्दों को उठा रही हैं। एक बड़े दायरे में खुद के मनोविकारों एवं आकांक्षाओं को इन स्त्रियों ने मुखर होकर अभिव्यक्त किया है। वर्ष 2008 में प्रकाशित संजना कौल के कहानी संग्रह 'काठ की मछलियां' में कश्मीरी स्त्रियों की दुविधाग्रस्त स्थिति और इन्हें सशक्त बनाने के प्रयासों को लेकर बातचीत है। सैन्यीकरण, आतंकवाद, धार्मिक पाबन्दियों आदि से प्रभावित ये स्त्रियाँ अपने लिए खड़ी हुई हैं। उक्त कहानी संग्रह में कश्मीर की मुस्लिम और हिन्दू दोनों औरतों के दुख एक से हैं। विचारों और वस्त्रों के मामले में मजहबी होने का दबाव चिंता का विषय है। 'पत्थर और घात का जमाना' कहानी में शिक्षिका इंदु अपनी मुस्लिम सहकर्मी को बदलती बंद पोशाकों पर उसे निडर रहने को कहती है।

---

[248] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ. 10

कश्मीरी स्त्री की दशा को लेकर 'शिगाफ़' उपन्यास का जमान काफी चिंतित है। इसी प्रकार अमिता भी जमीनी हकीकत को मद्देनजर रखते हुए कश्मीरी महिलाओं के जीवन को सुखद बनाने के प्रयास करती है। आतंक, मौत, गरीबी, अशिक्षा, परदा प्रथा और दोहरे हाशियेकरण की शिकार ये स्त्रियाँ अपने हक में पहल कर रही हैं। बुरकों के तले दफन होने की बजाय उनके खिलाफ होकर एक मिसाल पैदा कर रही हैं। कश्मीर में स्त्रियों से जुड़े विषयों पर पत्र-पत्रिकाओं में भी लिखा जाने लगा है। 'शिग़ाफ़' उपन्यास की नौशाबा ने कश्मीर की पहली फीमेल मैगजीन 'ग्रेस' निकालकर स्त्री समस्याओं पर खुलकर बातचीत करने में विश्वास जाहिर किया।

नौशाबा को 'ग्रेस’ निकालने पर काफी विरोधों का सामना करना पड़ा। मैगजीन निकालने के शुरुआती दिनों की बात बताते हुए वह कहती हैं, "हाँ, हमारे तेवर शुरू में और थे... इसमें वह सब कुछ था जो एक ऐसी मैगजीन में होना चाहिए। फैशन, फिक्शन, किचन, हेल्थ, एजुकेशन और पर्सनैलिटी-ऑफकोर्स सैल्फ अवेयरनेस। पहले की इश्यू के बाद हमारे ऑफिस में तोड़-फोड़ हो गई और जाने कौन-कौन से पॉलिटिकल-नॉनपॉलिटिकल, फंडामेंटलिस्ट ग्रुप विरोध दर्ज करने आ गए। मगर दूसरे इश्यू में हमने तय कर लिया कि मेल डॉमिनेटेड सोसायटी और कश्मीरी औरत की आज़ादी की बात से पहले क्यों न हम कश्मीरी औरत के डिप्रेशन की बात करें! हम भी सेक्स पर बात कर सकती हैं... मगर जरूरत क्या है? इस्लाम की खिलाफत किए बिना भी हम आजाद होना महसूस कर सकती हैं क्योंकि असल आज़ादी भीतर की है।"[249]

कश्मीरी औरतों को लेकर बाकी क्षेत्र की स्त्रियां प्रायः यह सोचती हैं कि वे पिछड़ी और सजग नहीं है। 'ग्रेस' पत्रिका उनकी सजगता और फिजिकल प्रॉब्लम पर बात करने की इच्छा को जाहिर करती है। कश्मीर की पढ़ी-लिखी महिलाएं इस्लामिक विचारधारा के विरुद्ध खड़े हुए बगैर भी विश्व पटल पर अपने साहस की इबारतें लिख रही हैं। वे इस्लाम और कुरान के उस पक्ष को दुनिया के

---

[249] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ. 133

सामने रख रही हैं जो स्त्रियों को मजबूती देता है और उनके हक की बात करता है। स्त्री की नौकरी, बिजनेस, फिल्म देखने या पार्लर जाने के विरुद्ध इस्लामिक पाबंदी को वे अस्वीकार करती हैं। कश्मीरी स्त्रियों के सशक्त होने की संभावनाओं के तार शिक्षा से जुड़े हुए हैं। आज शिक्षा के कारण उनमें आत्मविश्वास पनपा है। वे अलग-अलग क्षेत्रों में विशेषज्ञता हासिल कर रही हैं। पत्रकारिता एवं चिकित्सा, इन दो क्षेत्रों में कश्मीरी महिलाओं ने विशेष रुचि दिखाई है। कश्मीर के समकाल को देखते हुए जर्नलिज्म का महत्त्व स्पष्ट है। 'शिगाफ़' उपन्यास की नज्म इग्नू के पत्राचार कोर्स के जरिए पत्रकारिता पढ़ती है और नौशाबा उसके तीखे तेवरों की तुलना बरखा दत्त से करती है। कश्मीर की सजग महिला को बुरका ब्रिगेड कहते हुए लेखिका मज़ाज की शायरी कहती है, "तेरे माथे पे ये आँचल बहुत ही खूब है लेकिन/तू इस आँचल से इक परचम बना लेती तो अच्छा था।"[250]

वर्तमान में कश्मीरी स्त्री स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को लेकर भी जागरुक हुई है। कथा साहित्य की ऐसी अनेक निर्भीक स्त्री पात्र हैं जो अपने समाज की अन्य स्त्रियों को भी सजग कर रही हैं। 'कथा सतीसर' की कात्या एक डॉक्टर है जो कश्मीर में स्त्रियों के गिरते स्वास्थ्य को देखकर उसमें सुधार के लिए डॉक्टर बनने का फैसला करती है। वह कश्मीरी औरतों की स्थिति को देखकर चिंतित है, "हल्दी पीली त्वचा, मुरझाई हड्डियल काया, बिखरे बाल, प्रदर, मासिक धर्म के रोगों, हाई लो ब्लड प्रेशर, कमर दर्द, खांसी और हर दूसरे तीसरे साल गर्भ के भार से लदी फदी औरतें! गन्दगी, गरीबी और रूढ़ परम्पराओं का शिकार, ये टूटी-फूटी स्त्रियां, जिन्हें कभी अपने बारे में सोचने का मौका नहीं दिया गया, आखिर ये कब अपनी सदियों की नींद से जागेंगी?"[251] कात्या इन स्त्रियों को रोगों से उबारने के लिए इलाज करने के साथ सलाह-मशवरा भी देती है।

---

[250] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ. 133

[251] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृ० 287

आज कश्मीरी स्त्री अपने वर्तमान और भविष्य के नए क्षितिजों को रंगने-संवारने की ललक में व्यस्त है। शिक्षित होकर वे सशक्त हुईं हैं। अपनी प्रतिभाओं के बल पर वे देश-प्रदेश में मिसाल बन रही हैं। नौकरी, बिजनेस, खेल-कूद आदि क्षेत्रों में वे निरन्तर बेहतर कर रही हैं। वर्तमान की ये झलकें भविष्य के प्रति आश्वस्त करती हैं।

सप्तम अध्याय

<u>विवेच्य कथा साहित्य का शिल्पगत अनुशीलन</u>

किसी भी रचनाकार का कौशल जहाँ एक ओर उसके द्वारा चयनित कथ्य के सुदृढ़ होने से उभरता है वहीं रचना का शिल्प-संयोजन कथ्य को बल प्रदान करता है। ऐसे में एक रचनाकार की सफलता कथ्य और शिल्प के परस्पर सामंजस्य पर निर्भर करती है। विधाओं के अपने-अपने शिल्पगत वैशिष्ट्य होते हैं। एक विधा का शिल्प-विधान प्रायः दूसरी विधा से कमोबेश भिन्न होता है। शिल्प की प्राथमिक प्रक्रिया से होते हुए कथ्य की अभिव्यक्ति की जाती है। शांतिस्वरूप गुप्त लिखते हैं- "शिल्प ही वह माध्यम है, जिसमें उपन्यासकार अपने विषय का अनुसंधान और विकास करता है, उसे मूर्त रूप देता है, अर्थ बोध करता है और अन्ततोगत्वा कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है।"[252] शिल्प-विधि का अंग्रेजी पर्याय टेकनीक (Technique) है। इसके लिए शिल्प-विधान शब्द का भी प्रयोग होता है। इसका सम्बन्ध साहित्य की रुप-योजना से है। अतः साहित्य निर्माण में शिल्प सौष्ठव की भूमिका महत्वपूर्ण है।

युग की रुचि, संस्कार एवं मांग के अनुरूप शिल्प विधि में परिवर्तन होता रहता है। अपरिवर्तनशील होने पर ये विधियाँ अप्रभावी हो जायेंगी। इसका एक निश्चित, रूढ़, एवं परंपरागत रूप नहीं है। डॉ. पांडुरंग पाटील का मत है, "परंपरागत रूपाकारों से मुक्त होने की ललक, नवोन्मेषशालिनी शक्ति, निजी स्वभाव, संस्कार, रुचि एवं अध्ययन आदि कारणों से ही रचनाकार परवर्तित विषयों को सुचारू रूप से निर्वाह करने में प्रयत्नशील रहता है। युग में परिस्थितियों के साथ तादात्म्य रखते हुए शिल्प-संबंधी नए-नए युग प्रयोग होते रहते हैं। युग-परिवर्तन के साथ-साथ जीवन मूल्यों में बदलाव आए, जीवन-विषयक धारणाएँ भी बदल गईं। इस

---

[252] शांतिराम स्वरूप गुप्त, उपन्यास : स्वरूप, संरचना तथा शिल्प, पृ०117

परिवर्तित जीवन सत्य की उचित अभिव्यक्ति के लिए भी रचनाकार को नई शिल्प-विधियों का आश्रय लेना पड़ा।"[253]

कहानी कहने की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। इस समूचे विकास-क्रम में हिन्दी कहानी समय के दबावों और माँग के अनुसार कथ्य और शिल्प में निरंतर परिवर्तित और विकसित होती रही है। जहाँ प्रारंभिक हिन्दी कहानियों में कलात्मक चेतना नहीं के बराबर है वहीं समकालीन कहानियों में इस चेतना का विकास हुआ है। अपने कसाव में शिल्प और प्रत्यक्ष हुआ है। कहानियाँ कल्पना और मनोविनोद के दायरे से बाहर निकल कर 'चरित्र-चित्रण', 'यथार्थवाद' 'मनोवैज्ञानिक-संवेदनाओं' आदि से जुड़ी हैं। कहानी की तुलना में उपन्यास विधा का उद्भव काफी बाद में हुआ। साहित्यिक विधाओं में उपन्यास सबसे नई आधुनिक और लोकप्रिय विधा बनकर उभरा है। उपन्यास समाज और व्यक्ति के जुड़ते तारों, पैदा होते विरोधों और उभरते द्वंद्वों को बारीकी और सम्पूर्णता से पकड़ने की प्रवृत्ति लिए हुए है। सुखद है कि हिन्दी उपन्यास अल्पकाल में ही काफी प्रौढ़ हो गया।

बीसवीं सदी की तीव्र गति में उत्पन्न सामाजिक-सांस्कृतिक उतार-चढ़ावों, चुनौतियों, काल के औदात्य एवं चित्तवृत्तियों को अभिव्यक्त करने हेतु कहानी व उपन्यास सफल विधाओं के रूप में उभरे हैं। अंतर्दृष्टिपूर्ण प्रवृत्ति इसका मुख्य कारण रही है। समाज ने राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न त्रासदियों का सामना किया, 'कश्मीर-समस्या' इनमें एक मुख्य विषय रहा है। हिंदी कथा साहित्य में इस समस्या की प्रमुखता से अभिव्यक्ति हुई है।

7.1 <u>आलोच्य उपन्यासों का अभिव्यंजना शिल्प</u>

उपन्यास हिंदी साहित्य की ही नहीं अपितु विश्व साहित्य की लोकप्रिय एवं बहुचर्चित विधा है। वर्तमान में उपन्यास एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में मनुष्य जीवन के विविध आयामों को प्रस्तुत करने में सहायक है। यह विधा अपने

---

[253] डॉ. पांडुरंग पाटील, देवेश ठाकुर और उनका उपन्यास साहित्य, पृ० 192

युगीन परिवेश को समग्र परिप्रेक्ष्यों के साथ सर्जनात्मक रूप से रूपायित करती है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद का मत है, "मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही मूल तत्त्व है।"[254] यह विधा पश्चिमी साहित्य की देन है और अंग्रेजी में "Novel', मराठी में कादंबरी, गुजराती में 'नवल-कथा तथा बंगला में 'उपन्यास' कहकर पुकारा जाता है। उपन्यास तथा कहानी का संबंध निकट अवश्य है परंतु इनमें प्रकृति, विचार तथा प्रवृत्ति की दृष्टि से काफी अंतर है। उपन्यास का स्वरूप विशाल है जिसमें मानव जीवन और कला की कल्पनामिश्रित यथार्थ अभिव्यक्ति होती है।

हिन्दी उपन्यास का प्रारंभिक शिल्पगत ढांचा शिथिल और स्फीति-प्रधान था परंतु प्रगति और प्रयोग की गति के तीव्र होते रहने के कारण इसमें युगानुरूप परिवर्तन और विकास के लक्षण प्रकट होने लगे। समकालीन उपन्यासों में विषयगत विविधता के साथ शिल्पगत नवीनता और प्रयोगशीलता के भी गुण हैं। उपन्यास को अधिकाधिक प्रभावी बनाने के लिए शिल्प का सुदृढ़ होना अनिवार्य है। रचना का मूल्य शिल्प पर निर्भर करता है। शिल्प का स्वरूप किसी रचना की प्रक्रिया, उसके आकार, विषयवस्तु और कथ्य पर निर्भर होता है। डॉ. त्रिभुवन सिंह का विचार है, "उपन्यास रचना एक कला है और उपन्यासकार एक कलाकार। अत: शिल्प के प्रति असजगता उसे असफलता की ओर ले जायेगी। किसी भी प्रकार का असन्तुलन कृति को नष्ट कर सकता है। शिल्प के प्रति आग्रह उसी सीमा तक स्वीकार्य है, जिस सीमा तक कि वह वर्ण्य विषय औचित्य को नष्ट नहीं करता है।"[255]

शिल्प वास्तव में रचना प्रक्रिया का समुच्चय है। इसके माध्यम से रचनाकार अपना कथ्य अभिव्यक्त करने के लिए कथा, पात्र, संवाद, वातावरण, शैली आदि को गुंथता है। उपन्यास के शिल्पगत अनुशीलन हेतु उपन्यास के तत्त्वों

---

[254] प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृ०54

[255] डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग, पृ० 21

के आधार पर शिल्प के स्वरूप का विश्लेषण किया जाता है। इसमें भाषा संरचना और अन्य शैल्पिक संरचना आवश्यक अंग हैं।

7.1.1 <u>कथावस्तु</u>– कथा उपन्यास के लिए एक महत्त्वपूर्ण और प्राथमिक तत्त्व है। कश्मीर पर आधारित उपन्यासों में रचनाकारों ने कश्मीर को, वहाँ के प्रकृतिजन्य वैभव को, सांस्कृतिक विशिष्टता, राजनीतिक उथल-पुथल एवं भय में जीवन जी रही जनता की व्यथा को आधार बनाकर स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है। कोई भी साहित्यकार अपने समय और परिवेश के अधीन होता है। लेखन-कार्य उक्त तत्त्वों से भी प्रभावित होता है।

'कथा सतीसर' उपन्यास के कथानक पर चन्द्रकांता का मत है, "कथा सतीसर मेरा महत्वकांक्षी उपन्यास माना गया है। कश्मीर पर दो उपन्यास लिखने के बाद यह न लिखा जाता यदि कल्हण का 'धरती का स्वर्ग' आज रक्तरंगे रणक्षेत्र में तब्दील न हो गया होता।"[256] यह उपन्यास वर्ष 1931 से 2000 के बीच के समय पर आधारित है। उपन्यास में कश्मीर उद्भव से लेकर बुतशिकन के उन्माद, बड़शाह की दरियादिली, पंडितों के निर्वासन और कश्मीरियों के विकृत हो रहे जीवन को समेटा गया है। 'यहां वितस्ता बहती है' उपन्यास लेखिका ने आत्मकथात्मक शैली में लिखा है। इसके माध्यम से वे राजनाथ को चित्रित करती हुई अपने पिता व परिवार के बारे में जिक्र करती हैं।

संजना कौल का 'पाषाण युग' आतंकवाद को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। उपन्यास का कथानक कश्मीर में फैले आतंक के सजीव चित्रण पर आधारित है। बृजमोहन के माध्यम से दहशत भरे माहौल एवं साझी विरासत के यथार्थ को व्यक्त किया गया है। 'कश्मीर की बेटी' उपन्यास का कथानक राजकुमारी कोटा देवी एवं दासी पुत्री चांदनी के जीवन को समेटे हुए है तथा तत्कालीन स्त्री-दशा को व्यक्त करता है। 'जम्मू जो कभी शहर था' उपन्यास की कथावस्तु जम्मू क्षेत्र

---

[256] चन्द्रकांता : मेरे भोजपत्र, पृ०56

के रीति-रिवाजों, आंचलिक विशेषताओं तथा सुग्गी नाइन के जीवन पर आधारित गया है।

'दर्दपुर' उपन्यास की कथा का ताना-बाना निर्वासन की त्रासदी एवं स्त्री-दुर्दशा को ध्यान में रखकर बुना गया है। यह फ्लैश बैक में है। क्षमा कौल लिखती हैं, "उपन्यास का रचना विधान कुछ ऐसा है कि सुधा जो स्वयं एक निर्वासित कश्मीरी हिन्दू है, एक विशेष योजना के अन्तर्गत कश्मीरी मुसलमान स्त्रियों के दुःख-दर्द, भय और विवशता में यथासंभव सहयोग करती है और गहरी सहानुभूति से अपने मिशन को सार्थकता देती है।"[257]

'व्यथ-व्यथा' उपन्यास आत्मकथात्मक है जिसमें लेखक ने कश्मीर की ऐतिहासिक परंपरा को चित्रित करते हुए विस्थापन की पीड़ा को व्यक्त किया है। 'एक कोई था कहीं नहीं सा' उपन्यास की कथावस्तु कश्यप बन्धु द्वारा स्त्री सशक्तीकरण हेतु किए गए प्रयासों पर आकार लेती है।

'शिगाफ़' उपन्यास का कथानक कश्मीर पर पूर्व में लिखे गये उपन्यासों से विशिष्ट है। यह ब्लॉग शैली में लिखा गया है तथा कश्मीर से जुड़े सभी अहम मुद्दों विशेषकर स्त्री-जीवन पर गहन चिंतन है। उपन्यास का कथानक समग्रता लिए हुए है। वर्णित प्रत्येक घटना परस्पर सम्बन्धित तथा क्रमगत है और उसमें संगति है। कार्य-कारण श्रृंखला का गुण कथानक में हैं। 'सूखते चिनार' उपन्यास की कथा बाह्य और अंतर्मन से संबंधित घटनाओं पर आधारित है। मेजर सन्दीप के कश्मीर में अनुभव से जुड़ी कहानी पर उपन्यास का भवन खड़ा होता है।

'इक़बाल' उपन्यास चरित्र-प्रधान है। कथा में निर्माण-कौशल्य और संभाव्यता के गुण होने पर भी अस्वाभाविकता कथानक को कमजोर करती है। उपन्यास के आरंभ में ही लेखिका इसके काल्पनिक होने की घोषणा करती हैं।

---

257 क्षमा कौल, दर्दपुर, फ्लैप से

"यह उपन्यास इतना घटना प्रधान हो गया है कि सहज अनुमान करने का मन करता है कि यह वस्तुतः फिल्मांकन के उद्देश्य पूर्ति हेतु रचित है।"[258]

'आतंक की दहशत' उपन्यास डायरी शैली में है। इसका कथानक मौलिकता, सम्बद्धता और सुसंगठितता का गुण लिए हुए है। मनोवैज्ञानिक द्वंद्वों को व्यक्त करती कथा आतंक के दायरे में एक आम व्यक्ति के जीवन को प्रस्तुत करती है। 'बर्फ और अंगारे' उपन्यास की कथावस्तु सशक्त और स्पष्ट है। विस्थापन के दंश, आतंक का भय और बर्फ-अंगारे के बीच पिसती कश्मीरी जनता की कहानी है। 'कांपता हुआ दरिया' रूमानियत से परे हाउसबोटों में घर बनाकर रहने वाले हांजी परिवारों के दुख-दर्द की कथा है। इसमें पूर्वदीप्ति शैली का भी प्रयोग है। 'कश्मीर 370 किलोमीटर' उपन्यास का कथानक अनुच्छेद 370 की पृष्ठभूमि एवं उसके भंग होने की घटना पर आधारित है। 'नाकाबन्दी' उपन्यास चेतना- प्रवाह की प्रवृत्ति लिए हुए है और संवैधानिक मूल्यों के भंग होने की त्रासद कथा पर लिखा गया है।

7.1.2 <u>चरित्रांकन</u>-

चरित्र उपन्यास की रीढ़ है। किसी भी उपन्यास के पात्र मूलतः लेखक की कल्पना या यथार्थ की उपज होते हैं जिन्हें वह अपने उद्देश्य के अनुरूप आकार देता है। पात्रों के आंतरिक और बाह्य दोनों पक्षों के चित्रण द्वारा रचनाकार उन्हें पाठकों के समीप लाने का प्रयास करता है। बाह्य पक्षों में पात्र का आकार प्रकार, वेश-भूषा, आचरण, व्यवहार आदि आते हैं तो आतंरिक में पात्र की मानसिक और बौद्धिक विशेषताओं की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है।

चरित्र-चित्रण को उपन्यास का महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हुए डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त कहते हैं- "किसी भी सफल चरित्र-चित्रण के लिए मानव-स्वभाव का सामान्य ज्ञान, मनुष्य के अन्तर्मन का परिचय, उसके भावों, विचारों, रागद्वेषों, अंतः संघर्षों की जानकारी के अतिरिक्त सहानुभूति, कल्पना-शक्ति तथा वर्ग विशेष की

---

[258] अनुसंधान पत्रिका, अप्रैल 2022-सितंबर 2022) पृ. 70

जानकारी अपेक्षित है।"[259] अतः सफल चरित्र चित्रण के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य के अंतर्मन, अंत:संघर्ष एवं वर्ग विशेष को भी महत्त्व दिया जाए।

उपन्यास में चरित्र-चित्रण सजीव, संगत एवं स्वाभाविक होने पर पात्र प्रभावशाली प्रतीत होते हैं। कथानक के आधार पर पात्रों के दो भेद किए जाते हैं- मुख्य पात्र एवं गौण पात्र। सफल उपन्यासों में दोनों ही प्रकार के पात्रों की चरित्रगत विशिष्टता पाठक पर छाप छोड़ती है। विवेच्य उपन्यासों में पात्रों के शील, स्वभाव, आचार-विचार, व्यवहार आदि बारीकी से चित्रित हैं।

'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास के प्रमुख पात्र राजनाथ कौल हैं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के पक्षधर राजनाथ आधुनिकता का भी पक्ष लेते हैं। लेखिका एक आदर्शवादी चरित्र के भीतर व्याप्त पितृसत्ता के गुट्ठल पक्षों को प्रकाश में लाती है। लल्ली, अयोध्यानाथ, कात्या, कार्तिकेय आदि पात्रों के माध्यम से 'कथा सतीसर' के कथानक को आकार दिया गया है। लल्ली एवं कात्या के सहारे कश्मीरी स्त्रियों का पक्ष प्रस्तुत किया गया है।

'पाषाण युग' उपन्यास की मुख्य पात्र अंजलि है जिसके मानसिक तनावों का चित्रण बखूबी किया गया है। राजू, ब्रजमोहन आदि पात्र कथा को आगे बढ़ाते हैं।

'कश्मीर की बेटी' उपन्यास में राजकुमारी कोटा देवी स्त्री के सशक्त एवं कूटनीतिक चरित्र की पहचान बनाकर प्रस्तुत की गयी है तो चांदनी शोषित एवं उत्पीड़ित स्त्री के रूप में चित्रित है। 'जम्मू जो कभी शहर था' उपन्यास की प्रमुख पात्र सुग्गी नाइन है जिसके चारों ओर उपन्यास घूमता है। सोमा, वजीरनी, परषोतमा अन्य गौण पात्र हैं।

'दर्दपुर' उपन्यास में क्षमा कौल ने सुधा, सुमोना, काकनी, गुलशनआरा आदि पात्रों के माध्यम से कथा कही है। सुधा धर्म पर व्यंग्य करते हुए कहती है,

---

[259] डॉ शांतिस्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत, पृष्ठ- 367

"मैंने इनको इस सूक्ष्म स्तर पर द्वंद्वरत देखा है। ये आपस में मूल मुसलमान और अन्य धर्मों से आए मुसलमान में बंटे हैं सूक्ष्म रूप से।"[260]

'व्यथ-व्यथा' उपन्यास का मुख्य पात्र अशोक है जो कश्मीर के इतिहास पर शोध करते हुए समकाल और आतंक से सामना करता है। गौण पात्रों में कादिर, मोहनकृष्ण, रमजान जू, बसंती आदि हैं। अमरनाथ, शबरी, सादिक, पृथ्वी, दुर्गा आदि पात्रों के हवाले से 'एक कोई था कहीं नहीं सा' की कथा आकार लेती है। 'शिग़ाफ़' उपन्यास में अमिता, जमान, यास्मीन, शान्तनु, वसीम, जुलेखा आदि पात्रों के माध्यम से कथा बिन्दु को विस्तार दिया गया है। अमिता निर्वासन की पीड़ा भोग रही है तो नसीम, यास्मीन और जुलेखा आतंक की सताई हुई हैं। यास्मीन की डायरी उसके चरित्र की भावुकता से रूबरू कराती है। डायरी में आतंक के विषय में लिखती है, "मैं महसूस कर रही हूं, कश्मीरी लड़कियों ने मेकअप करना छोड़ दिया है। उनके खूबसूरत बाल और माथा सफेद चादरों से ढंकने लगे हैं। कइयों ने पूरा जिस्म बुर्के में लपेट लिया है। काजल लगी आँखें फीकी रहने लगीं हैं।"[261]

'सूखते चिनार' उपन्यास के प्रमुख पात्र मेजर सन्दीप के माध्यम से फौजी जीवन की कठिनाईयां व्यक्त की गयी हैं। कर्नल आप्टे, सिद्धार्थ, जमील, रुबीना, हामिद आदि पात्रों के माध्यम से कथा आगे बढ़ती है। 'इकबाल' उपन्यास में इकबाल, जिया, मुजतबा, अभिषेक पात्रों के माध्यम से कश्मीर-समस्या पर विचार किया गया है। 'आतंक की दहशत' उपन्यास घटनाप्रधान है। चरित्र प्रत्यक्ष से अधिक परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। डायरी लिखने वाले पात्र का नाम अंत तक स्पष्ट नहीं होता। 'बर्फ और अंगारे' उपन्यास में मुख्य पात्र शारदा देवी, उनके पति अमरनाथ और उनका परिवार है। इंदौर की बेटी शारदा के कश्मीर में विवाह तथा कश्मीरियत के विकृत होने की कथा कही गयी है। बेगम, खालका, नूरा,

---

[260] क्षमा कौल, दर्दपुर, पृ. 107

[261] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ. 54

सिद्दीक, मामदा, कादिर, नजमा आदि पात्रों के हृदयस्पर्शी जीवन का वर्णन 'काँपता हुआ दरिया' उपन्यास में किया गया है।

'कश्मीर 370 किलोमीटर' उपन्यास के घटनाप्रधान होने के कारण पात्रों का प्रभाव अपेक्षाकृत कम पड़ा है। 'नाकाबंदी' उपन्यास की मुख्य पात्र सोफिया कश्मीर में मानवाधिकार हनन के विरुद्ध आवाज उठाती है। इस उपन्यास के अन्य गौण पात्र इरफान, अली, अख्तर, फिरदौस, अकबर, शकीना आम कश्मीरी नागरिकों के जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

7.1.3 <u>संवाद-योजना</u>

उपन्यास को जीवंत व आकर्षक बनाने में संवाद एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। वर्णन और रूपांकन में संवाद की विशेष भूमिका होती है। नाटकीय स्थितियों, प्रभावशाली दृश्यों, द्वंद्वों की रचना में संवाद के महत्त्व को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। संवादों में जीवंतता, भावों की तीव्रता, लचीलापन, पात्रानुकूलता, वाग्मिता और काव्यात्मकता जैसे गुणों के होने पर सम्प्रेषणीयता सहज रूप में हो जाती है। इनमें परिवेश के अनुरूप पात्रों के द्वारा भाषा का चयन एवं भाव-भंगिमा का सामंजस्य अद्भुत होता है। 'व्यथ-व्यथा' उपन्यास में संवाद के तारों का सहज जुड़ाव होता है। इंदिरा गांधी को गाली दिए जाने के प्रसंग पर रमजान जू से मोहनकृष्ण दर ने पूछा-

"असद नजार के लौंडे ने गालियाँ दी थीं। किसे?",

"आंजहानी इंदिरा गांधी को और किसे ?"

"सीधे कहो इंदिरा गांधी को। यह आंजहानी क्या होता है।"

“आंजहानी मतलब दूसरे जहां का या दूसरे जहां की। जिस तरह तुम स्वर्गवासी कहते हो।"

"मगर तुम तो ऐसे शख्स के लिए मरहूम या मरहूमा का लफ्ज़ इस्तेमाल करते थे।"

"करते थे और गलत करते थे। मरे हुए शख्स के नाम के आगे मरहूम लफ्ज़ जोड़ने का मतलब है कि हम उसके लिए अल्लाह से रहमत की दुआ करते हैं और अल्लाह की रहमत का हकदार सिर्फ एक मुसलमान हो सकता है।"[262]

उक्त पात्रों का पारस्परिक वार्तालाप कथानक को गति देने के साथ ही पात्रों के चरित्र को उजागर एवं समाज के वर्ग-विशेष की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाल वातावरण की सृष्टि कर रहा है।

कथोपकथन के माध्यम से घटना में नाटकीयता एवं सजीवता आ जाती है। संवाद के जरिए घटनाओं में कार्य-कारण श्रृंखला का निर्माण होता है जिसकी स्थिति पात्रों के बौद्धिक एवं मानसिक स्तरों के अनुकूल होती है। पात्रों के विचार, भाव तथा संवेदनाओं को व्यक्त करने में संवाद अत्यन्त कारगर होते हैं। 'शिग़ाफ' उपन्यास में पात्रों के संवाद रोचक, स्वाभाविक, संगत एवं उद्देश्यपूर्ण हैं। अमिता नसीम से पूछती है,

"मैं भी तुम्हारी तरह हूं नसीम। शायद हम सभी औरतें ऐसी ही होती हैं। अच्छा ये बताओ, क्या तुम कश्मीर वापस नहीं लौटोगी।

नहीं। मेरा क्या है वहाँ, न शौहर, न माँ-बाप। आए दिन जान की आफत। डर ऐसा कि औरतें सोए बिना महीनों से रह रही हैं कि अब आंख सुर्ख हो जाती है, मगर नींद गुम। आप जाओगी वहाँ?

हाँ अकेली आपके लिए सेफ है? अब तो, शायद। हालात बदल रहे हैं।

बकवास। वहाँ जाने लायक नहीं है अब भी क्या करोगी?

क्या है सिवा मौत और मातम के।"[263]

स्पष्ट है कि विवेच्य उपन्यासों के संवाद मौलिक उपलब्धि के सशक्त उदाहरण हैं। ये संवाद उपन्यास को लक्ष्य तक पहुंचाते हैं एवं पात्रों के व्यक्तित्व

---

[262] हरिकृष्ण कौल, व्यथ व्यथा, पृ. 18

[263] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ़, पृ. 78

के पहलुओं को उजागर करने में सफल हैं। रोचकता, भावात्मकता, कौतुहलवर्धकता के गुण संवादों की कलात्मकता को प्रदर्शित करते हैं।

7.1.4 <u>देशकाल और वातावरण</u>-

कथानक को अग्रिम गति देने में वातावरण की अहम भूमिका होती है। वातावरण एक पृष्ठभूमि के रूप में होता है जिसके हवाले से कथानक का निर्माण व विकास होता है। "कथानक की गतिविधियाँ, पात्रों का व्यक्तित्व, कहानी का देशकाल नया (अर्थात् वह जिस स्थान पर और जिस समय घटना होती हुई बताई गई है), कहानी की भाषा शैली तथा कहानीकार के उद्देश्य को पाठक तात्कालिक रूप में अर्थात कहानी पढ़ते-पढ़ते जिस प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करने की चेष्टा करता है उस प्रक्रिया का नाम वातावरण है।"[264] देशकाल या वातावरण के माध्यम से उपन्यास की वास्तविकता में वृद्धि होती है।

विवेच्य उपन्यासों में कश्मीर से जुड़ी पौराणिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं का प्रसंगवार वर्णन है। कश्मीर में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्तरों पर आए उतार-चढ़ावों को उपन्यास की कथावस्तु समेटे चलती है। द्वंद्वात्मक स्थितियों और लक्ष्यों का भी मंथन हुआ है जिसकी साफ एवं सपाट अभिव्यक्ति की गयी है। 'कथा सतीसर' में कबाइली आक्रमण, आतंक, निर्वासन व राजनैतिक उठा-पठक का मर्मस्पर्शी वातावरण चित्रित है तो 'आतंक की दहशत' उपन्यास में परिवेशगत वास्तविकताओं को आधारभूमि बनाया गया है। 'कांपता हुआ दरिया' उपन्यास में जीवन की व्यर्थता का बोध, अजनबीपन तथा अकेलेपन का अहसास है। 'शिगाफ़' में स्पेन के विदेशी वातावरण में अमिता का द्वंद्वग्रस्त होना चित्रित है। 'नाकाबंदी' अनिश्चितता की फिजा को समेटे हुए है। सोफिया उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें प्रतिरोध करने की प्रवृत्ति है। 'कश्मीर 370 किलोमीटर' उपन्यास में धारा 370 के निरस्त होने के बाद के भयग्रस्त माहौल का अंकन है।

---

[264] श्री लाल चन्द्र प्रखर, कहानी दर्शन, पृ० 311

7.1.5 <u>भाषा-शैली</u>-

उपन्यासकार भाषा के माध्यम से ही उपन्यास को अर्थ प्रदान करता है। यह भाषा चित्रित समाज व उसमें निवास करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित होती है। समय के साथ उपन्यास में सामाजिक चित्रण के साथ मानवीय संवेदनाओं को भी व्यक्त किया जाने लगा जिससे भाषागत नवीन प्रयोगों को भी स्वीकार किया गया। सामाजिक जीवन की यांत्रिक जटिलताओं, जीवन मूल्यों के विघटन और गहन वेदना को भाषा के माध्यम से आलोच्य उपन्यासों में चित्रित किया गया है। इन उपन्यासों की भाषा आकर्षक, प्रभावी और अर्थ को संप्रेषित करने में सक्षम है।

समकाल में यथार्थ को महत्ता देती उपन्यास की भाषा में रोमान, काल्पनिकता और अतिशय भावुकतापूर्ण भाषा का आग्रह अब समाप्त होने को है। उपन्यासों की भाषा में सरलता, सहजता एवं अनगढ़ता के गुणों का विकास हुआ है। चयनित हिन्दी उपन्यासों की भाषिक संरचना को समझने के लिए भाषा में किए गए प्रयोगों को भी आत्मसात करना आवश्यक है।

कश्मीर के आलोच्यकालीन उपन्यासों में गद्य का समृद्ध रूप प्राप्त होता है। गद्य अपनी सम्पूर्ण कथ्य क्षमता के साथ विकसित दिखाई देता है। 'यहां वितस्ता बहती है' उपन्यास की भाषा अतिशय भावुकता से हटकर सपाटबयानी का गुण लिए हुए है। जैसे- "वह कनखियों से जेबा, नूरी का पानी में मछली- सा तैरता उघडा बदन देखना भूलते नहीं।"[265] इसी प्रकार 'कथा सतीसर' उपन्यास की भाषा भी इस आग्रह से मुक्त है। संप्रेषणीयता एवं प्रतीकों का उत्तम प्रयोग लक्षित किया जा सकता है। आन्तरिक भावों को अर्थ प्रदान करने के लिए प्रतीक के माध्यम से बातें कही गयी हैं। कश्यप, बड़शाह, जलोद्भव आदि प्रतीक रूप में प्रयुक्त किए गए हैं। इनके माध्यम से चेतन के धरातल पर अप्रत्यक्ष को प्रस्तुत

---

[265] चन्द्रकांता, यहां वितस्ता बहती है. पृ० 4

किया गया है। भावों की तीव्रता को अभिव्यक्त करने में कश्मीरी लोकगीतों एवं कथाओं का प्रयोग मार्मिक बन पड़ा है।

'जम्मू जो कभी शहर था' उपन्यास की भाषा आंचलिक शब्दों एवं मुहावरों से सुसज्जित है। पद्मा सचदेव की भाषा कोमलता के बल पर मानवीय चिंतन तथा चेतना के अंतिम आयाम को स्पर्श करती है। भाषा सहज प्रवाहमान है।

'पाषाण युग' उपन्यास कमोबेश मनोवैज्ञानिक तर्ज पर लिखा गया है जहाँ अंजलि के ही इर्द-गिर्द घूमती परिस्थितियों तथा उसका अंजलि पर पड़ते प्रभाव को कभी उसकी खुद की तरफ से, संवाद के जरिए, चिन्ताधारा, अंत:चेतना में हो रही उठा-पटक को सरल भाषा में व्यक्त किया गया है। औपन्यासिक मोड़ों पर भाषा भी परिवर्तित हो जाती है। प्रतीक विधान एवं बिम्ब व्यवस्था सहज बन पड़ी है। "मनुष्य की लंबी ऐतिहासिक यात्रा से कमाए हुए उदात्त आदर्श और उन्हें चुनौती देता हुआ फन काढ़े बैठा वही आदिम संस्कार जिसे इस नई दुनिया में कोई भी नाम दिया जा सकता है- जिहाद, धर्मयुद्ध या पसेपर्दा जंग।"[266]

'दर्दपुर' उपन्यास की कथावस्तु के समान भाषा में भी व्यंग्यात्मकता की झलक है जिसके अनुरूप भाषा काफ़ी तेज-तर्रार और धारदार हो गयी है। क्षमा कौल की भाषा पात्रों के मन को परत दर परत उघाड़ने में सक्षम प्रतीत होती है। काकनी के मनोभावों को लेखिका बहुत ही बारीकी से रेखांकित करती है।

'शिग़ाफ़' कश्मीर पर पूर्व में लिखे गये उपन्यासों की भाषा से तनिक हटकर है। अनुसंधान की प्रवृत्ति पर आधारित यह उपन्यास स्वदृष्टि एवं सामंजस्य को भी समेटे हुए है। यही कारण है कि उपन्यास की भाषा में पारिभाषिक शब्दावली तथा पात्र एवं स्थितियों के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया गया है। लेखिका जुलेखा के मनोभावों को व्यक्त करती हैं, "मेरी जन्नत तो तुम्हारी मोहब्बत है। जेहाद

---

[266] संजना कौल, पाषाण युग, पृ०73

का तो पता नहीं, मगर मैं तुम्हारे राज, तुम्हारी खुश्बू के लिए, वफा के लिए सदियों की नींद में गुम हो जाना चाहती हूँ।"[267]

'आतंक की दहशत' उपन्यास की भाषा में भाव तीव्रता के साथ काव्यात्मकता का भी प्रयोग है। डायरीकार क्या सोचता है, किस प्रकार परिस्थितियों का सामना करता है या कितना भयभीत है, सब सरल भाषा में प्रस्तुत हुआ है। व्यक्ति के मन की तरह ही उपन्यास की भाषा सरल किन्तु विद्रोहात्मक तेवर लिए हुए है। लेखक ने वर्णनात्मक शैली अपनायी है जिससे पाठक स्वयं को घटना का साक्षी प्रतीत करता है।

'काँपता हुआ दरिया' उपन्यास मोहन राकेश और मीराकांत के सहलेखन से सम्पन्न हुआ है। भाषिक स्तर पर दोनों खण्डों में भिन्नता स्वाभाविक है। मोहन राकेश की भाषा सरल, संस्कृतनिष्ठ हिन्दी है तो मीराकांत की भाषा में उर्दू शब्दों की बहुलता है। वर्तमान अकेलेपन और अजनबीयत की सभ्यता का चित्रण बेहद महीन भाषा में किया गया है। अनुभूतियों के चित्रण में प्रकृति के साथ मनोभावों के तालमेल को भी चित्रित किया गया है।

'नाकाबन्दी' एवं 'कश्मीर 370 किलोमीटर' उपन्यास की भाषा में क्रांतिकारी एवं प्रतीकात्मक प्रयोगों के नए तेवर सहज हैं। दृश्य और भाव की प्रत्येक सिलवट को सही ढंग से व्यक्त करने वाले शब्दों का प्रयोग है। भाषा की कलात्मकता मनोभावों को प्रकट करने में सफल रही है। तत्सम बहुल शब्दों की अपेक्षा तद्भव और देशज शब्दों वाली भाषा का प्रयोग आकर्षक है। भाषा में प्रयुक्त उपमान एवं बिम्ब भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हैं। उपन्यासकार भावों की तीव्रता को उपमानों एवं बिम्बों के माध्यम से चित्रित करता है। विवेच्य उपन्यासों की अभिव्यक्ति में उपमान और बिम्ब-विधान की नवीनता एवं गहनता भाषा के आधुनिक बोध के स्वरूप को रूपायित करती है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से निष्पन्न उपमान और बिम्बों के प्रयोग से भाषा अपनी पारंपरिक अभिव्यक्ति को तोड़कर नई अभिव्यक्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सकी है। 'कथा सतीसर'

---

[267] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिग़ाफ, पृ. 193

उपन्यास में चन्द्रकांता का लेखन नवीन उपमानों व बिम्बों से समृद्ध है। वह लिखती हैं, "कि लुप्त होती थाती का छोर मुट्ठी में दबाए/रोक नहीं पाऊंगा मैं काल प्रवाह /कि दोजखी आग में नंगे तलुओं टिका हूं/जानता नहीं किसका प्रहरी हूं/मुझे आवाज दो, मेरे जन्म दाताओं।"[268] चन्द्रकांता अपने उपन्यासों में गाँव के परिवेश से भी प्रभावी उपमाएं और बिम्बों को चित्रित करती हैं।

7.1.5.1 <u>शैलीगत विशेषताएँ</u>-

'शैली' अभिव्यंजना का एक प्रकार है। यह अंग्रेजी के शब्द 'Style' का पर्याय है जिसके लिए 'रीति' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। "शैली लेखक के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। लेखक का व्यक्तित्व उसका जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण, भाव, कल्पना, संस्कार, प्रतिभा आदि पर निर्भर होता है। आशय के अनुकूल शैली होनी चाहिए तभी लेखक के प्रतिपादन में प्रभाव एवं सघनता पैदा होती है।"[269] समकालीन हिन्दी उपन्यासों में प्रयुक्त नई भाषा शैलियों से आलोच्य उपन्यास भी प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति में सक्षम रहे हैं।

7.1.5.1.1 <u>विचारात्मक शैली</u>-

विचारात्मक शैली वहाँ होती है जहाँ लेखक किसी विषय पर विचार करता हुआ अपने साहित्य में किसी विषय अथवा घटना, पात्र, परिस्थिति, देशकाल, वातावरण आदि को रेखांकित करता है। 'व्यथ-व्यथा' उपन्यास इसी शैली में लिखा गया है। "तुम भी बेवकूफी की बात करने लगे पंडित जी। लाश चाहे आदमी की हो या चूहे की, उसे लोगों के नजारे के लिए बीच रास्ते नहीं रखा जाता। मैंने उसी वक़्त चौकीदार अहदू को बुलाकर बेजान को नाले में फिकवा दिया।"[270]

---

[268] चन्द्रकांता, कथा सतीसर, पृ. 578

[269] डॉ. शंकर वसंत मुदगल, महाकाव्यात्मक उपन्यासों की शिल्पविधि, पृ॰28

[270] हरिकृष्ण कौल, व्यथ-व्यथा, पृ॰86

7.1.5.1.2 <u>चित्रात्मक शैली</u>

इस शैली का प्रयोक्ता उपन्यासकार वर्णन को इतना सजीव बना देता है मानों ऐसा प्रतीत हो कि आंखों के समक्ष कोलाज चल रहा है। शैली का यह रूप पाठक को साथ लिए चलता है। 'दर्दपुर' उपन्यास में क्षमा कौल के शिल्प में यह विशेषता है। अतीत और वर्तमान का चित्रण करते हुए वे एक फिल्म प्रदर्शित करती जान पड़ती हैं। जैसे- "धुएँ की टेप में लिपटा है परत दर परत मेरा स्मृति संसार। मेरे गाँव की शामें और उस जीवन का शहर तक विस्तार। धुएं में कैद है मेरी माँ के बोल, भंगिमाएं, कपोल चित्र। धुएँ में मुझे लगता है, पापा अपने कमरे में अपने कोने में बैठे हुक्का इस तरह पी रहे हैं, बम भोले भांग पी रहे हो।"[271]

7.1.5.1.3 <u>पूर्वदीप्ति शैली</u>

पूर्वदीप्ति अर्थात् पूर्व की स्मृतियों का कौंध जाना या ताजा हो जाना। इसके अन्तर्गत पात्र अपने जीवन में किसी घटना के होने पर पिछली यादों की ओर जाने लगता है। आलोच्य सभी उपन्यासों में फ्लैशबैक शैली का प्रयोग है। 'शिगाफ़' की अमिता स्पेन में रहते हुए कश्मीर से जुड़ी यादों को लेकर व्याकुल है तो 'दर्दपुर' की सुधा कश्मीर दौरे पर पूर्व की स्मृतियों से द्वंद्व में।

7.1.5.1.4 <u>व्यंग्यात्मक व लाक्षणिक शैली</u>-

इस शैली के अन्तर्गत उपन्यासकार समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं कुव्यवस्थाओं पर व्यंग्य करता है। लाक्षणिक शैली का भी प्रयोग चयनित उपन्यासों में है। 'नाकाबन्दी' उपन्यास की सोफिया संवैधानिक मूल्यों पर व्यंग्य करती है। 'पाषाण युग' में संजना कौल मानव की संवेदनहीनता को लाक्षणिक शैली में व्यक्त करती हैं, "इतिहास में कोई बड़ी घटना नहीं घटी। न हिरोशिमा की पुनरावृत्ति हुई न नागासाकी में रेडियोधर्मिता ने जन्म लिया। तीसरा विश्व युद्ध भी नहीं छिड़ा सिर्फ एक तपोवन देखते ही देखते आदमखोर पेड़ में बदल गया।"[272]

---

[271] क्षमा काल, दर्दपुर, पृ० 197

[272] संजना कौल, पाषाण युग, पृ. 53

7.1.5.1.5 रिपोर्ताज शैली-

इस शैली का प्रयोग 'आतंक की दहशत', 'सूखते चिनार', 'नाकाबंदी', 'कश्मीर 370 किलोमीटर', 'शिगाफ़' आदि उपन्यासों में हुआ है। आँखों देखे का वर्णन ही रिपोर्ताज शैली के अन्तर्गत आता है। पाम्पलोना के बारे में अमिता लिखती है, "यह शहर अजीब है, यहाँ बाजारों और रास्तों पर लोगों के हुजूम को देखकर किसी को भी लग सकता है कि शायद आज सारा शहर पिकनिक के मूड में है।"[273]

अतः चयनित उपन्यासों में कथ्य और शिल्प के स्तर पर अभिव्यक्त चिंतन और सरोकार प्रभावी हैं और इन उपन्यासों की शिल्पगत विशेषताएं नई संभावनाओं का द्वार खोलती साहित्य को विशिष्ट बनाती हैं।

7.1.6 उद्देश्य एवं मूल संवेदना-

उद्देश्य, उपन्यास का अनिवार्य तत्त्व है। प्रारंभिक साहित्य में उपन्यास का लक्ष्य अतिरंजित चित्रण तथा मनोरंजन प्रदान करना था। इसके साथ ही एक स्वस्थ समाज व समुन्नत राष्ट्र की भावना को भी आश्रय दिया गया। यथार्थवादी उपन्यासों में सुधारवादी दृष्टिकोण के साथ सामाजिक समस्याओं के चित्रण को महत्व दिया जाने लगा। प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में उद्देश्यों में परिवर्तन स्पष्ट होने लगा। चारित्रिक विश्लेषण, उपदेश, मानव मन के अंतर्वेगों एवं लेखक की मान्यताएँ आदि उद्देश्यों से प्रेरित होकर आज उपन्यास का सृजन हो रहा है।

कश्मीर पर लिखे गये उपन्यासों में साहित्यकारों ने प्रायः स्त्री-दशा, युवा वर्ग की स्थिति, आतंक के भयावह दौर से पाठकों को रूबरू कराने का उद्देश्य रखा है। चन्द्रकांता अपने दोनों उपन्यासों के माध्यम से कश्मीरी समाज एवं संस्कृति से वाकिफ कराती आतंक और निर्वासन की अंतहीन पीड़ा को व्यक्त करती हैं। विस्थापन का दंश झेल रहे साहित्यकार मानसिक पीड़ा से विश्रान्ति हेतु साहित्य रचते हैं। अपनी निजी पीड़ा को स्वर देते वे एक पूरी कौम के उत्पीड़न

---

[273] मनीषा कुलश्रेष्ठ, शिगाफ, पृ०14

का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसे में व्यष्टि का दुःख समष्टि का दुःख बन जाता है। इन उपन्यासों में कश्मीरियत के पूर्व सौहार्द प्रेरक रूप के विकृत होने की कथा आतंकवाद के बढ़ते कदमों के साथ कही गयी है।

कश्मीर में आतंक, सेना और सत्ता के बीच पिसती जनता की व्यथा का चित्रण करने के उद्देश्य को लक्षित उपन्यास 'नाकाबन्दी' एवं धारा 370 के महत्त्व तथा निरस्तीकरण के दौरान बने माहौल को चित्रित करने में 'कश्मीर 370 किलोमीटर' उपन्यास सफल रहे हैं। कश्मीर में विस्थापितों के पुर्नस्थापन को वैचारिक बल देने का भी प्रयास किया गया है। कश्मीरी भाषा एवं लोकरंग को बचा पाने की मर्मान्तक पहल को लक्षित किया जा सकता है। अतः कहना ठीक होगा कि विवेचित उपन्यास अपने सृजन के उद्देश्य प्राप्ति में सफल रहे हैं।

7.2 <u>चयनित कहानियों का शिल्प-पक्ष</u>

साहित्य में शिल्प-विधि की अनिवार्यता अपरिहार्य है। प्रत्येक साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि वह वस्तु और शिल्प के बीच संतुलन को बनाए रखने का पूर्ण प्रयास करे। कश्मीर को केन्द्र में रखकर लिखी गयी कहानियां9 (मौलिक एवं अनूदित) भाषा व शिल्प में विशेष दर्जा प्राप्त करती हैं। ये कहानियां कश्मीरी समाज का बारीक चित्रण करती हैं। नारी के अंतर्द्वंद्व, विस्थापन की पीड़ा, आतंक की क्रूरता, कश्मीरियत के तानों-बानों से गुंथी कहानियां सहजता में विद्रोह और वेदना के भी रंगों को लिए हुए हैं। सामान्य सी प्रतीत होती ये कहानियां कथ्य को अत्यन्त मुखरित कर देने वाली हैं।

विवेच्य कहानियों का शिल्पगत अध्ययन करते हुए कहानी के प्रमुख तत्त्वों का अनुशीलन आवश्यक है। विद्वानों ने कहानी के प्रमुख तत्व निम्न माने हैं- कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकन, देश-काल तथा वातावरण, भाषा शैली और उद्देश्य।

7.2.1 <u>कथानक</u>-

कथा कहानी का प्रमुख आधार है। इस पर कहानी का विस्तार निर्भर होता है। अतः कथा में जीवन के किसी मार्मिक एवं महत्त्वपूर्ण पक्ष का प्रभावोत्पादक उद्‌घाटन नितान्त आवश्यक है। किसी भी कहानी में विकास की चार अवस्थाएं होती हैं- प्रारंभिक अवस्था, मुख्यांश या घटनाओं का उत्थान, चरम सीमा या संघर्ष की अंतिम अवस्था और परिणाम। कहानी की उक्त अवस्थाओं के क्रमिक एवं रोचक विकास से पाठकों की उत्सुकता में वृद्‌धि होती है। इस दृष्टि से चयनित कहानियाँ सभी अवस्थाओं का पूर्ण निर्वाह करती हैं। 'काली बर्फ' कहानी में बर्फ के काली होने पर संशय प्रारंभिक अवस्था है, साम्प्रदायिकता का माहौल बनना मुख्यांश, परमी का बलात्कार चरम सीमा एवं विश्वासों का ढह जाना कहानी के परिणाम के रूप में चित्रित है।

कथानक के गुण पर प्रकाश डालते हुए प्रतापनारायण टंडन लिखते हैं, "शिल्पगत नवीनता भी कहानी की कथावस्तु का एक विशेष गुण है। प्राचीन कथा-साहित्य में कथावस्तु के उपरांत इसी तत्त्व को महत्व दिया जाता था। आधुनिक कहानी में यद्‌यपि चरित्र-चित्रण का तात्विक महत्त्व बढ़ गया है, परंतु फिर भी शिल्प तत्त्व को प्राथमिकता दी जाती है।"[274] चयनित कहानियाँ शिल्पविधि का पूर्ण निर्वाह करती हैं। सभी कहानियां आकार में छोटी हैं। घटनाओं के सूक्ष्म विश्लेषण चरित्रों के माध्यम से करते हुए कहानीकार पाठक को केंद्रीय विचार तक पहुँचा पाए हैं। कथानक में समग्रता का गुण है। कहानियों का संगठन कौशल स्वाभाविकता ले आया है।

समीक्षित कहानियों में कुछ आत्मकथात्मक हैं। जैसे- 'मैंने झील को साँस लेते देखा है (किरण बख्शी)', 'वे अड़तालीस घंटे (आशीष कौल)', 'वापसी (संजना कौल)', 'अस्पताल से घर तक (कश्मीरी से अनूदित, श्याम बिहारी)' आदि। प्रतीकात्मक कहानियाँ हैं- 'काली बर्फ (चन्द्रकांता)', 'वनवास (चन्द्रकांता)', 'जवाब-तलब (सुधाकर अदीब)', 'गृहदेवता (कश्मीरी से अनूदित, क्षमा कौल)' आदि। ये कहानियाँ अनुभव

---

[274] डा. प्रतापनारायण टंडन, हिंदी कहानी कला, पृ० 267

की उपज प्रतीत होती हैं। कहानी के आरंभ में जागृत उत्सुकता पाठक को पढ़ने के लिए सजग कर देती है। यथा- "अमावस की उस अँधेरी रात। पहाड़ों की पाँत से घिरे गाँव की ढलुवाँ छते हैं कि कजलाए ढूह और कोयले के ढेर। भूत- प्रेतों की आकारहीन शक्लों में घात लगाए खड़े लंबे ऊँचे दरख्त। झीना-झीना मेह अभी भी अटक-अटककर बरसे जा रहा है।"[275]

कहानियों में कथानक के लिए आवश्यक सभी गुण समाए हुए हैं। इन कथाओं के शीर्षक भी सार्थक बन गए हैं। शीर्षक चयन का आधार कभी घटना, यथा- 'विदागीत (चन्द्रकांता)' , कभी पात्र, जैसे- 'रानी भाभी (चन्द्रकांता)' तो कभी भाव, 'वापसी' (संजना कौल) आदि रखे गये हैं। अधिकांश कहानियाँ घटनाप्रधान हैं और शीर्षक तदनुरूप। कहा जा सकता है कि कहानियाँ (मौलिक एवं अनूदित दोनों ही) कथावस्तु की दृष्टि से सफल कहानियों की श्रेणी में हैं।

7.2.2 <u>पात्र एवं चरित्र-चित्रण</u>-

समकालीन कहानी का मूल आधार मनोविश्लेषण है और मनोविज्ञान के केन्द्र में मानव का चरित्र। चरित्रों को कथावस्तु के सजीव संचालक के रूप में सम्बोधित किया जाता है। कहानी का कलेवर छोटा होने से पात्रों के चरित्र-चित्रण का पर्याप्त अवसर तो नहीं होता परंतु मितव्ययता की शर्त का पालन करते हुए पात्रों की बाहय एवं आंतरिक वृत्तियों का चित्रण करने में सफलता प्राप्त की जा सकती है। पात्र कहानी में घटनाओं को विस्तार देते हैं। चरित्र-चित्रण में अपेक्षित गुण हैं- कथानुरूप अनुकूलता, स्वाभाविक व सजीव पात्र, यथार्थ चित्रण आदि।

कश्मीर केन्द्रित कहानियों में पात्रों का चित्रण स्वाभाविकता से हुआ है। पात्रों के चित्रण में एक विश्वसनीयता है। प्रत्येक पात्र कहानी की बनावट में संतुलन व प्रभाव पैदा करता है। सभी पात्र अपनी वर्गीय विशेषताओं का कुशल प्रतिनिधित्व करते हैं। 'काली बर्फ' की परमी, 'आवाज' की विनी, 'बलकाक और

---

[275] चन्द्रकांता, आवाज कहानी, पृष्ठ- 1

नोनो’ के बलकाक, 'धत्त तेरे की' कहानी का मज़ीद गोल आदि सफल चरित्र-चित्रण के उदाहरणस्वरूप देखे जा सकते हैं।

7.2.3 कथोपकथन-

यह कहानी का तृतीय मूल उपकरण है। कहानी के सभी तत्त्व सैद्धांतिक दृष्टि से तो परस्पर सम्बद्ध होते हैं परंतु कथोपकथन व्यावहारिक दृष्टि से पात्रों से अधिक संबंधित होता है। कथा में पात्रों के वार्तालाप हेतु ही यह तत्त्व प्रयुक्त होता है। अन्य तत्त्वों के समान इस क्षेत्र में भी पर्याप्त विविधता का अवकाश है।

कहानी के कम विस्तृत कलेवर को ध्यान में रखते हुए संवादों को संक्षिप्त रखना आवश्यक होता है। एक प्रतिभावान कथाकार संवाद कुशलता के आधार पर कथानक का विकास करता है और उसे गतिशीलता प्रदान करता है। संवादों के प्रयोग से कहानी की नाटकीयता एवं सजीवता में वृद्धि होती है। संवाद का महत्त्व स्पष्ट करते हुए डॉ. प्रतापनारायण टंडन ने कहा है, "कहानी के विविध उपकरणों में से कथावस्तु तथा पात्रयोजना तत्त्वों में पारस्परिक संतुलन की दृष्टि से कथोपकथन का विशेष महत्त्व होता है। देशकाल अथवा वातावरण एवं उद्देश्य तत्त्व की सफल संयोजना में भी कथोपकथन का योग होता है। विभिन्न गुणों से युक्त कथोपकथन संपूर्ण कहानी को प्रभावात्मकता प्रदान कर सकता है।"[276]

कश्मीर को केन्द्र में रखकर लिखी गयी मौलिक एवं अनूदित कहानियों में संवादों का उत्कृष्ट रूप मिलता है। मौलिक कहानियों की अपेक्षा अनूदित कहानियों में संवादों का रुझान स्त्रोत भाषा के कथाकहन की ओर ज्यादा है। कश्मीरी भाषा से अनूदित कहानियों के संवाद कश्मीरी लहजे की ओर झुके प्रतीत होते हैं। यही स्थिति डोगरी, पंजाबी, उर्दू एवं गोजरी से अनूदित कहानियों के साथ भी है। अतएव संवादों की स्वाभाविकता प्रभावित होती है।

---

[276] डॉ. प्रतापनारायण टंडन, हिंदी कहानी कला, पृ. 267

कश्मीर पर लिखी गयी मौलिक कहानियों में संवाद रोचक, कलात्मक एवं संक्षिप्त हैं। पात्र तथा परिस्थिति के प्रति संवादों की अनुकूलता इनकी नाटकीयता में वृद्धि करती है। संक्षिप्त संवादों की प्रभावोत्पादकता लम्बे और उपदेशप्रधान संवादों से कहीं अधिक होती है। 'विषाद् योग' कहानी में एक मुस्लिम व्यक्ति के सैनिकों के लिए चिंता से जुड़े संवाद संक्षिप्त एवं जिज्ञासा से भरे हुए हैं।

"इसकी आँखें सुहेल से कितनी मिलती है, शब्बीर कहता है। सुहेल शब्बीर का बेटा है। चार साल का बातूनी...

कहीं इसे गोली लग गई तो? शब्बीर उसी नवयुवक को देखते हुए कहता है।

मैं घबरा कर उसकी तरफ देखता हूँ, फिर उसे डाँटने लगता हूँ? जब भी सोचोगे, बुरा सोचोगे।"[277]

सारांश रूप में कह सकते हैं कि इन कहानियों के संवाद नाटकीय तथा अर्थगर्भित होने के कारण उत्कृष्ट हो गए हैं। कहानियों में प्रयुक्त संवाद कथानक के आकार को रूप देने और चारित्रिक विशेषताओं के उद्घाटन में पर्याप्त सफल हैं। संवादों में सांकेतिकता उन्हें विशिष्ट बनाती है और प्रवाहमयता, सहज एवं बोधगम्य। संवाद की दृष्टि से चयनित कहानियाँ सफल हैं।

7.2.4 <u>देशकाल</u>-

यह कहानी का चौथा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसकी योजना कहानी को तत्कालीन परिवेश से जोड़ती हुई विश्वसनीय बनाती है। कहानी की सफलता घटनाओं, पात्र-योजना और वातावरण के उचित सामंजस्य पर ही निर्भर करती है। यदि कहानी के उक्त तत्त्वों में परस्पर जुड़ाव न हो तो वह अस्वाभाविक व मनगढ़ंत प्रतीत होती है। कोई भी पाठक वातावरण को एक संकेत रूप में ग्रहण

---

[277] संजना कौल, काठ की मछलियाँ, पृ०55

करता है जहाँ कहानी पढ़ते हुए उसे सामाजिक, राजनीतिक व ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय प्राप्त होता है।

वातावरण के अंतर्गत कहानी के तत्कालीन परिवेश के साथ सामाजिक परंपराओं, संस्कृति एवं रीति-रिवाज का भी ज्ञान होता है। यथा 'विदागीत' कहानी में प्रमोदिनी की विदाई की रीति निभायी जाती है। 'काली बर्फ' कहानी में कुवैत के सद्दाम हुसैन और आतंक के बढ़ते प्रभाव का जिक्र है। 'बलकाक और नोनों' कहानी में लद्दाख के जनजीवन और जम्मू की विपरीत जलवायु का जीवंत चित्रण है। इसी प्रकार अन्य कहानियाँ भी रचनाकाल और घटनात्मक आधार लिए हुए हैं।

कहानी की कथावस्तु की वास्तविकता वातावरण के चित्रण से सुनियोजित हो जाती है। चित्रात्मकता तथा वर्णन की सूक्ष्मता वातावरण के प्रभाव में वृद्धि करती है। अतः देश-काल के चित्रण का महत्व निर्विवाद है। यद्यपि कथाओं में सीमित आकार का होने के कारण चित्रण का इतना अवकाश तो उपलब्ध नहीं होता परंतु सूक्ष्म रूप में भी देशकाल का वर्णन प्रभावी साबित हो सकता है। चयनित कहानियों में कुछ ऐसी भी कहानियां है जिनमें वातावरण का चित्रण न के बराबर है। इसका कारण कहानी के पात्रों के व्यक्तिगत अनुभवों को विस्तार देना है और ये अनुभव देश-काल की स्थिति का सांकेतिक विवरण प्रस्तुत करते हैं। 'यातना की कहानी' इसका सफल उदाहरण है।

विवेच्य कहानियों के अनुभव वृत्त अत्यन्त विस्तृत हैं। अन्चीन्हें कोण इन कहानियों में इस रूप में अभिव्यक्त होते हैं कि बदलते संदर्भों के साथ जुड़ाव सहज हो जाता है। स्पष्ट है कि ये कहानियां देश-काल और वातावरण के चित्रण में सफल रही हैं।

7.2.5 <u>भाषा-शैली</u>-

कहानीकार का माध्यम है भाषा। कहानी को अर्थ प्रदान करने का माध्यम भाषा ही होती है। कहानी को भाषा से पृथक करना नामुमकिन है। भाषा अपने

अमूर्त और कल्पित रूप में एक व्यवस्था और व्याकरण की धारणा को समेटे हुए होती है। अभीष्ट भाव को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त भाषा का चुनाव अतिआवश्यक है। सरल, सहज, मुहावरेदार और कहावतों के प्रयोग से बनी भाषा कहानी को आकर्षक बनाती है। भाषा की जटिलता कहानी के रोमांच को नष्ट कर देती है। कहानीकार के लिए यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि निरर्थक शब्द-योजना, शब्दाडंबर एवं वाक्यजाल कहानी की प्रवाहमयता को बाधित कर देते हैं।

चित्रात्मकता और प्रतीकात्मकता के गुण कहानी को विशिष्टता प्रदान करते हैं। प्रसंगों के अनुरूप कहानी में उतार-चढ़ाव भावों के सहज सम्प्रेषण में सहायक होते हैं। चयनित कहानियां सहज और सरल हैं। इन कहानियों की भाषा में लचीलापन है और संवेदना की दृष्टि से ये कहानियाँ सुगठित हैं। भाषा की ताजगी मौलिक और अनूदित दोनों कहानियों की विशेषता है। पात्रों के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया गया है। मौलिक कहानियों में तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग है। अनूदित कहानियों में स्वाभाविक तौर पर तत्सम् एवं तद्भव शब्दों के साथ अरबी, फारसी, उर्दू, कश्मीरी आदि शब्दों को भी शामिल किया गया है। द्विरुक्त शब्दों, लोकोक्तियों-मुहावरों एवं अपशब्दों का भी प्रयोग यत्र-तत्र देखा जा सकता है।

चन्द्रकांता की भाषा प्रतीक-विधान, उपमान और बिम्बों को गढ़ने में सफल मानी जाती है। भाषा की कलात्मकता का एक नमूना इस प्रकार है, "उनकी नोच खसोट से विनी की आत्मा जख्मी हो गयी थी। अपने माल की हिफाजत भी तो जरूरी काम है। वे हंसते तो उनके काले मसूढ़ों में फंसे खून सने कच्चे गोश्त के रेशे नमूदार हो जाते। विनी अपने भीतर घुस जाती। इन दागदार मसूढों में चाकू घोंप दे तो क्या हँस पाएंगे ये कच्चे गोश्त के आहारी ?"[278]

वर्तमान कहानियों में शैली को विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया गया है। कला की प्रेषणीयता के लिए शैली एक जरूरी माध्यम है। किसी बात को कहने या

[278] चन्द्रकांता, आवाज, पृ. 3

लेखन के विशेष ढंग को शैली कहते हैं। कहानी की शैली में प्रतीकात्मकता, रोचकता, भावात्मकता, आंचलिकता, व्यंग्यात्मकता और आलंकारिकता आदि गुणों का होना रचना को प्रभावी बनाता है। समकालीन कहानी में अनेक शैलियों का प्रचलन है। स्वरूपगत वैविध्य एवं कलात्मकता की दृष्टि से लोककथात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, स्मृतिपरक शैली, फ्लैशबैक शैली, स्वप्न शैली, पत्रात्मक शैली आदि प्रचलन में हैं। शैली का वैशिष्ट्य लेखक के व्यक्तित्व की मौलिक प्रतिभा पर भी निर्भर होता है। आत्मकथात्मक और मनोविश्लेषणात्मक शैलियों का भी अधिकाधिक प्रयोग है।

लोककथात्मक शैली का उदाहरण 'काली बर्फ' की इन पंक्तियों में किया गया है, "हमारी दादी-नानी जब किसी असंभव अनहोनी की संभावना को समूल उखाड़ना चाहती, तो एक छोटे से वाक्य का सहारा लेकर सभी संबंधित आशंकाओं को निरस्त कर देती, "आह! क्रुहुन शीन शीन ष्योमुत जाँह?" कभी काली बर्फ भी पड़ी है? यानी कि अगर आकाश से काली बर्फ गिरे तो इनसानियत को बचाए रखते सारे विश्वास और सभी उम्मीदें अपनी अर्थवत्ता न खो देंगे?”[279]

'बेगाने देश में' कहानी में लेखिका आत्मकथात्मक शैली का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। विदेश के अपने अनुभव को साझा करती हैं," हाइवे एक सौ एक! और इस हाइवे की इमरजेंसी लेन में हमारी गाड़ी आगे-पीछे की तमाम लाल बत्तियां, टिमकाती आने जाने वालों को अपनी मुसीबत की सूचना और मदद की याचना के संकेत दे रही हैं, रोशनियाँ भी डरी-सहमी धुकधुकाती नजर आ रही हैं। अभी-अभी तो हमारी गाड़ी एक सौ दस किलोमीटर घंटे के हिसाब से इस हाईवे पर दौड़ रही थी। गहराती रात में हवा के ठंडे झकोरों का लुत्फ उठाते हम पिछले दिनों के अनुभव को बार-बार जी रहे थे, और अभी अभी यह अचानक हादसा।"[280] उक्त पंक्तियाँ चित्रात्मक शैली का भी गुण लिए हुए हैं।

---

[279] चन्द्रकांता, काली बर्फ, पृ० 172

[280] चन्द्रकांता, काली बर्फ, पृ० 153

'वनवास', 'रानी भाभी' एवं 'नदी का काम बहना है' कहानी में स्मृतिपरक शैली का प्रयोग किया गया है। व्यंग्यात्मक शैली के आधार पर सुधाकर अदीब की 'जवाब- तलब' कहानी है। 'मैनें झील को साँस लेते देखा है' कहानी में प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन कहानियों में अनेकानेक शैलियों एवं भावानुरूप भाषा का प्रयोग कथ्य को सुदृढ़ बनाता है। भाषा -शैली की दृष्टि से चयनित कहानियां सफल हो गई हैं।

7.2.6 <u>उद्देश्य</u>-

प्रत्येक कहानीकार का कहानी लिखने के पीछे एक निश्चित उद्देश्य अवश्य होता है। वर्तमान में कहानी लेखन के पीछे समस्या-चित्रण, जागरुकता लाना, घटना से रूबरू कराना आदि जैसे कई उद्देश्य हैं। कहानी का उद्देश्य एक बीज की भांति होता है जिससे जन्म लेकर कथानक रूपी पेड़ वृहद आकार लेता है। अतः बिना उद्देश्य के कहानी की कल्पना व्यर्थ है।

कश्मीर पर लिखी गयी कहानियों के पीछे भी एक नियत उद्देश्य रहा है। ये मात्र मनोरंजन की दृष्टि से नहीं लिखी गयीं बल्कि कश्मीर से जुड़ी समस्याओं के प्रति पाठक का ध्यान आकृष्ट कराना इनका मुख्य उद्देश्य है। आतंकवाद, विस्थापन, कैंपों के कष्टमय जीवन, कश्मीरी प्रकृति के प्रति प्रेम, पुनर्वास की उत्कट आकांक्षा को व्यक्त करना आदि इन कहानियों के लेखन की मूल संवेदना है। ये कहानियाँ मानवीय धरातल पर यथार्थ रूप में प्रस्तुत हैं। संघर्ष, जिजीविषा और उम्मीदों की अनकही गाथा इन कहानियों का प्रेरणास्त्रोत है। चयनित कहानियों में विस्थापन और आतंकवाद की समस्याओं को अधिक मात्रा में उठाया गया है। 'आवाज', 'काली बर्फ', 'धत्त तेरे की' आदि कहानियां आतंक के उग्र रूप को व्यक्त करती हैं। 'शरणागत दीनार्त', 'बलकाक और नोनो', 'वे अड़तालीस घंटे', 'किस्सा गाशकौल' आदि कैंपों के दयनीय जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त करती कहानियां हैं। 'वापसी', 'मैनें झील को साँस लेते देखा है' आदि कश्मीर में बेहतर हालात की उम्मीद से पोषित होकर लिखी गयी हैं।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि कहानी के सभी तत्वों का विवेच्य कहानियों में सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कहानियों का शिल्प भी अत्यन्त सुंदर रहा है। शिल्प की दृष्टि से कहानियाँ श्रेष्ठ हैं। सुंदर बिंब-विधान, प्रभावशाली भाषा, कलात्मक शैली और उद्देश्यपूर्ण सफल पात्र-योजना मणिकांचन संयोग है। अतः कहानियां आकर्षक और प्रभावोत्पादक बन गई हैं।

उपसंहार

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज के प्रत्येक पक्ष को अभिव्यक्त करने में साहित्य सदा से अग्रसर रहा है। समय के साथ समाज में आने वाली समस्याओं, अंतर्विरोधों एवं उतार-चढ़ाव को केन्द्र में रखकर चिंतन-मनन का विषय बनाना साहित्यकार का महत्त्वपूर्ण दायित्व है। इस दिशा में उपन्यास एवं कहानी विधा में साहित्यकारों ने प्रभावी कार्य किया है। कथा साहित्य की ओर अपने रुझान और कश्मीर के प्रति जिज्ञासा को ध्यान में रखते हुए मैंने अपना शोध प्रबन्ध कथा साहित्य में चित्रित कश्मीर पर केंद्रित किया। कश्मीर क्षेत्र की विशिष्टता एवं वहां के बनते-बिगड़ते हालातों को मद्देनजर रखकर अनेक उपन्यास एवं कहानियाँ लिखी गई हैं जिनमें वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य, सामाजिक स्थिति, सांस्कृतिक विशिष्टताओं, इतिहास एवं समकालीन ज्वलंत मुद्दों पर विचार किया गया है। हिन्दी कथाकारों ने कश्मीर समस्या को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से चित्रित किया है।

कश्मीर को केन्द्र में रखकर चंद्रकांता का 'यहां वितस्ता बहती है', 'कथा सतीसर', संजना कौल का 'पाषाण युग', डॉ शत्रुघ्न् प्रसाद का 'कश्मीर की बेटी', पद्मा सचदेव का 'जम्मू जो कभी शहर था', क्षमा कौल का 'दर्दपुर', प्रो. हरिकृष्ण कौल का 'व्यथ-व्यथा', मीराकांत का 'एक कोई था, कहीं नहीं सा', मनीषा कुलश्रेष्ठ का 'शिग़ाफ', मधु कांकरिया का 'सूखते चिनार', जयश्री रॉय का 'इकबाल', प्रो. तेज.एन.धर का 'आतंक की दहशत', डा. सुधाकर अदीब का 'बर्फ और अंगारे', मोहन राकेश का 'कांपता हुआ दरिया', रवीन्द्र प्रभात का 'कश्मीर 370 किलोमीटर', आरिफा एविस का 'नाकाबंदी' आदि आलोच्य एवं उल्लेखनीय उपन्यास हैं। इसके साथ ही चंद्रकांता की 'किस्सा गाशकौल', 'एक और परदेश' 'शरगाणत दीनार्त', 'पायथन', 'विदागीत', 'नदी का काम बहना है', 'रानी भाभी', 'सरहदों के नाम', 'नवशीन मुबारक', 'वनवास', 'काली बर्फ', 'आवाज', आशीष कौल की 'वे अड़तालीस घंटे', सुधाकर अदीब की 'जवाब-तलब', संजना कौल की 'वापसी', किरण बख्शी की 'मैनें झील को सांस लेते हुए देखा है' आदि विवेच्य कहानियां हैं। अनूदित

कहानियों में कश्मीरी से अनूदित, 'धत् तेरे की', 'गृहदेवता', 'हृदय में बैठा कसाई', 'उल्टे पांव वापसी', 'अस्पताल से घर तक', डोगरी से अनूदित, 'बलकाक और नोनो', 'दस्तकें', 'धूप-तेजाब', 'अर्थ-वर्क', 'मिनार, दरिया और राजनाथ', 'उत्तर क्या है', 'फिरौती', उर्दू से अनूदित 'मुखबिर' गोजरी से अनूदित 'आदमी नहीं', पंजाबी से अनूदित 'किशनगोपी का लौट आना', 'तफतीश', 'तमाशबीन' एवं 'युद्ध' उल्लेखनीय कहानियाँ हैं जिन्हें शोध में सम्मिलित किया गया है। इनके अतिरिक्त कश्मीर को केंद्र में रखते हुए अन्य उपन्यास एवं कहानियां हो सकती हैं, जो मुझे प्राप्त नहीं हो सकी हैं। शोध प्रबंध की भी अपनी सीमाएं होती हैं जिन्हें ध्यान में रखते हुए उन्हें शोध कार्य में सम्मिलित कर पाना संभव नहीं हो सका है।

यह शोध प्रबंध सात अध्यायों में विभक्त है। 'कश्मीर: समाज, संस्कृति, इतिहास और वर्तमान परिदृश्य' प्रथम अध्याय है। इसमें कश्मीरी समाज, जनजीवन, उनकी आवास सम्बंधी, वेशभूषा, आभूषण, खान-पान, अंधविश्वास जातिबंधन, पर्यटन, उद्योग आदि के विषय में विवरण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही समाज और संस्कृति के अटूट संबंध को स्पष्ट करते हुए सांस्कृतिक अवबोध, धर्म-दर्शन, स्थापत्य, वास्तुकला, सूफीमत के आगमन, भाषा एवं साहित्य मान्य संस्कार, लोककथाएं, लोक गीत एवं लोकनाट्य, सांगीतिक वैभव एवं नृत्यकला आदि के विषय में जानकारी अंकित है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कश्मीर के प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए कश्मीर को प्रभावित करने वाले शासकों एवं घटनाओं का भी संक्षिप्त वर्णन है। कश्मीर समस्या को एक उलझा हुआ समीकरण मानते हुए वर्तमान परिदृश्य में कश्मीर की वैश्विक स्थिति, सामरिक महत्त्व एवं अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति में कश्मीर की भूमिका के विषय में चर्चा की गयी है।

द्वितीय अध्याय 'कश्मीर केंद्रित हिन्दी कथा साहित्य : समीक्षात्मक अवलोकन (विशेष सन्दर्भ: 1990-2020)' के अन्तर्गत चयनित हिन्दी उपन्यासों और विवेच्य हिन्दी मौलिक एवं अनूदित कहानियों की समीक्षा की गयी है।

आलोच्य कथा साहित्य में मानव धर्म, प्रेम, साम्प्रदायिक सौहार्द, सद्भावना, विस्थापन, आतंक आदि मूल उद्देश्यों को भी विवेचित किया गया है। साथ ही कथाकारों का जीवन परिचय भी दिया गया है।

'कश्मीर और कश्मीरियत' इस शोध प्रबंध का तृतीय अध्याय है। कश्मीरियत की अवधारणा एवं उसके सांस्कृतिक संदर्भ को रेखांकित करते हुए समकालीन संदर्भ में इसके रूप को विश्लेषित किया गया है। आतंकवाद ने कश्मीरियत की विशिष्ट पहचान को धूमिल कर दिया है और कट्टरता के रंग में रंगी यह भावना वर्तमान में मात्र राजनीतिक नारा भर बनकर रह गयी है। सांझी संस्कृति के ढहने की यह गाथा मार्मिक है। ललद्यद और नुन्द ऋषि की परम्परा से आकार लेने वाली यह साझी विरासत किस प्रकार विकृत हो गयी?, इस सदियों की आश्वस्ति का भाव कैसे दरारों से भर गया?, इस पर प्रकाश डाला गया है। लोकजीवन एवं लोकसाहित्य के माध्यम से साझी विरासत की मनोरम झलकें प्रस्तुत की गयी हैं। लोकगीत एवं लोककथाएं भी वर्णित हैं। सहजीवन की यह भावना रीतियों, परंपराओं, पर्व, त्यौहारों रूढ़ियों, बाह्याडम्बरों, वेशभूषा, खानपान आदि के हवाले से अभिव्यक्त की गयी है। साथ ही उन संभावनाओं पर भी विचार किया गया है जिसके द्वारा कश्मीरियत में पुनः जान फूंकी जा सके और यह विरासत जीवन्त हो जाए।

चतुर्थ अध्याय 'निर्वासन की त्रासदी एवं सांस्कृतिक संघर्ष' है। इस अध्याय में विस्थापन के स्वरूप एवं इसके उत्तरदायी कारणों पर चर्चा की गयी है। हिन्दू-मुस्लिम वर्गों में पृथकतावाद एवं साम्प्रदायिकता के कारण चारों ओर हिंसा क्रूरता एवं अराजकता का बोलबाला हो गया। आतंकवाद का सबसे निर्मम रूप नब्बे के दशक में देखा गया जब कश्मीरी पंडित समुदाय को जबरन कश्मीर से विस्थापित किया गया। कश्मीर की सांझी सांस्कृतिक विरासत को निष्प्राण कर दिया गया और तत्कालीन रक्तरंजित इतिहास इसका गवाह है। वह दौर आज भी जारी है और अपनी जन्मभूमि को वापस न लौट पाने की पीड़ा उनके मन में बनी हुयी है। विस्थापित होकर देश के विभिन्न नगरों में पलायन की स्थितियों को यथार्थ

के धरातल पर उजागर किया गया है। आलोच्य अध्याय में विस्थापन की परिस्थितियों, वर्ष 1990 के विस्थापन एवं उससे पूर्व हुए विस्थापन, निर्वासन की अंतहीन पीड़ा, सांस्कृतिक विलोपन की आशंका आदि को भी व्यक्त किया गया है। इसके साथ ही निर्वासितों हेतु पुनर्स्थापन नीतियों की भूमिका एवं उसके प्रभावी कार्यान्वयन के जोड़-घटाव के विषय में भी जिक्र किया गया है। उन सभी संस्थाओं विशेषकर पनुन कश्मीर के विषय में बात की गई है जो पुनर्स्थापन का उद्देश्य लिए कार्यरत हैं।

पंचम अध्याय 'सामयिक परिदृश्य और हिन्दी कथा साहित्य में कश्मीर सम्बंधी ज्वलंत मुद्दे' है। आलोच्य अध्याय में कश्मीर से जुड़े विभिन्न गंभीर मुद्दों पर चिंतन-मनन प्रस्तुत है। वर्तमान में आतंकवाद कश्मीर की एक बड़ी समस्या बन चुका है। इसे एक हथियार के रूप में अपनाया जा रहा है। यह किसी विशेष राजनीतिक विचारधारा या मजहबी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए की गयी एक प्रकार की हिंसात्मक कार्रवाई है। इस अध्याय में कश्मीर में आतंकवाद के आरंभ, चुनावों में धांधली के कारण इसके मजबूत होने तथा तत्पश्चात् निर्मम एवं क्रूर आतंकवाद के दौर को चित्रित किया गया है। कश्मीर में इस समस्या के पीछे उत्तरदायी कारणों, कश्मीरियों पर इसके प्रभाव एवं समाधान के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में आतंकवादियों के समर्पण और पुनर्वास से जुड़ी नीतियों की भूमिका भी चर्चित है।

कश्मीर हमेशा से मानवाधिकारों के हनन से जुड़े मुद्दों के कारण अंतरराष्ट्रीय पटल पर चिन्हित किया जाता रहा है। मानव हितों की रक्षा पर निरन्तर आघात होता रहा है, वह चाहे सामूहिक हत्याएं, बलात अपहरण, बलात्कार, यौन हिंसा, अभिव्यक्ति पर रोक हो या फिर सैन्यबलों द्वारा कश्मीरियों की जबरन तलाशी, गिरफ्तारी या उन्हें गायब कर देने के आरोप भी हैं। सैन्यबल भी अपने मानवाधिकार स्पष्ट करने की मांग करते रहे हैं। दूसरी ओर विस्थापित कश्मीरियों को लेकर मानवाधिकार संगठन प्राय: चुप्पी साध लेते हैं। शोध प्रबंध में कश्मीर में मानवाधिकार के विविध आयामों को उजागर किया गया है। कश्मीर घाटी में

रह रहे समुदायों की भी अपनी मूलभूत आवश्यकताएं हैं जिनकी पूर्ति संतोषजनक रूप से नहीं हो रही है। बुनियादी जरूरतों से वंचित इस समुदाय की आवश्यकता पूर्ति में आने वाली बाधाओं के विषय में जिक्र किया गया है। न्यूनतम आर्थिक सुरक्षा, उद्योग एवं स्वास्थ्य की सुविधाओं के पर्याप्त उपलब्ध न हो पाने की चिन्ता व्यक्त की गयी है। युवा किसी भी राष्ट्र की निधि हैं। समकालीन परिदृश्य में कश्मीरी युवा भ्रमित एवं आक्रोश की स्थिति में हैं। राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व का अभाव एवं भविष्य के प्रति आशंका उन्हें अंधे कुएं में धकेल रही है। जिसका परिणाम युवाओं में बढ़ते डिप्रेसन एवं ड्रग्स की लत के रूप में देखा जा सकता है। हालांकि बीते कुछ वर्षों में सुधार अवश्य हुआ है परंतु स्थिति अभी भी विपरीत है। इस उपशीर्षक के अंतर्गत कश्मीरी युवाओं के जीवन की स्थिति, भटकावों, रोजगार की समस्याओं, आर्मी व आतंक के बीच पिसते जीवन तथा इससे उबर पाने की संभावनाओं के विषय में विचार व्यक्त किए गए हैं।

कश्मीर में तैनात सुरक्षाबल वहाँ अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। नित आयी नवीन चुनौतियों का सामना कर रहे ये बल मुस्तैदी से तैनात हैं। स्थिति कमोबेश नियंत्रण में है। शोध प्रबंध में सुरक्षा बलों की कार्यप्रणाली, चुनौतियों एवं मानसिक स्थिति का चित्रण किया गया है। मीडिया की भूमिका कश्मीर मसले में महत्त्वपूर्ण रही है। स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मीडिया लगातार कश्मीर को अपने-अपने नजरिए से परोसती आयी है। कश्मीर में मीडिया की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकती है जब वह निष्पक्ष होकर रहे। पर्यावरणीय अस्थिरता वर्तमान में कश्मीर की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है जिससे निजात पाने के लिए संरक्षण के प्रयासों का होना बेहद जरूरी प्रतीत होता है। सशस्त्र संघर्ष, अवैध कटाव अनियंत्रित रूप से प्राकृतिक संसाधनों के दोहन, अतिक्रमण आदि चिंता का विषय हैं। शोध प्रबंध में इन कारणों एवं इससे निदान प्राप्ति के प्रभावी नए प्लानों, प्रोग्रामों एवं समाधानों के बारे में बातचीत की गयी है। साथ ही आर्थिक विकास के अवसरों की मांग को लेकर कश्मीरी अर्थव्यवस्था के मजबूत स्तंभों एवं भावी संभावनाओं का भी विश्लेषण किया गया है। अनुच्छेद 370 का

इतिहास, स्वरूप एवं निरस्तीकरण के उपरांत पड़ने वाले प्रभावों पर चर्चा की गयी है।

षष्ठ अध्याय 'कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य में स्त्री' है। उक्त अध्याय में कश्मीरी समाज में स्त्री जीवन की चुनौतियों का जिक्र है और आतंकवाद तथा विस्थापन की विपरीत परिस्थितियों के स्त्रीमानस पर पड़ने वाले अन्तहीन प्रभाव को अंकित किया गया है। कश्मीर में स्त्री सशक्तीकरण से जुड़े प्रश्नों एवं नवीन संभावनाओं के विषय में भी जानकारी है।

शोध प्रबंध का सप्तम् और अंतिम अध्याय 'विवेच्य कथा साहित्य का शिल्पगत अनुशीलन' है। इस अध्याय के अन्तर्गत चयनित उपन्यासों एवं कहानियों के कथ्य तथा शिल्प का अवलोकन प्रस्तुत किया गया है तथा उक्त स्तरों पर आयी नवीनता को भी रेखांकित करने का प्रयास है। अतः कश्मीर केन्द्रित कथा साहित्य में कश्मीर से जुड़े विविध आयामों को चित्रित किया गया है। कश्मीर समस्या से जुड़े विविध कारणों के यथार्थ अंकन के साथ सौहार्द, प्रेम एवं मानवीय जिजीविषा के विश्वसनीय चित्रण सहज प्रभावी हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य से पूरित और सांझी सांस्कृतिक विरासत से पल्लवित कश्मीरी संस्कृति की मनोरम झलकें उपलब्ध हैं। स्पष्ट है कि समकालीन हिन्दी कथाकार कश्मीर को बहुआयामी फलक पर चित्रित करने, कश्मीरी विस्थापितों की पीड़ा, वहाँ की समस्याओं को अभिव्यक्त करने और कश्मीरी समाज के प्रति चिन्ता, मानवीयता और लोकतांत्रिक मूल्यों से सहज परिचालित है। कथाकारों की उदार और अन्वेषी दृष्टि कश्मीर को समग्रता से प्रस्तुत करने में सहायक रही है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ और सहायक-ग्रन्थ सूची

(क) आधार ग्रन्थ

1. चंद्रकांता- यहाँ वितस्ता बहती है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011

2. चंद्रकांता- कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2021

3. संजना कौल- पाषाण युग, आधार प्रकाशन प्रा॰ लि0, पंचकूला, प्रथम संस्करण 2003

4. डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद- कश्मीर की बेटी, सत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

5. पद्मा सचदेव- जम्मू जो कभी शहर था,भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, तीसरा संस्करण 2012

6. क्षमा कौल- दर्दपुर, प्रलेक प्रकाशन, मुंबई, पेपरबैक संस्करण, 2022

7. प्रो. हरिकृष्ण कौल- व्यथ-व्यथा, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005

8. मीरा कांत- एक कोई था कहीं नहीं-सा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

9. मनीषा कुलश्रेष्ठ- शिगाफ़, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पहला संस्करण 2012

10. मधु कांकरिया- सूखते चिनार, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2018

11. जयश्री रॉय- इक़बाल, आधार प्रकाशन प्रा. लि., पंचकूला, प्रथम पेपरबैक संस्करण 2014

12. तेज एन. धर- आतंक की दहशत, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018

13. डॉ. सुधाकर अदीब- बर्फ और अंगारे, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2020

14. मोहन राकेश- काँपता हुआ दरिया, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2020

15. रवीन्द्र प्रभात- कश्मीर 370 किलोमीटर, नोशन प्रेस, चेन्नई, प्रथम संस्करण 2020

16. आरिफा एविस- नाकाबन्दी, डायमंड बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2020

17. चंद्रकांता- कोठे पर कागा (कहानी संग्रह), अमन प्रकाशन, कानपुर, द्वितीय संस्करण 2017

18. चंद्रकांता- कथानगर वादी ए कश्मीर, अमन प्रकाशन, कानपुर, तृतीय संस्करण 2018

19. चंद्रकांता- काली बर्फ, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2013

20. चंद्रकांता- चंद्रकांता की लोकप्रिय कहानियां, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015

21. चंद्रकांता- ओ सोनकिसरी, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, 1991

22. चन्द्रकान्ता- सूरज उगने तक, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1994

23. चन्द्रकान्ता- बदलते हालत में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002

24. संजना कौल- काठ की मछलियां, आधार प्रकाशन प्रा. लि., पंचकूला, 2008

(ख) <u>सहायक ग्रंथ</u>

1. अशोक कुमार पांडेय- कश्मीरनामा : इतिहास और समकाल, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2019

2. अशोक कुमार पांडेय- कश्मीर और कश्मीरी पंडित, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2020

3. रतनलाल शांत- समय के तेवर (साहित्य के सामयिक सरोकार), नीहार प्रकाशन, जम्मू, प्रथम संस्करण 2007

4. सं. राजकिशोर- आज के प्रश्न-5 (कश्मीर का भविष्य), वाणी प्रकाशन, नयी, द्वितीय संस्करण 1996

5. सं. शिप्रा किरण, प्रांजल संजीव कुमार- वक़्त की आवाज (सुलगता कश्मीर. सिकुड़ता लोकतंत्र), लेफ्ट वर्ड बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2020

6. चन्द्रकान्ता- प्रश्नों के दायरे में, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2015

7. मानिक लाल गुप्त- कश्मीर समस्या : एक विवेचनात्मक अध्ययन, अटलांटिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2019

8. रामस्वरूप चतुर्वेदी- हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, 2018

9. ओमप्रकाश मंत्री- कश्मीर और उसके लोग, लाला रुख प्रकाशन, श्रीनगर, 1956

10. मोहन कृष्ण दर- मनोरम कश्मीर, आत्माराम एण्ड संज, दिल्ली, 1958

11. डॉ. मुंशीराम शर्मा- भारतीय साधना और सूर साहित्य, आचार्य शुक्ल साधना सदन, कानपुर, 2010

12. रमेशचंद्र- भारत के ऐतिहासिक स्थल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2016

13. गोपीनाथ श्रीवास्तव- कश्मीर : समस्या एवं पृष्ठभूमि, राजपाल एंड संज, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1969

14. गौरीनाथ रस्तोगी- हमारा कश्मीर, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991

15. अनुपम त्यागी- कश्मीर : एक कसौटी, आकाशदीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001

16. कुलदीप चंद्र अग्निहोत्री- जम्मू कश्मीर की अनकही कहानी, प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013

17. सं. आशुतोष- जम्मू कश्मीर : तथ्य, समस्याएं और समाधान, जम्मू कश्मीर अध्ययन केन्द्र करगिल भवन, अम्बाला कॉम्प्लेक्स, जम्मू, प्रथम संस्करण, 2011

<u>अंग्रेजी पुस्तकें</u>-

1. जगमोहन- माई फ्रोजन टर्बुलेन्स इन कश्मीर, अलाइड पब्लिकेशन प्रा० लि०, बारहवां संस्करण 2019

2. बशीर अशद- कश्मीर बियांड आर्टिकल 370, पेंटागन प्रेस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2020

3. क्रिस्टोफर स्नोदेन-कश्मीर द अनरिटेन हिस्ट्री, हार्पर कॉलिन्स इंडिया, गुरुग्राम, 2013

4. एम. एस. रत्नपारखी- कश्मीर प्रॉब्लम एंड इट्स सॉल्यूशन, अटलांटिक पब्लिशर्स, नयी दिल्ली

5. अर्जननाथ चाकू, इंदर के. चाकू- द कश्मीर स्टोरी थ्रू द एजेज, वितस्ता पब्लिकेशन, नई दिल्ली

6. संत कुमार शर्मा- आर्टिकल 370 डिसीट एंड फ्रॉडयूलेंट कम्यूनिकेशन, माखनलाल चतुर्वेदी नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ जनर्लिज्म एण्ड कम्यूनिकेशन, भोपाल

7. संजर नाहर विद प्रशांत तालनिकर-बॉन्डिंग विद् कश्मीर द सरहद स्टोरी, चिनार पब्लिशर्स, पुणे, द्वितीय संस्करण 2015

8. सैयद तसदीक हुसैन- कश्मीर इन्गिमा इंटॅगल्ड स्टैण्स ए कश्मीरी व्यू प्वाइंट, गुलशन बुक्स, श्रीनगर

9. एडि. आदित्य तिवारी- कश्मीर ए यंग थिंकर्स पर्सपेक्टिव, पेंटागन पेस, नई दिल्ली

10. संजय मिश्रा- कल्चरल हेरिटेज ऑफ जम्मू एंड कश्मीर, अंश राजूकेशन, दिल्ली

शब्दकोश

1. हिन्दी विश्वकोश खण्ड 2 : सम्पादक नगेन्द्र बसु

2. हिन्दी शब्द सागर : सम्पादक श्याम सुन्दरदास

3. हिन्दी साहित्य ज्ञानकोश : सम्पादक शंभुनाथ

4. बृहत प्रमाणिक हिंदीकोश : संपादक आचार्य रामचंद वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

पत्रिकाएँ

बहुवचन (अंक 64-65-66)

साहित्यभारती (विस्थापन विशेषांक)

प्रगतिशील वसुधा (विस्थापन विशेषांक)

अनुसंधान (कश्मीर पर केंद्रित उपन्यास)

बहुरि नहिं आवना

इंडिया टूडे

समीक्षा

यूनियन धारा (जम्मू-कश्मीर-लेह विशेषांक)

संस्कृति (कश्मीर विशेषांक)

अकार (अंक 29)

जम्मू-कश्मीर अपडेट (अंक VIII)

आजकल

दैनिक जागरण : आत्मकथात्मक संस्मरण, 8 अप्रैल 2005

प्रकाशित शोध आलेख

OUR PUBLICATIONS
Globus Press
448, Pocket-V, Mayur Vihar, Phase-I, Delhi-110091 (INDIA)
Ph.: 011-22753916
ISSN 0975-119X
UGC-CARE GROUP I LISTED
वर्ष 13 अंक 2 मार्च-अप्रैल 2021
दृष्टिकोण
कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका
India's Leading Refereed Hindi Language Journal
IMPACT FACTOR : 5.051

OUR PUBLICATIONS
Globus Press
448, Pocket-V, Mayur Vihar, Phase-I, Delhi-110091 (INDIA)
Ph.: 011-22753916
OUR PUBLICATIONS
Globus Press
448, Pocket-V, Mayur Vihar, Phase-I, Delhi-110091 (INDIA)
Ph.: 011-22753916

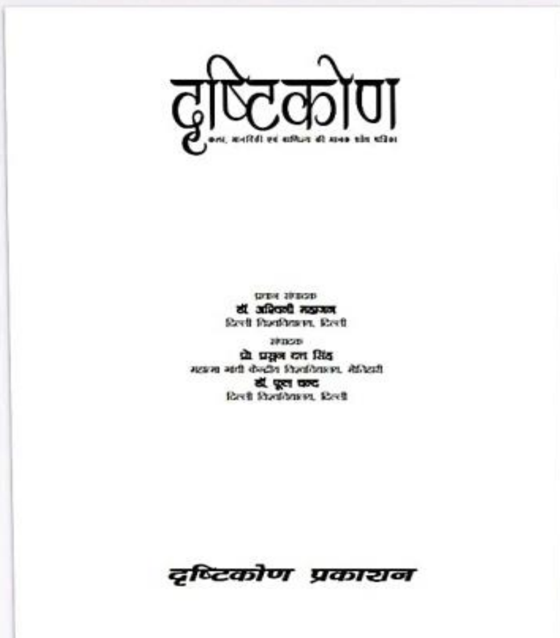
दृष्टिकोण
दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 13 अंक : 2 ❑ मार्च-अप्रैल, 2021

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ओंटारियो
डॉ. दया शंकर तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर
डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची
डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका
डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना
डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा
डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
डॉ. अमर कान्त सिंह
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
डॉ. ऋतेश भारद्वाज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. स्वदेश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. विजय प्रताप सिंह
छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

संपादकीय सम्पर्कः

448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091
फोन : 011-22753916, 40564514, 35522994 Mobile: 9710050610, 9810050610
e-mail : editorialindia@yahoo.com; editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com
Website : www.ugc-care-drishtikon.com
©Editorial India
Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोटः पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

वर्तमान परिदृश्य में शिक्षा का बदलता स्वरूप: एक अध्ययन–डॉ० संध्या पुजारी 5615
राधेश्याम शुक्ल के नवगीतों में अभिव्यक्त मानवीय मूल्य–अनुपमा 5620
माध्यमिक स्तर के छात्राओं की भाषा प्रवीणता पर एक अध्ययन–कुमारी शकुंतला; डॉ० सुमानलता सक्सेना 5626
भारतीय सेवा क्षेत्र-चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएं–मोनिका कुमारी 5631
प्रेमचन्द के कथा साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप–डॉ० विश्वप्रभा 5635
आदर्शवाद और शिक्षा–डॉ० ललित मोहन शर्मा; श्रीमती लक्ष्मी सक्सेना 5638
बनारसी प्रसाद भोजपुरी की कहानियों के समसामायिक मूल्य–सियाराम मुखिया; प्रो० चन्द्रभानु प्रसाद सिंह 5644
आजादी के बाद राष्ट्र निर्माण के आयाम और चुनौतियां–डॉ० दिवाकर प्रसाद 5647
निराला काल की कविताओं में मुक्तिगान–डॉ० दयानन्द मसाजी शास्त्री 5651
"सोशल मीडिया और कंप्यूटर नवाचार का बच्चों पर प्रभाव"–डॉ० अतुल कुमार दुबे 5654
युद्ध की विभीषिका और महाप्रस्थान खंडकाव्य–डॉ० प्रणीता 5657
भारतीय महिला सशक्तिकरण के लिए डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के योगदान पर एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० साक्षी मेहता; संगीता सिंह 5661
ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भारत-पाक सम्बन्ध: एक अध्ययन–दीपिका कुमारी; डॉ० घनश्याम राय 5669
उराँव जनजाति मे शिक्षा की समस्या का अध्ययन: छत्तीसगढ़ राज्य के कोरिया जिले के विशेष सदंर्भ में–किशोर मिन्ज; डॉ० सुशीला एक्का 5673
भगवद-गीता का उपयोग करके स्मार्ट आईसीटी समाधान–अखिलेश सी. श्रीवास्तव; जयश्री जैन; शशिधर वी. गोविंदराजू 5677
भारत का सांस्कृतिक कूटनीति: सॉफ्ट पावर के सन्दर्भ में एक अध्ययन–अमित कुमार दुबे 5682
आत्मनिर्भर भारत में सहकारिता का योगदान–आशुतोष कुमार 5686
माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के प्रति जागरूकता के अध्ययन–ज्योति कुमारी 5691
भारत और चीन की बढ़ती ऊर्जा आवश्यकताएं: दोनों के बीच प्रतिस्पर्धा की अन्य शैली का एक अध्ययन–मधु सूदन कुमार 5695
लेखक कलाकार का जीवन और साहित्य–डॉ० मोनिका सिन्हा 5701
बिहार राज्य में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का बदलता स्वरूप–शैलेश कुमार 5704
नवउदारवाद और भारतीय शासनतंत्र–शिवानी कुमारी 5708
महिला सशक्तिकरण में सरकारी योजनाओं एवं स्वयं सहायता समूहों की भूमिका: (बिहार के संदर्भ में)–विभा कुमारी 5712
आधी सदी में 'राष्ट्रीय रंगमंच'–डॉ० असित विश्वास 5716
ग्रामीण सीमांत कृषकों के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा लागू योजनाओं का अध्ययन–अल्का डडसेना; डॉ० सपना शर्मा सारस्वत 5724
बिहार की राजनीति में महिला आंदोलन, 1990-2020–डॉ० मुकुल बिहारी वर्मा; संदीप कुमार 5731
योग एवं समग्र स्वास्थ्य–युद्धवीर 5735
भारत एवं पकिस्तान के संबंधों के सन्दर्भ में पंडित दीनदयाल उपाध्याय एवं डॉ० भीमराव अम्बेडकर का दृष्टिकोण–डॉ० जय कुमार झा; अनूप मिश्र 5739
ऋग्वेदकालीन समाजिक व्यवस्था–प्रो० प्रशान्त श्रीवास्तव; आनन्द सिंह 5743
"कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नारी जीवन के विविध रूप"–नीलम वर्मा; डॉ० फैयाज अहमद 5746
किशोर-किशोरियों के पोषण के निम्न स्तर का इनके जीवन शैली पर प्रभाव: एक अध्ययन–ज्योति कुमारी 5750
भारतीय भौगोलिक क्षेत्र मे ताम्रनिधि पुरस्थलों का संक्षिप्त विवरण–प्रभाशिनी शुक्ला 5754
अमवारी सत्याग्रह और राहुल सांकृत्यायन–विवेक कुमार 'अमर'; प्रो० मो० नैयर आजम 5756
रायपुर एवं बिलासपुर जिले के बाल संप्रेक्षण गृहों का समीक्षात्मक सर्वेक्षण (छ.ग.)–शैलेश कुमार पाण्डेय 5758
कोरोना काल और साहित्य–डॉ० नमिता जैन 5763
मलिन बस्तियों में शिक्षा का अभाव–विशाल कुमार सिंह 5765
राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान प्रणाली, योग एवं आयुर्वेद–डॉ० अनुराग पाण्डेय; डॉ० अरुण कुमार द्विवेदी; राहुल शर्मा 5768
भारतीय चित्रकला का ऐतिहासिक विकास-एक दृष्टिकोण–पूजा वर्मा 5773
स्त्री चिंतन की परिप्रेक्ष में डॉ. ज्ञानिदेवी की कहानियाँ–डॉ० रत्ना सदाशिव गौडा 5776

श्रीमद् भगवद् गीता में जीवन प्रबन्धन–डॉ० सीमा राठौर 5778
शान्ति शिक्षा की उपादेयता: एक अध्ययन–पूनम भाटिया 5782
संस्कृत काव्यशास्त्र में दोष विवेचन–डॉ० हेमवती नंदन पनेरू 5787
शब्दभेदी में समकालीन जीवन का यथार्थ–आरती देवी; डॉ० विनय कुमार शुक्ल 5792
कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य में चित्रित कश्मीरी युवा पीढ़ी: सत्ता, आतंक और अनिश्चितता के बीच संघर्ष–सौम्या वर्मा 5795

सौम्या वर्मा

शोधार्थी, हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, तेलंगाना

शोध-सार

किसी भी राष्ट्र के युवा ऐसी निधि है जो देश के भविष्य को गढ़ते हैं। यह पीढ़ी, कल की आशा है। भविष्य में होने वाले सामाजिक एंव आर्थिक परिवर्तनों की डोर इसी पीढ़ी के हाथों में होती है। राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवेश की गुणवता बढ़ाने हेतु युवाओं की नवोन्मेषी, सोच और सहभागिता बहुत महत्वपूर्ण हैं। कश्मीरी युवा पीढ़ी एक अनिश्चितता के दौर में है और अधिकांश युवा भटकाव की स्थिति में। सत्ता, आतंक और राष्ट्रीयता के पाटों के बीच पिसता यह युवा प्रतिनिधित्व के अवसरों की कमी को महसूस कर रहा है। उनका जीवन क्रोध, असंतोष और लाचारी की भावना से पीड़ित है। वर्तमान में वे जबरदस्त तनाव का सामना कर रहे हैं जिनसे उन्हें निजात दिलाना अति आवश्यक है। आतंकवाद के प्रति बढ़ता रुझान, ड्रग्स की भरमार, सत्ता के प्रति प्रतिरोध की भावना आदि उनमें एक परायेपन का भाव पैदा कर रही हैं। कश्मीर केंद्रित हिंदी कथा साहित्य में कश्मीरी युवा पीढ़ी के संघर्ष को रेखांकित किया गया है तथा उनकी विचलित मनोस्थिति की व्यथा-कथा कही गयी है। कश्मीर में युवाओं की वास्तविक स्थिति को समझने की दृष्टि से हिंदी के उपन्यासों यहाँ वितस्ता बहती है 'कथा सतीसर (चंद्रकांता)', 'पाषाण युग (संजना कौल), 'दर्दपुर (क्षमा कौल)', 'व्यथ-व्यथा (हरिकृष्ण कौल)', 'एक कोई था कहीं नही सा (मीराकांत)', 'शिगाफ (मनीषा कुलश्रेष्ठ)', 'इकबाल (जयश्री रॉय)' आदि एंव कहानी संग्रह 'काली बर्फ (चन्द्रकान्ता)', 'कथानगर (चन्द्रकान्ता)', 'कहूँ किससे मैं (संजना कौल)', 'जवाब-तलब (सुधाकर अदीब)' आदि महत्वपूर्ण हैं। कथाकार युवा पीढ़ी से जुड़े प्रश्नों से टकराकर पुनरींक्षण करता है।

बीज शब्द- कश्मीरी युवा, आतंकवाद, कट्टरपंथ, हिंसा, आक्रोश, प्रतिरोध, प्रतिनिधित्व, अनिश्चितता, सत्ता-दमन, मनोरोग, ड्रग्स, रोजगार, अस्मिता, राष्ट्रीयता, निराशा आदि।

मूल आलेख-

कश्मीरी युवा एक प्रतिकूल माहौल में पले-बढ़े हैं। लगातार बदल रहे सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य, हिंसक घटनाओं, आतंकवाद, सत्ता के क्रूर दमन और प्रतिनिधित्व के अभाव ने उन्हें कट्टरपंथी गतिविधियों में शामिल होने की ओर प्रेरित किया। राष्ट्रीय एकता और अखंडता उनकी संवेदना की परिधि के बाहर के विषय हो गये। एक ऐसी पीढ़ी जो राष्ट्र को विकास की ऊंचाइयां दे सकती है, जिनका जुनून, साहस और ताकत सही अवसर मिलने पर असम्भव को संभव बना सकता है, वे आज स्वंय को अपने राष्ट्र, अपने भारत से कटा हुआ महसूस कर रहे हैं। कश्मीरी युवाओं के जीवन और उनकी मनोस्थिति को समझकर ही उन्हें भारत की मुख्यधारा से जोड़ा जा सकता है। कश्मीरी युवा पीढ़ी का विकास ही वह नियति है जो इस संघर्ष से निजात दिला सकती है। "सुखी जीवन की इच्छा स्वाभाविक है। मनुष्य की गरिमा के लिए भी यह आवश्यक है। इसके अभाव में असन्तोष, कुण्ठा और आक्रोश उत्पन्न होते है। कश्मीर की युवा पीढ़ी की मनोदशा भी ऐसी ही है। अपने दैन्य और पराधीनता से छुटकारा पाने के लिए वे आन्दोलन में शामिल होते हैं।"[1]

कश्मीरी युवाओं ने शांतिपूर्ण दौर शायद ही कभी देखा हो। अवसाद से पीड़ित इस पीढ़ी को एक तटस्थ नजरिए से देखने पर ही उनकी स्थिति को समझा जा सकता है। युवा कश्मीर में संपर्क सेवाओं के सुचारू रूप से न चलने, आमदनी, बगैर समुचित स्वास्थ्य सेवाओं आदि के जीवन जीने को विवश हैं। लगातार बढ़ रही हिंसक घटनाओं ने उन्हें मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रभावित किया है, "वयस्क आबादी के 58 प्रतिशत लोगों ने ऐसी स्थिति देखी या महसूस की है जिनसे उनको सदमा लगा है। उस वक्त 7 प्रतिशत की आबादी में पोस्ट-ट्रॉमैटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर प्रचलित था और 19 प्रतिशत लोग अवसाद का शिकार थे।"[2]

कश्मीर की इन विकट परिस्थितियों में वहां का युवा तेजी से औषधिक अफीम के इस्तेमाल का आदी हुआ है। अवसाद उनके मनों में घर कर गया है और ऐसी स्थिति में वे भयानक मानसिक दर्द से गुजर रहे हैं। विगत दो दशकों में अधिकांश कश्मीरी युवा ड्रग्स का लगातार प्रयोग कर रहे हैं। ड्रग्स की सप्लाई में भी बढ़ोत्तरी हुयी है। इस स्थिति पर डिजास्टर साइकियाट्री के जानकार डॉ- मुश्ताक- ए- मरगूब के अनुसार, "आबादी का 3-8 प्रतिशत हिस्सा आज अफीम का इस्तेमाल करती है। अफीम का इस्तेमाल ज्यादातर इसलिए होता था ताकि लोगों को नींद आ सके या उन्हें अपने मानसिक दर्द से थोड़ी देर के लिए राहत मिल सके।"[3] इस प्रकार कश्मीर का युवा वर्ग भटकाव के रास्ते पर है और उनमें बढ़ती नशे की लत उन्हें शारीरिक और मानसिक तौर पर कमजोर बना रही है।

बढ़ रही हिंसक घटनाओं ने उन्हें मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रभावित किया है, "वयस्क आबादी के 58 प्रतिशत लोगों ने ऐसी स्थिति देखी या महसूस की है जिनसे उनको सदमा लगा है। उस वक्त 7 प्रतिशत की आबादी में पोस्ट-ट्रॉमैटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर प्रचलित था और 19 प्रतिशत लोग अवसाद का शिकार थे।"[2]

कश्मीर की इन विकट परिस्थितियों में वहां का युवा तेजी से औषधिक अफीम के इस्तेमाल का आदी हुआ है। अवसाद उनके मनों में घर कर गया है और ऐसी स्थिति में वे भयानक मानसिक दर्द से गुजर रहे हैं। विगत दो दशकों में अधिकांश कश्मीरी युवा ड्रग्स का लगातार प्रयोग कर रहे हैं। ड्रग्स की सप्लाई में भी बढ़ोत्तरी हुयी है। इस स्थिति पर डिजास्टर साइकियाट्री के जानकार डॉ- मुश्ताक- ए- मरगूब के अनुसार, "आबादी का 3-8 प्रतिशत हिस्सा आज अफीम का इस्तेमाल करती है। अफीम का इस्तेमाल ज्यादातर इसलिए होता था ताकि लोगों को नींद आ सके या उन्हें अपने मानसिक दर्द से थोड़ी देर के लिए राहत मिल सके।"[3] इस प्रकार कश्मीर का युवा वर्ग भटकाव के रास्ते पर है और उनमें बढ़ती नशे की लत उन्हें शारीरिक और मानसिक तौर पर कमजोर बना रही है।

कश्मीर में वर्तमान पीढ़ी के पास अपार संभावनाएँ हैं परंतु वह भयावह भ्रम से जूझ रही है। उनके जेहन में जो गुस्सा है उसके साथ कोई आन्दोलन एक सकारात्मक निर्णय तक पहुंचने में असफल प्रतीत होता है। "शौकत कहते हैं पहली पीढ़ी को नेतृत्व में विश्वास था, दूसरी पीढ़ी नेतृत्व की तलाश में थी और तीसरी पीढ़ी नेतृत्व चाहती ही नहीं।"[4] ऐसे में देश और कश्मीरी युवाओं के बीच दरार से कहीं ज्यादा चौड़ी खाई को पाटना बहुत मुश्किल है। जिस तीसरी पीढ़ी के हाथों में नेतृत्व है वह अपने से पहले की पीढ़ियों से बिल्कुल अप्रभावित है। कश्मीर नीति के तहत कश्मीरी युवाओं की वर्तमान पीढ़ी के लिए सुअवसर की बात करते हुए बलराज पुरी लिखते हैं, "लेकिन वर्तमान पीढ़ी के पास, अगर वह चाहे तो, पिछलीपीढ़ी की असफलताओं समेत उसके विशाल अनुभव से बहुत कुछ सीखने का मौका भी है। वह विश्व के दूसरे हिस्सों में राष्ट्रों के निर्माण और विघटन, जातीय आस्मिता के आविर्भाव और आवेग तथा स्वतंत्रता के लिए सार्वभौमिक उफान के अनुभवों से भी सीख सकती है।"[5]

कश्मीर का युवा आतंक के घेरे में है। इसके पीछे जहाँ कहीं, उनका निम्न आर्थिक स्तर उत्तरदायी है वहीं लगातार आतंकी गिरोहों और अलगाववादी नेताओं द्वारा किया जाने ब्रेनवॉश उन्हें गलत दिशा में ले जा रहा है। अपने आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने या प्रायः अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को न पूरा कर पाने में विवश ये युवा आमदनी के लिए आतंक का रास्ता चुनते हैं। आतंकी गिरोह उनके परिवार को आंशिक धनराशि की मदद कर अपने गुट में शामिल कर लेते हैं और इसके एवज में मनमाने ढंग से हिंसा हेतु प्रेरित करते हैं। लालच देकर उनके घरों में तहखानों की व्यवस्था कराते हैं तथा अपनी आवश्यकतानुसार भोजन और आवास हेतु इन ठिकानों का प्रयोग करते हैं। साथ ही इन्हीं युवाओं के घरों की स्त्रियों के साथ छेड़छाड़ एवं यौन हिंसा की भी घटनाएं होती हैं। मधु कांकरिया रचित उपन्यास 'सूखते चिनार' में मेजर संदीप कश्मीर में हमीद नामक एक ऐसे ही गरीब युवा से मिलते हैं जो अपनी बुरी हालत से निजात पाने के लिए आतंकियों की मदद करता है, "भूख सूर्य से भी तेज थी जिसका सामना यथार्थ की आग में झुलसा हमीद नहीं कर सका। मेरी एक नहीं सुनी। वरन मुझे ही समझाया कि पुलिस को जरा भी शक नहीं होगा और यूँ भी गाहे-बगाहे आतंकी हमारे यहाँ आकर ठहरकर हमें परेशान कर ही रहे थे, क्या हर्ज यदि साथ में नियमित रूप से कुछ पैसे भी हाथ में आ जाएँ। भूख का इतना डरावना और दयनीय रूप मैंने पहले कभी नहीं देखा था।"[6]

कश्मीर घाटी में नौजवानों को लगातार गुमराह किया जा रहा है। उनके अपरिपक्व दिमागों में राष्ट्र, सैन्यबल और विपरीत धर्म वाले लोगों के प्रति विषबेल बोयी जा रही है। पाकिस्तान प्रेरित आतंकवाद और जिया-उल-हक का ऑपरेशन टोपैक इसी उद्देश्य से कश्मीर में अलगाववादी गतिविधियों की प्रेरणा बने हुए हैं। राष्ट्र और सैन्यबलों को शत्रु के रूप में देखना, इस्लाम धर्म को न मानने वाले लोगों को काफिर करार देना और काफिरों को मारने से जन्नत मिलने के अनेकों किस्से उनके जेहन में डाले गये। मदरसों में इस्लाम की कट्टर तालीमें दी जाने लगीं। 'कथा सतीसर' उपन्यास में अर्जुन अपने पिता से प्रश्न करता है, "यह मस्जिदों में कैसे मदरसे खुले हैं, जो छोटे बच्चों को इस्लाम के नाम पर लड़ने की बातें सिखाते हैं? कश्मीर, भारत, चीन, ईरान से घिरा है, सिखाकर भारत से अलग होने की बात जेहन में भर देते हैं।"[7] बाल्यावस्था से ही ऐसे वातावरण और तालीम का आदी कश्मीरी युवा मन कितना विषाक्त कर दिया जाता है, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। ऐसे में कश्मीरी मदरसों व शिक्षा-संस्थाओं में दी जा रही साम्प्रदायिक शिक्षाएँ भी काफी हद तक जिम्मेदार हैं।

कश्मीर में अलगाववाद को फैलाने वाले नेता अवसर पाकर कश्मीरी युवाओं को भटका कर अपना स्वार्थ भुना लेते हैं। पाकिस्तान के प्रति उनके दिलों में उम्मीद की किरण जगा वे सैन्यबलों पर पत्थरबाजी करने पर लड़कों को ईनाम देते हैं। अलगाववादी नेता कश्मीरी युवाओं को भारतीय सैन्यबलों के साथ पथराव एवं हिंसक गतिविधियों हेतु प्रेरित करते हैं जिससे कश्मीर का अमन भंग किया जा सके और अलगाव की लहर और मजबूती से सौहार्द को ध्वंस कर सकें। 'बर्फ और अंगारे' उपन्यास में सुधाकर अदीब लिखते हैं, "अलगाववादी नेता गिलानी वगैरा सुबह का नाश्ता-चाय, ब्रेड, कतलम और अंडों का -पत्थरबाज लड़कों को अपने बंगलों में कराते। उन्हें एक-एक पत्थर मारने के एवज में पाँच -पाँच सौ इंडियन करेंसी के रूपये देते जो पाकिस्तान से नकली नोटों के रूप में छपकर आते थे। उनकी एक जेब में पत्थर भर देते। दूसरी जेब में रूपये ठूंस देते और कहते- "जाओ बर्खुरदार! पूरी ताकत से हमला करो नापाक फौजियों पर। साथ में 'पाकिस्तान जिंदाबाद' 'नाराये तकबीर अल्लाहो अकबर' 'आजादी-आजादी' के नारे बुलंद करते जाना। अल्लाह तुम्हारी मदद करेगा।"[8] सुधाकर अदीब की कहानी 'जवाब-तलब' में भी युवा वर्ग के भटकाव को चित्रित किया गया है जहाँ मतदाताओं को डराने के लिए कश्मीरी युवाओं को बहकाकर प्रचार-प्रसार को बाधित किया गया।

कश्मीर में युवाओं के आतंक की ओर जाने का एक और बड़ा कारण वहाँ तैनात सुरक्षाबलों द्वारा की जाने वाली हिंसक सैन्य कार्रवाइयां भी हैं। सैन्यबलों के असंयमित व्यवहार ने कश्मीरी युवाओं में आक्रोश पैदा किया है और कई बार सिर्फ शक के कारण थर्ड डिग्री टॉर्चर या गिरफ्त में लेकर लापता होने की अनेक घटनाओं ने कश्मीरी युवाओं में प्रतिरोध की भावना को जन्म दिया है जहाँ कई बार युवा आतंक का रास्ता इख्तियार कर लेते हैं। 2016 में भारतीय फौज के एनकाउंटर में मारा गया आतंकी बुरहान वानी फौज के प्रति प्रतिशोध की भावना से आजाद पाकिस्तान से ट्रेनिंग लेकर आया था। उसके बड़े भाई से की गयी ज्यादती ने उसे आतंकी बनने को प्रेरित किया।

कश्मीरी युवा वर्तमान में सबसे बड़ी समस्या के रूप में 'बेरोजगारी' की बात करते हैं। कश्मीर में युवाओं के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं है। ऐसी दशा में भविष्य के प्रति अनिश्चितता का भाव उनके दिलों में घर किए हुए हैं। वे घाटी में रोजगार के बेहतर अवसर हेतु प्रयासरत हैं। अधिकांश युवा कश्मीर से बाहर भी भविष्य देख रहे हैं परंतु घाटी में ही रहकर स्थायित्व की तलाश कर रही पीढ़ी असमंजस में है। दुःखद है कि ऐसी समस्या से निजात कुछ युवा आतंकी बनकर पाना चाहते हैं। वर्तमान में आतंकवाद को वे एक अवसर के रूप में देख रहे हैं। 'दर्दपुर' उपन्यास में क्षमा कौल नूर मुहम्मद के माध्यम से यह चिंता रखती हैं, "मैं भी सोचता था कि नौकरी पाने के लिए यही ठीक है। मिलिटेण्ट बनो। सरण्डर करो। और नौकरी पाओ। और शाबाशी भी--- और हो सका तो किसी अच्छी पार्टी का नेता भी। मगर मुझे नेतागिरी का कतई लालच नहीं। बस नौकरी मिल जाए।"[9] वर्तमान में कश्मीरी युवा अधिक जागरूक है। जिनके दिमागों को गोलियों और कट्टरपंथ ने अंधा कर दिया था, अब वे वक्त की माँग को समझने लगे हैं। आतंकवाद उन्हें किस कदर खोखला बना रहा है, यह बात उनके नवविचारों का हिस्सा है। इसी आशा से प्रेरित चन्द्रकांता 'कथा सतीसर' उपन्यास में लिखती है, "फिलहाल, अपने लड़के कठपुतली

नोटों के रूप में छपकर आते थे। उनकी एक जेब में पत्थर भर देते। दूसरी जेब में रूपये ठूंस देते और कहते- "जाओ बर्खुरदार! पूरी ताकत से हमला करो नापाक फौजियों पर। साथ में 'पाकिस्तान जिंदाबाद' 'नाराये तकबीर अल्लाहो अकबर' 'आजादी-आजादी' के नारे बुलंद करते जाना। अल्लाह तुम्हारी मदद करेगा।"[8] सुधाकर अदीब की कहानी 'जवाब-तलब' में भी युवा वर्ग के भटकाव को चित्रित किया गया है जहाँ मतदाताओं को डराने के लिए कश्मीरी युवाओं को बहकाकर प्रचार-प्रसार को बाधित किया गया।

कश्मीर में युवाओं के आतंक की ओर जाने का एक और बड़ा कारण वहाँ तैनात सुरक्षाबलों द्वारा की जाने वाली हिंसक सैन्य कार्रवाइयां भी हैं। सैन्यबलों के असंयमित व्यवहार ने कश्मीरी युवाओं में आक्रोश पैदा किया है और कई बार सिर्फ शक के कारण थर्ड डिग्री टॉर्चर या गिरफ्त में लेकर लापता होने की अनेक घटनाओं ने कश्मीरी युवाओं में प्रतिरोध की भावना को जन्म दिया है जहाँ कई बार युवा आतंक का रास्ता इख्तियार कर लेते हैं। 2016 में भारतीय फौज के एनकाउंटर में मारा गया आतंकी बुरहान वानी फौज के प्रति प्रतिशोध की भावना से आजाद पाकिस्तान से ट्रेनिंग लेकर आया था। उसके बड़े भाई से की गयी ज्यादती ने उसे आतंकी बनने को प्रेरित किया।

कश्मीरी युवा वर्तमान में सबसे बड़ी समस्या के रूप में 'बेरोजगारी' की बात करते हैं। कश्मीर में युवाओं के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं है। ऐसी दशा में भविष्य के प्रति अनिश्चितता का भाव उनके दिलों में घर किए हुए हैं। वे घाटी में रोजगार के बेहतर अवसर हेतु प्रयासरत हैं। अधिकांश युवा कश्मीर से बाहर भी भविष्य देख रहे हैं परंतु घाटी में ही रहकर स्थायित्व की तलाश कर रही पीढ़ी असमंजस में है। दुःखद है कि ऐसी समस्या से निजात कुछ युवा आतंकी बनकर पाना चाहते हैं। वर्तमान में आतंकवाद को वे एक अवसर के रूप में देख रहे हैं। 'दर्दपुर' उपन्यास में क्षमा कौल नूर मुहम्मद के माध्यम से यह चिंता रखती हैं, "मैं भी सोचता था कि नौकरी पाने के लिए यही ठीक है। मिलिटेण्ट बनो। सरण्डर करो। और नौकरी पाओ। और शाबाशी भी--- और हो सका तो किसी अच्छी पार्टी का नेता भी। मगर मुझे नेतागिरी का कतई लालच नहीं। बस नौकरी मिल जाए।"[9] वर्तमान में कश्मीरी युवा अधिक जागरूक है। जिनके दिमागों को गोलियों और कट्टरपंथ ने अंधा कर दिया था, अब वे वक्त की माँग को समझने लगे हैं। आतंकवाद उन्हें किस कदर खोखला बना रहा है, यह बात उनके नवविचारों का हिस्सा है। इसी आशा से प्रेरित चन्द्रकांता 'कथा सतीसर' उपन्यास में लिखती है, "फिलहाल, अपने लड़के कठपुतली

बने हुए हैं। इन्हें चलानेवाले दूसरे हैं, यह बात जिस दिन वे समझेंगे, जरूर नए सिरे से विचार करेंगे।"[10] शायद युवाओं ने इस नए सिरे से सोचना शुरू कर दिया है।

कश्मीरी युवाओं का जिक्र होने पर विस्थापित कश्मीरी युवा वर्ग एवं लद्दाख क्षेत्र युवाओं के हितों एंव टकरावों पर ध्यान देना जरूरी प्रतीत होता है। लद्दाख के युवाओं को विकास के बहुत कम अवसर मिले हैं। वादी में रहने वाले युवाओं की अपेक्षा विस्थापित कश्मीरी व लद्दाखी युवा उपेक्षित हैं जिनके उज्ज्वल भविष्य एवं संतोषजनक वर्तमान के विषय में चिंतन आवश्यक है। एक ऐसी पीढ़ी जो अपनी भूमि, अपनी विरासत, अपनी सांस्कृतिक जड़ों को लेकर भटक रही है। जो अपनी राष्ट्रीयता को लेकर भ्रमित हैं और अपने ही देश में शरणार्थियों सा जीवन व्यतीत कर रही है। जिनके मन में उदासी छायी है और बेचैनी जिनके जीवन का हिस्सा बन चुकी है। 'शिगाफ' उपन्यास की अमिता अपने निर्वासन के दौरान सैन्सबेस्टियन (स्पेन) में रहते हुए अशान्त जीवन की बोझिलता को व्यक्त करती हैं। कश्मीर में वापस बसने के लिए मन उम्मीदें बांधे हुए है। भारत सरकार की असक्रियता अमिता के लिए असह्य है। 'शरणागत दीनार्त' कहानी का विस्थापित गाशा इसी मनोदशा से पीड़ित है, "गाशा, उम्र पच्चीस, तेज-तर्रार और गुस्सैल। आस-पास घटती वारदातों और हालात का भुक्तभोगी, चश्मदीद गवाह। अकेला ही कड़वा नहीं गया वह। पूरी पीढ़ी गुस्साई हुई है। बेघर, बेजमीन, बेरोजगार और अपने देश के परदेशी होने का विवश आक्रोश। अचानक ही तो नहीं फट पड़ा आसमान। एक ही दिन में अपने दुश्मन नहीं लगने लगते।"[11] यह अवश्य है कि कश्मीर से बाहर राज्यों में विस्थापित कश्मीरी युवाओं ने शिक्षा और रोजगार में काफी प्रगति की है परंतु अपने घरों को वापस न लौट पाने की निराशा अभी भी पीड़ा का विषय है।

घाटी में रह रही युवा पीढ़ी सत्ता दमन से तनाव में है। तनाव की यह स्थिति उनमें भारत सरकार के प्रति नफरत पैदा कर रही है। अधिकांशतः बना रहने वाला कर्फ्यू सा माहौल, शिक्षा में असीमित खलल, भारी सैन्यबलों की तैनाती, आतंकी घटनाएँ एवं भविष्य के प्रति मन में बढ़ती अनिश्चितता उनमें एक खौफ पैदा कर रही है। वादी में रोजगार के अवसर न के बराबर हैं। पर्यटन से पर्याप्त आर्थिक स्तर नहीं मिल पा रहा और कश्मीर से बाहरी क्षेत्रों में उनके प्रति सौहार्दपूर्ण व्यवहार का अभाव है। कश्मीरी छात्रों को शक की निगाह से देखा जाता है और उनके साथ हिंसक घटनाएं भी घटी हैं। 'नाकाबन्दी' उपन्यास का जीशान दिल्ली में पाकिस्तानी कहकर अपमानित किए जाने पर वहां से वापस आ जाता है। सोफिया की माँ कहती है, "सोफिया, तुम सही कह रही हो। कश्मीर का तनाव नयी पीढ़ी के दिलो-दिमाग और जिंदगियों पर गहरा असर डाल रहा है। गुजरे हुए सालों में उन्होंने ऐसे दमन वाले हालात नहीं देखे। मुझे तो लगता है कि अब एक बार फिर यह पीढ़ी वादी के बिगड़ते हालात में खौफ, अनिश्चितता और मायूसी की फिजा में साँस लेगी।"[12]

वादी में रह रहे इन कश्मीरी युवाओं को मजहबी जंग और गलत खयालातों से बाहर लाना आवश्यक है। यह लक्ष्य मात्र आला खयालों के माध्यम से प्राप्त हो सकता है। 'कश्मीर 370 किलोमीटर' उपन्यास में रवींद्र प्रभात लिखते हैं, "कश्मीर में जेहाद के नाम पर खून खराबा कर रहे युवकों को कश्मीरियत, जम्हूरियत, इन्सानियत और राष्ट्रवाद का पाठ पढ़ाकर उन्हें देश की मुख्यधारा में लाने के लिए देशभक्त और मानवतावादी मुस्लिम विद्वानों को अपनी भूमिका निभानी होगी। तभी कोई मुकम्मल रास्ता निकल पाएगा।"[13]

स्पष्ट है कि कश्मीर की बिगड़ रही परिस्थितियों का हल वहाँ की युवा पीढ़ी को साथ लेकर ही निकाला जा सकता है। रोजगार के पर्याप्त अवसर, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व, मानवतावादी सोच की प्रेरणा, आतंकवाद के खोखलेपन की सच्चाई आदि से उनका रूबरू होना आवश्यक है। कश्मीर घाटी, लद्दाखी युवा वर्ग एवं विस्थापित कश्मीरी युवाओं को एक साथ लाकर उनमें संवाद की परिपाटी विकसित करना जरूरी है। एक जागरुक और संतुष्ट कश्मीरी युवा पीढ़ी ही भविष्य में कश्मीर में अमन-चैन ला सकेगी।

सदर्भ-सूची-

1- सं० डॉ-शगुफ्ता नियाज, अनुसंधान पत्रिका, अप्रैल 2022- सितम्बर, 2022, पृ०11
2- सं० शिप्रा किरण, सुलगता कश्मीर, सिकुड़ता लोकतंत्र, वक्त की आवाज 2, वाम प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 78
3- वही, पृ०79
4- अशोक कुमार पाण्डेय, कश्मीरनामा, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण, 2019, पृ० 427
5- सं० राजकिशोर, कश्मीर का भविष्य, आज के प्रश्न-5, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ०147
6- मधु कांकरिया, सूखते चिनार- भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2018- पृ0 132
7- चन्द्रकांता, कथा सतीसर, राजकमल पेपरबैक्स, नयी दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2021, पृ० 428
8- सुधाकर अदीब, वर्फ और अंगारे, अमन प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण, 2020, पृ० 191
9- क्षमा कौल, दर्दपुर, प्रलेक प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण, 2022, पृ0 29
10 चन्द्रकांता, कथा सतीसर, राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2021, पृ० 480
11- चन्द्रकान्ता, शरणागत दीनार्त, काली बर्फ कथा संग्रह, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली- 2013, पृ० 13
12- आरिफा एविस, नाकाबन्दी, डायमंड बुक्स, नई दिल्ली, 2020, पृ० 53
13- रवीन्द्र प्रभात, कश्मीर 370 किलोमीटर, एक्सप्रेश पब्लिशिंग, चेन्नई, प्रथम संस्करण, 2019, पृ० 189

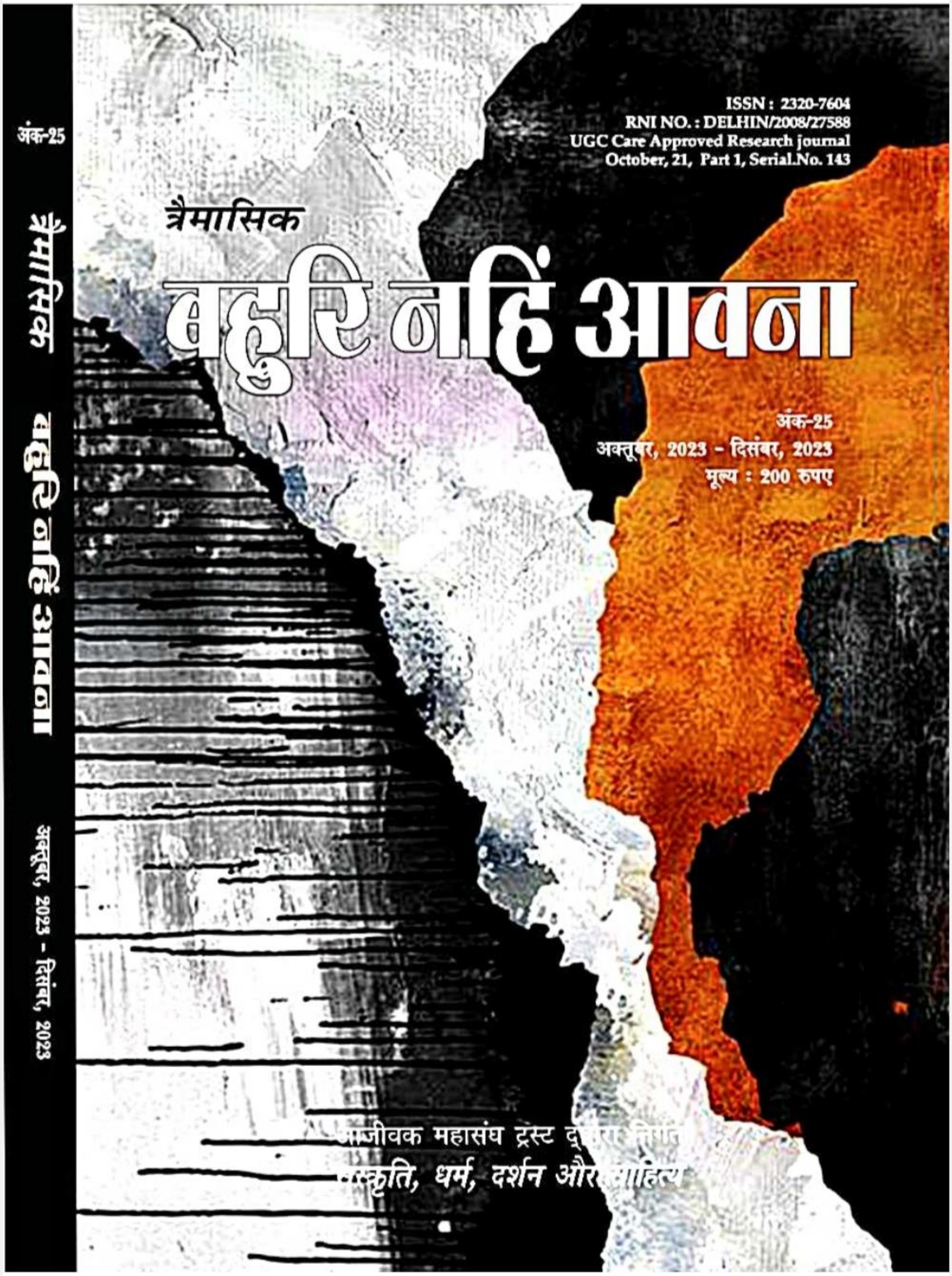
ISSN : 2320-7604
RNI NO. : DELHIN/2008/27588
UGC Care Approved Research journal
October, 21, Part 1, Serial.No. 143
त्रैमासिक
बहुरि नहिं आवना
अंक-25
अक्तूबर, 2023 - दिसंबर, 2023
मूल्य : 200 रुपए
अंक-25
त्रैमासिक बहुरि नहिं आवना
अक्तूबर, 2023 - दिसंबर, 2023

25. भारतीय दर्शन की नास्तिक परम्परा में 'आत्मा' की अवधारणा	–प्रो. विजय यादव	99
26. 'दीक्षा' उपन्यास और स्त्री प्रश्न	–कु. प्रियंका	104
27. महिला सशक्तीकरण के वर्तमान युग में अधिकार एवं समाजिक जागरूकता	–राहुल यादव –डा. वसुधा कुलश्रेष्ठ	109
28. वाल्मीकि रामायण में वर्णित स्त्रियों में सैन्य दक्षता : एक अध्ययन	–रूबी तब्बसुम	113
29. दुर्गा प्रसाद पारकर कृत उपन्यास 'बहू हाथ के पानी' में छत्तीसगढ़ का लोक जीवन	–शिवांगी पाठक –डा. श्रद्धा चंद्राकर	115
30. चुनावी लोकतंत्र और भारतीय संस्कृति	–अजय कुमार ओझा	119
31. पश्चिमी गढ़वाल में नाग पूजन : एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य	–डा. सपना रावत	123
32. भारत में उच्च शिक्षा की चुनौतियां : सम्भावनाएं एवं विकल्प	–डा. सारिका श्रीवास्तव	128
33. ग्रामीण एवं नगरीय समाज : समाजशास्त्रीय संकल्पना	–जय प्रताप सिंह –डा. अतुल कुमार यादव	132
34. हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों एवं छात्राओं का चैटबॉट के शैक्षिक उपयोग के प्रति जागरूकता के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन	–डी. पी. मिश्रा –कृष्ण कुमार जायसवाल	136
35. गिरीश पंकज का व्यंग्य उपन्यास 'पॉलीवुड की अप्सरा' का चित्रण	–श्रीमती निकिता रामटेके –डा. शंकर मुनि राय	140
36. सूरदास की स्त्री चेतना	–पूजा सरोज	142
37. जम्मू-कश्मीर केंद्रित हिंदी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	–प्रियंका सरोज	145
38. दलित आत्मकथाओं में अस्मितामूलक विमर्श	–डा. अजय कुमार यादव	149
39. शिवमूर्ति की कहानी 'कुच्ची का कानून' में टूटते सामाजिक-मूल्यों की पहचान	–एमन कुमार	153
40. हिंदी डायरी लेखन में प्रेमाभिव्यक्ति का स्वरूप	–राम भवन यादव	158
41. वर्तमान संदर्भों में दलित पहचान का संकट और समाज	–डा. कुमार भास्कर	161
42. भारतीय मीडिया में महिलाओं का प्रतिनिधित्व : एक अध्ययन	–नीलेश साहू, डा. संतोष कुमार	165
43. आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कुपोषण का परिवर्तित स्वरूप (एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण)	–सुश्री सीता पाण्डेय –कृष्ण कुमार विश्वकर्मा	170
44. भारत में ऑनलाइन शिक्षा : एक दृष्टि	–डा. रियंका सिंह –डा. आशीष कुमार	176
45. भारत में शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 का क्रियान्वयन : एक दृष्टि	–शुभम यादव –डा. आशीष कुमार	182
46. प्लेटो की प्रारंभिक ज्ञान की अवधारणा : एक विमर्श	–डा. विवेक सिंह	186
47. निर्मल वर्मा कृत 'चीड़ों पर चाँदनी' में जीर्णोद्धार अभिव्यक्ति की पराकाष्ठा और संवेदनात्मक परिणति	–प्रीति सिंह –रविरंजन कुमार	190

48. संपोषणीय विकास : वैश्विक मंच पर उभरता भारत	–डा. प्रगति दुबे	194
49. शिक्षा, सेवा और राष्ट्र निर्माण-एक दार्शनिक विश्लेषण	–डा. अखिल प्रकाश	198
50. 'रासो' काव्य की भाषा में स्त्रीवाद	–डा. धीरेन्द्र कुमार पाण्डेय –डा. गीता	202
51. भारत की शैक्षिक नीतियों में वर्णित उच्च शिक्षा संबंधी प्रावधानों का विश्लेषणात्मक अध्ययन	–धर्मेन्द्र कुमार –डा. सरिता शर्मा	207
52. बिहार के मगही सांस्कृतिक प्रदेश में पर्यटन	–डा. रत्नेश शुक्ल –डा. अनिल कुमार शर्मा	214
53. उत्तराखण्ड में स्वायी स्वास्थ्य सेवा : बुनियादी सुविधा का वित्तपोषण	–गरिमा पाण्डेय	218
54. रामचरित मानस में वर्णित प्रसंगों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन	–डा. गिरीश कुमार वत्स	223
55. माध्यमिक स्तर के शिक्षकों का सतत व्यावसायिक कार्यक्रमों के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन	–डा. सचिन कुमार –डा. दीपशिखा सक्सेना	226
56. भारत के संदर्भ में महिला पत्रकारिता का विकास क्रम	–डा. आलोक कुमार पाण्डेय	230
57. कश्मीर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में चित्रित निर्वासन की त्रासदी	–सौम्या वर्मा	234
58. सुख-मृत्यु : महात्मा गाँधी के विशेष संदर्भ में	–डा. शीतल भारती	238
59. कॉर्पोरेट जगत में महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषण	–डा. रेनू अग्रवाल	244
60. महिला अधिकार : मुद्दा, चुनौतियाँ एवं संरक्षण	–डा. अनिल कुमार शर्मा	248
61. मीरा और महादेवी का तुलनात्मक अध्ययन	–मनीषा ठाकुर	253
62. उत्तर-छायावाद और गोपाल सिंह 'नेपाली'	–डा. हेमंत कुमार हिमांशु	257
62. भारत के सामाजिक विकास में चीनी उद्योग की भूमिका	–डा. ज्ञान प्रकाश	262
62. समग्र विकास में महिला शिक्षा एवं सशक्तीकरण का प्रभाव : एक विश्लेषण	–डा. मनोज गुप्ता –डा. नन्दन सिंह	265

कश्मीर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में चित्रित निर्वासन की त्रासदी

–सौम्या वर्मा

कश्मीर केन्द्रित हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित महत्वपूर्ण विषय है विस्थापन की पीड़ा। कश्मीर में उपजे आतंकवाद के कारण लाखों लोग कश्मीरी धरती से विस्थापित होकर देश-विदेश में वसने को मजवूर हो गये। 1990 से लगातार घाटी से लोगों का विस्थापन जारी रहा। सरकार द्वारा समुचित सुरक्षा व्यवस्था न उपलब्ध कराये जाने के कारण और मुस्लिमों की तुलना में कम संख्या में होने की वजह से वे विस्थापन हेतु विवश हुए। यह एक साधारण घटना नहीं थी। अपनी जमीन से कट जाने का दर्द असह्य है और वह तव और वढ़ जाता है जव वापस अपनी जमीन पर पहुंचने की कोई उम्मीद भी न दिखे। असुरक्षा की भावना से आहत कश्मीरियों ने दिल्ली, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में शरण ली। इस प्रकार अपनी जन्मभूमि से कटकर एक नए स्थान पर अपनी रोजी-रोटी कमाना, अपनी पहचान वनाना और उससे भी कहीं अधिक उस दर्द को भुलाना जो अपनी जड़ों से कटने का था, नितांत मुश्किल था। कहा जाता है या तो परिस्थितियों के अनुसार ढल जाओ और जीवन जियो या ना ढलो और नष्ट हो जाओ, कश्मीरी नई जगहों पर ढल तो गए पर उनका अंतर्मन न ढल पाया। इसका कारण स्पष्टतः ही वह अनिश्चितता का भाव है जिसने उनके दिलों में घर कर लिया। किसी स्थान से अपने आप हटना और वहां से जवरन हटाया जाना, इन दोनों परिस्थितियों में काफी फर्क है। पहली स्थिति में आप के वहीं वापस जाने की प्रत्याशा है परन्तु दूसरी में नहीं। यह दर्द तव और भी त्रासद है, जव वह स्थान कोई सामान्य स्थान न होकर मातृभूमि हो। वह भूमि हो जिसने आप को रूप व आकार दिया है, आप को काटा-छांटा है, आप को वह आधार दिया है जिस पर आज आप हैं–*आम्यन टाक्यन पोन्य जन श्रमान/जव ग्रुम प्रमान गुर गछता* ।

यह वाक्य कश्मीर की संत कवयित्री ललद्यद का है जिसका अर्थ है, "कच्चे सकोरा के से ज्यों पानी रिस रहा हो, मेरा जी कसक रहा है, कव अपने घर चली जाऊं।" आज यह वाख कश्मीरी निर्वासितों की पीड़ा को व्यक्त करता प्रतीत होता है। कश्मीर में यह निर्वासन अनेक चरणों में हुआ। निःसन्देह 1990 का यह विस्थापन इतनी भारी मात्रा में हुआ कि वह स्थिति प्रकाश में आयी परन्तु इससे पहले भी विस्थापनों की एक क्रमिक परम्परा कश्मीर का हिस्सा रही है।

मुस्लिम आक्रमणकारी तैमूरलंग के समय विस्थापन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। इतिहास में अव तक हुए 6 वड़े विस्थापन और 11 छोटे विस्थापन दर्ज हैं। भारत के विभाजन के वाद भी 1986 तक धीरे-धीरे विस्थापन होता रहा। सन् 1947 में होने वाले क्रूर कवाइली आक्रमण के फलस्वरूप तीस प्रतिशत तक कश्मीरी हिन्दुओं का विस्थापन हुआ। 1235 ई. में राजदेव के काल में व्राह्मणों पर भयावह अत्याचार हुआ। 'ना भ्रोहम (मैं व्राह्मण नहीं हूँ) के नारे गूंजे। कश्मीरी पंडितों के लिए सुल्तान सिकन्दर का राज्यारोहण घातक सावित हुआ। वह मंदिरों के ध्वंस और जवरन धर्म परिवर्तनों का दौर रहा। निश्चित ही व्राह्मणों के प्रभाव का ह्रास हुआ। 1586 ई. में कश्मीर में मुगल शासन का आधिपत्य स्थापित होने से पंडितों की वापसी दरवार में हुई परन्तु सत्ता संघर्ष जारी रहा। उनका राजस्व विभाग में दवदवा वनने के साथ-साथ अलग-अलग रजवाड़ों में भी प्रवेश करने लगे। मुहम्मद शाह के दौर में कश्मीर से आए राजा जयराम भान के आवेदन पर कश्मीरी व्राह्मणों के लिए 'कश्मीरी पंडित' सम्वोधन प्रयोग में लाया गया। सन् 1753 से 1820 तक कश्मीर पर अफगानों का शासन रहा। राजस्व विभाग में पंडितों का कव्जा वरकरार रहा लेकिन आम हिन्दू और मुसलमान उत्पीड़न और लूट के शिकार हुए। सन् 1824 से 1846 के मध्य सिख साम्राज्य स्थापित रहा और लाहौर दरवार तक कश्मीरी पंडितों की पकड़ हुई। व्रिटिश भारत के अनेक रजवाड़ों तक वे ऊँचे पदों पर पहुँचे।

सन् 1912 में कश्मीरी पंडितों द्वारा नौकरियों में पंजावियों और अन्य वाहरी लोगों के प्रभुत्व के खिलाफ कश्मीर कश्मीरियों के लिए आन्दोलन की शुरुआत हुई और पहली वार राज्य नागरिक की परिभाषा तय की गई परन्तु स्पष्टता का अभाव होने के कारण आन्दोलन जारी रहा। अक्टूवर 1947 से 1948 के दौरान कवायली हमले की आड़ में कश्मीर पर पाकिस्तान द्वारा आधिपत्य प्राप्ति का प्रयास हुआ। महाराजा हरि सिंह का श्रीनगर से पलायन हो गया और सुरक्षा हेतु उन्होंने भारत के साथ संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

10 फरवरी, 1984 को जस्टिस नीलकांत गंजू द्वारा मकवूल भट्ट को विमान अपहरण और हत्या के आरोप में फांसी की सजा सुनाई गई। फरवरी, 1986 में राम मन्दिर का ताला खुलने की घटना के वाद अनन्तनाग जिले में साम्प्रदायिक हिंसा के अनेक मामले प्रकाश में आये। 1988 से 1989 के वीच घाटी में असन्तोष का माहौल रहा और हिंसक घटनाएँ आम हो गयीं। 21 अगस्त, 1989 को यूसुफ हलवाई को गोली मारी गई और 14 सितम्वर, 1989 को भाजपा नेता टीकालाल टपलू की हत्या हो गयी। 4 नवम्वर को नीलकांत गंजू की हत्या के वाद पंडितों में भय व्याप्त हो गया। 18 जनवरी, 1990 को फारूक का इस्तीफा और जगमोहन के कश्मीर के राज्यपाल वनने के साथ ही हिंसा का तांडव प्रारंभ हुआ। भारी जुलूस निकाले गये। गोलीवारी व हत्याएँ अपने चरम पर रहीं। पंडितों का भारी संख्या में विस्थापन हुआ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्वासन का एक ज्वलंत इतिहास है। इस पीड़ा को हिन्दी उपन्यासकारों ने अनुभव किया और अपनी कलम से रेखांकित भी किया। हिन्दी साहित्य में चन्द्रकान्ता, मनीषा कुलश्रेष्ठ, क्षमा कौल, संजना कौल आदि लेखकों व लेखिकाओं के उपन्यास विस्थापन की पीड़ा समेटे हुए हैं। 'कथा सतीसर', 'दर्दपुर', 'शिगाफ', 'कश्मीर 370 किलोमीटर', 'पाषाण युग' आदि अनेक उपन्यास निर्वासन की त्रासद स्थिति को व्यक्त करने में सफल रहे हैं।

कश्मीरी पंडितों के निर्वासन के दंश को समझने में जो कृतियाँ सहायक हैं, उनमें क्षमा कौल का उपन्यास 'दर्दपुर' प्रमुख है। यह उपन्यास कश्मीरी पंडितों पर हमले और महिलाओं पर वर्वरतापूर्ण अत्याचार की महागाथा है। दरअसल यह दर्दपुर जंक्शन है, जहां सभी दर्द और दुःखों का संयोग है। यह स्त्रियों के दुःख-दर्द और उनके प्रेम, त्याग और समर्पण की कथा है। क्षमा कौल की वेवाकी उद्वेलित करती है तो उनकी कोमल भाषा हमारे दुःखों पर मरहम लगाती है। उनकी दार्शनिकता हमें कहीं गहरे ज्ञान लोक में उतारती हैं। इसे पढ़ते वक्त आप न केवल कश्मीर को जी रहे होते हैं वल्कि आप उनकी पीड़ा को महसूस कर रहे होते हैं– "हमारे ईश्वर वंदी वना लिए गए हैं? क्या यह सच है? क्या यह भी सच हो सकता है? क्या वास्तव में विलकिस का ईश्वर, ईश्वर है और मेरा ईश्वर? सुधा के इस प्रश्न का कोई जवाव नहीं है हमारे पास, जव उन्हें अपने ही देश में अपनी ही मातृभूमि, जन्मस्थली से रातों-रात खदेड़ कर वाहर कर दिया गया, आखिर उनका जुर्म क्या था? वस यही कि वे एक हिंदू थे, कश्मीरी पंडित भट्ट और इस्लाम की नजर में काफिर थे।"[2]

मनीषा कुलश्रेष्ठ का उपन्यास 'शिगाफ' अपने सपनों को टूटते हुए देखते, निर्वासित कहलाते, कश्मीर में रहते हुए भी निर्वासन भोगते लोगों की कथा है। इस उपन्यास में समस्या नहीं वल्कि कई सारी जिंदगियां हैं– "वे जिंदगियां जो आतंक और निर्वासन की भेंट चढ़ गई हैं। इस उपन्यास में हर एक कहानी के साथ एक जिंदगी खुलती है और

साथ ही खुलता जाता है उसे जीनेवालों का दर्द, वह दर्द जो उसे कभी आतंक की कैद से मिला है तो कभी निर्वासन की त्रासदी से, शिगाफ का अर्थ होता है दरार। वह दरार जिसे वर्षों से साथ रह रहे, साझी संस्कृतियों में जी रहे कश्मीरियों के बीच डालकर उन्हें अलग कर दिया गया। इसी उपन्यास से, "विस्थापन का दर्द महज एक सांस्कृतिक, सामाजिक विरासत से कट जाने का दर्द नहीं है बल्कि अपने खुली जड़ें लिए भटकने और कहीं जम न पाने की भीषण विवशता है, जिसे अपने निर्वासन के दौरान सैंसवेस्टियन (स्पेन) में रह रही अमिता लगातार अपने 'ब्लॉग' में लिखती रही हैं।"[1] कश्मीर से निर्वासित अमिता स्पेन में नौकरी करती हैं। कश्मीर उनकी स्मृतियों से विस्थापित नहीं हो पाया है। अपनी भाषा, अपनी जमीन के प्रति गहरा लगाव वह निर्वासन के इतने वर्षों बाद भी महसूस करती है, "मैं स्पेनिश बोलते हुए सही तरह जीभ नहीं घुमाती हूँ। मेरा उच्चारण मेरे छूटे हुए देश की याद दिलाता है।...गैर-भाषियों के बीच अपनी भाषा का मोह कितना सालता है।"[5]

अपने उपन्यास में निरंजन रैणा के माध्यम से लेखिका ने निर्वासित कश्मीरियों के मन की उस उम्मीद को दिखाया है जिसका टूटना ही उसकी नियति थी. लेकिन उसे बनाए रखना उनके जीवन की एकमात्र आस थी। निरंजन अपनी खीझ, अपना क्रोध, अपनी बेबसी प्रकट करते हुए अमिता के 'ब्लॉग' की प्रतिक्रिया में लिखता है, "वह बदकिस्मत दिन, जब हम चूल्हे गरम छोड़कर थोड़ा-बहुत सामान बांधकर घर को ताला लगाकर इस उम्मीद के साथ जा रहे थे कि एक दिन यह हिंसक तूफान थमेगा और हम ताले की चाभियां संभाल कर रखेंगे कि फिर लौट कर आना जो होगा, लेकिन मैंने देखा, झेलम आसुओं के साथ बह रही थी।"[6]

अमिता उन कारणों को भी बताती हैं जिन्होंने उसे और उसके जैसे कितनों को बेघर कर दिया। उसके बचपन की स्मृतियों में एक ऐसी भयानक याद अंकित कर दी जिसे वह कभी नहीं भूल सकती। अपने ब्लॉग में वह लिखती हैं, "मैं आज निर्वासित हूँ...क्योंकि तुम ने चुना था निहत्थों को मारना। मैं आज निर्वासित हूँ...मैंने चुना सम्मान से जीना...हथियार ना उठाना। मैं आज निर्वासित हूँ...क्योंकि पूरा संसार चुप रहा... महज कुछ लोग ही तो मर रहे थे। मैं आज निर्वासित हूं...क्योंकि मेरा भारतीय होने में विश्वास था।"[7]

क्षमा कौल के उपन्यास 'दर्दपुर' की कथा कश्मीर से निर्वासित हुई सुधा के एक एनजीओ के साथ दुबारा कश्मीर जाने के साथ चलती है। कश्मीर से निर्वासित सुधा जब दुबारा कश्मीर जाती है तो उसके भीतर खोने का दबा हुआ उसका क्रोध, सब कुछ दुःख अपने घर के प्रति उसका मोह बार-बार बाहर आने की कोशिश करता है, उसे कचोटता है। वह सोचती है, "वह गेस्ट हाउस क्यों जा रही है, घर क्यों नहीं जा रही है? और खुद को याद दिला रही थी कि क्या यह सच है कि इस घटना को हुए अरसा होने को आ रहा है।"[8] अपने उस घर जहाँ उसकी बचपन की यादें हैं, वहाँ देखे गए उसके सपने हैं, कई सारी स्मृतियां हैं, इतने पास जाकर भी वह वहाँ नहीं रह सकती। केवल उस घर को दूर से देख सकती है। इस पीड़ा को सहने के लिए वह और उस जैसे कई और निर्वासित अभिशप्त हैं। होटल के कमरे में बैठे-बैठे सुधा सोचती है, "कितना पास है वह घर जहां से उसे उस रात निकाला गया था। वह आरामगाह... वह घर जहां उसने हमेशा मस्ती की, मां की छांव देखी, पिता का लाड़ पाया। ये कमरे, ये दीवारें, यह दहलीज, ये नल, ये बरामदे कितने पास हैं पर कहां हैं। उसे लगा सब निर्जीव वस्तुओं की आत्माएं उग आई हैं। प्राण फूंके गये हैं उनमें, ताकि ये भी तड़पें दोनों में विरह है। वह वहां नहीं जा सकती। ये इसके पास नहीं आ सकते।"[9]

मीराकांत का उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं सा' कश्मीरी जीवन और समाज को समझने का एक जीवंत माध्यम है। इस उपन्यास की एक पात्र शबरी के माध्यम से लेखिका ने निर्वासन की उस पीड़ा को दिखाया है जिससे बने जख्म कभी नहीं भरे। "यह उपन्यास मानव संबंधों की एक उलझी पहेली है...यहां अपने ही देश में लोग डायस्पोरा का जीवन जी रहे हैं।"[10] शबरी कश्मीर से अपना घर छोड़कर नहीं जाना चाहती, क्योंकि उसे लगता है कि यहीं उसने एक ही जन्म में कई जीवन जिए हैं। इस घर में उसके माता-पिता की मृत्यु हुई, इसी घर से उसकी डोली उठी और पति की मृत्यु के बाद वह इसी घर में लौटकर आई। इसी घर में उसने अपने पिता समान दो बड़े भाइयों और अपनी भाभी को खोया। यह सारी स्मृतियां, उसके पूर्वजों का स्नेह और आशीर्वाद इस घर में बसा है। वह सोचती है, "इस घर-आंगन में लगता है जन्म-जन्मांतर का नाता है। यहीं जन्म लिया, यहीं से ब्याही गयी और अब लौटी भी तो यहीं। यहीं रहकर एक ही जीवन में ना जाने कितने जीवन जिए। तो क्या अब अंतिम पहर में चला चली की इस बेला में इसे छोड़ दूं? नहीं, किसी कीमत पर नहीं। हरगिज नहीं।"[11]

एक पूरी जिंदगी गुजार देने के बाद इतना आसान कहाँ रह जाता है अपनी जड़ों को अपने ही हाथों से काटना शबरी जब दूसरों को अपना घर छोड़ जाते देखती तो हमेशा

सोचती कि "वह यहीं जायेगी। इसी आंगन में, इसी दहलीज पर इसी मिट्टी में, इसी हवा में, उम्र के लगभग 75 पड़ाव पार कर देने के बाद अब क्या अपनी छोड़ किसी और की देहरी पर जाना। फिर उसे भी अंततः अपनी वितस्ता का ही वरण करना था। अपने पुरखों की तरह[12] लेकिन शबरी और उस जैसे कई निर्वासितों की यह छोटी-सी इच्छा भी पूरी नहीं हो पाती आतंक के सामने बेबस शबरी को भी अपना घर छोड़ कर जाना पड़ता है। चन्द्रकांता के उपन्यास 'कथा सतीसर' के केंद्र में कश्मीर, कश्मीरियत और विस्थापन है। अपने इस उपन्यास के रचना के पीछे का कारण बताते हुए चन्द्रकांता लिखती हैं, "इसे रचने के पीछे कई पीड़ादायक कारण रहे किसी की दया पर नहीं बल्कि सम्मान से जीना चाहते थे। कोई यूं ही किसी के कह देने भर से अपनी जन्मभूमि, अपना घर और अपने जीवन भर की पूंजी छोड़कर नहीं जाता।"[13] घर की कीमत वही बेहतर समझ सकता है जिसे जबरन उसके घर से निकाल दिया गया हो। चन्द्रकांता लिखती हैं, "घर का अर्थ वही जानता है जिसका घर छूट गया हो। घर छीनना अपने भूगोल, अपने इतिहास, अपने स्मृति संसार से कट जाना होता है, घर कोई किसी के इशारे पर अकारण ही नहीं छोड़ सकता।"[14] हम केवल उस पीड़ा, उस बेबसी का अंदाजा लगा सकते हैं जिसमें जीते हुए कश्मीरी पंडितों ने अपना घर छोड़ा। उन्होंने वहाँ स्वयं को इतना असहाय महसूस किया होगा कि उन्हें लगा होगा, उन्हें बचाने वाला, उन्हीं की भूमि में बेखौफ रहने के लिए सुरक्षात्मक आश्वासन देने वाला कोई नहीं है। इस भय से भरकर इस उपन्यास का पात्र रमेश कश्मीर छोड़ जाना चाहता है।

ये उपन्यास निर्वासन झेलते कश्मीरियों की पीड़ा को आवाज देते हैं। कश्मीर को खोखला कर दिया गया है। कई अनसुनी आवाजें, अनकही पीड़ा, छटपटाहट, बेचैनी, द्वंद्व के साक्षी हैं ये उपन्यास। कश्मीरियों के निर्वासन की अवधि बहुत लंबी रही है। आतंक की पकड़ इतनी मजबूत है कि उनकी रिहाई की तमाम कोशिशें नाकाम होती रही हैं, लेकिन उम्मीद सबसे बड़ी ताकत है, हौसला सबसे बड़ा हथियार है। एक दिन निर्वासन की ये बेड़ियां जरूर टूटेंगी, यही उम्मीद इन उपन्यासों में निहित है।

संदर्भ ग्रंथ

1. कुलश्रेष्ठ, मनीषा शिगाफ, फ्लैप से, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 12
2. वही, पृ. 10
3. वही, पृ. 18
4. वही, पृ. 69
5. वही, पृ. 22
6. वही, पृ. 79
7. वही, पृ. 89
8. कौल, क्षमा, दर्दपुर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004 पृ. 72-73
9. वही, पृ. 22
10. कांत, मीरा, एक कोई था कोई नहीं सा, फ्लैप से, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
11. वही, पृ. 181
12. वही, पृ. 205
13. वही, पृ. 196
14. चंद्रकांता कथासतीसर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 556

सौम्या वर्मा
शोधार्थी
हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद

आज़ादी का अमृत महोत्सव

हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, सांबा
एवं
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
द्वारा आयोजित

राष्ट्रीय संगोष्ठी: 24-25 मार्च, 2022
हिंदी साहित्य में जम्मू-कश्मीर और जम्मू-कश्मीर में हिंदी भाषा

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि डॉ./श्री/सुश्री ....सौम्या वर्मा.... ने दिनांक 24–25 मार्च, 2022 को "हिंदी साहित्य में जम्मू–कश्मीर और जम्मू–कश्मीर में हिंदी भाषा" विषय पर हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, सांबा एवं केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित दो–दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में अध्यक्ष/सह–अध्यक्ष/विशिष्ट/मुख्य वक्ता/शोध–पत्र वाचक/प्रतिभागी के रूप में भाग लिया।

आपने राष्ट्रीय संगोष्ठी में ....जम्मू-कश्मीर से विस्थापन का हिंदी साहित्य.... विषय पर अपना व्याख्यान/शोध–पत्र प्रस्तुत किया।

प्रो. रसाल सिंह
(विभागाध्यक्ष)
संयोजक

डॉ. रत्नेश कुमार यादव
संगोष्ठी सचिव

समवेत ध्वनि संस्थान, उदयपुर (राजस्थान)
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उत्तर प्रदेश)
राजकीय महाविद्यालय, चौहटन, बाड़मेर (राजस्थान)

राष्ट्रीय संगोष्ठी
लोक भक्ति परंपरा : विविध आयाम
दिनांक : 28-29 जनवरी, 2024

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रो./ डॉ./ श्री/ श्रीमती/ सुश्री सौम्या वर्मा पद शोधार्थी संस्था हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तेलंगाना ने समवेत ध्वनि संस्थान, उदयपुर, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा और राजकीय महाविद्यालय, चौहटन के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी 'लोक भक्ति परंपरा : विविध आयाम' में विषय विशेषज्ञ / सत्र-अध्यक्ष / प्रतिभागी के रूप में लोकभक्ति परंपरा और कश्मीरियत (विशेष संदर्भ: ललद्यद और नुंद ऋषि) विषय पर व्याख्यान दिया/ शोध पत्र प्रस्तुत किया/ सहभागिता की।

दिनांक : 29 जनवरी, 2024

डॉ. नवीन नंदवाना
संगोष्ठी संयोजक
अध्यक्ष, समवेत ध्वनि संस्थान, उदयपुर

श्री बाबूलाल मेघवाल
सहायक आचार्य, हिंदी
राजकीय महाविद्यालय, चौहटन